श्रीभगवान महावीर स्वामी के २५०० निर्वाणोत्सव के अवसर पर

जैन योगीन्द्र श्री आनन्दघन कृत

आनन्दघन-ग्रन्थावली

सरलार्थ सहित

संग्रह एवं अर्थकार

उमराव चन्द जैन जरगड

सम्पादक

महताब चन्द खारैड विशारद

सम्वत् २०३१

प्रकाशक

श्री विजयचन्द जरगड

जोहरी बाजार, ईमलीवाले, पन्सारी के ऊपर,

जयपुर–3

प्रथमावृत्ति – 1000

मूल्य 10

मुद्रक '

वैशाली प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर–3

द्भुत ोगी आनन्दघन

१७वी सदी के महान् सन्त, श्री आनन्दघनजी म० जिन्होने भेद ज्ञान के द्वारा जड चेतन का पृथक् करण किया, जिनके जीवन मे हर क्षण आत्मानुभूति दीप जलता रहा, जिन्होने आगम व निगम को आत्मसात किया, व योग साधना के द्वारा भौतिक पदार्थों के प्रभाव से हिमालय वत ऊचे उठ गये। सम्यग् ज्ञान, दर्शन एव आचरण ही जिनके जीवन का कार्य क्षेत्र बन गया, स्वरूपस्थ साधना ने सर्वथा प्रतिबन्ध मुक्त बना दिया। रज-कण व रत्न-कण को सम देखने वाले अद्भुत योगी आनन्दघन समस्त भौतिक दिव्य पदार्थो को उपेक्षित भाव से देख उन्हे पुद्गल समझ देखा अनदेखा कर देते थे। क्योकि साधकीय जीवन मे इधर-उधर देखे बिना निरन्तर बढते रहना ही साधक का सर्वोपरि कर्तव्य है। यही स्थिति आनन्दघनजी महाराज को सहज उपलब्ध थी, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओ मे अनेक जगह सकेत रूप मे व्यक्त है। अनुभूतिजन्य शब्द शृ खला वीतराग स्वरूप को समझाने मे अनमोल हीरे है वे स्वय तो साधना के द्वारा अमर पद वरेगे ही किन्तु उनका पद "अब हम अमर भये ना मरेंगे" यदि समझकर गायेगा और इसके भावो की गहराई को समझेगा तो निश्चित मुक्त बनेगा। एक क्या अनेक ऐसे पद हैं जिनमे जिनवाणी के सागर को अपनी कवित्व शक्ति के द्वारा वाक्य रूप गागर मे भर दिया। वे वीतराग स्वरूप को समझाने वाले उनके स्तवन, पद आदि रचनाये भी अमर पद देने मे सर्वथा सक्षम है।

ऐसे आनन्दघनजी महाराज की रचनाये साधको की अनुपम थाती हैं जो साधको को प्रबल प्रेरणा देकर साध्य के प्रति जागरुक रखती है जिनवाणी को समझकर समझाने वाले साधक जन-मानस का अनन्त उपकार करते हैं। स्व० श्री उमरावचन्दजी जरगड जिनकी रुचि आध्यात्मिक भजनो के प्रति विशेष रहती थी, आनन्दघन-भजनावली का हिन्दी मे अर्थ करके उन्होने भी भारी पुण्योपार्जन किया है, उनका परिश्रम आज सफल हो रहा है, इसकी प्रसन्नता।

प्र० विचक्षणश्री

स्व० श्री उमरावचन्दजी जरगड
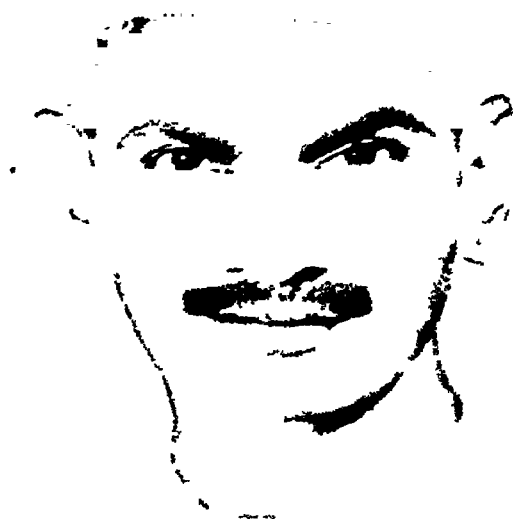
पुनीत स्मृति मे श्रद्धाजलि स्वरूप प्रकाशित

स्व० श्री उमरावचन्दजी जरगड

संक्षिप्त जीवन परिचय

श्री उमरावचन्द्रजी का जन्म सम्वत् १९५९ श्रावणा शुक्ला १० बुधवार को जौहरी श्री प्रेमचन्दजी के कनिष्ठ भ्राता श्री नेमीचन्दजी जरगड के यहा हुआ। आप श्री जैन श्वेताम्बर श्रीमाल जाति के जरगड गौत्र के थे। १८ वर्ष की आयु मे आपका विवाह सुश्री उमराव कवँर सुपुत्री श्री मदनचन्दजी टाक के साथ हुआ। आपने रत्न उद्योग की शिक्षा श्री रतनलालजी फोफलिया से प्राप्त की तथा अपने पैतृक व्यवसाय मे सफलता पूर्वक कार्य करते रहे। आपकी शिक्षा मैट्रिक तक होते हुए भी आपकी अभिरुचि अध्ययन मे रही और आप साहित्य, जैन-दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, होमियोपेथी आदि मे अध्ययन-रत रहे। आपकी जैन-दर्शन एव अध्यात्म मे विशेष रुचि रही। आपका सम्पर्क विभिन्न विद्वानो साधुओ एव पण्डितो से रहा। श्री अगरचन्दजी नाहटा के सम्पर्क मे आने से तथा उनकी प्रेरणा से आप लेखन कार्य भी करने लगे। समय समय पर इनके द्वारा सम्पादित एव लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई, जिनकी सूची इस पुस्तक के अन्त मे दी गई है।

स्वर्गवास के चार वर्ष पूर्व से ही शारीरिक अस्वस्थता के कारण आपके कई अन्य ग्रथ अधूरे व अप्रकाशित रह गये थे। प्रस्तुत ग्रथ उन्ही मे से एक है। इस ग्रथ को श्री महतावचन्दजी खारैड ने श्री अगरचन्दजी नाहटा के सहयोग से पूर्ण किया है।

व्यापार, अध्ययन, लेखन व मनन के साथ-साथ आपकी श्रीमाल सभा, ज्वैलर्स एसोसियेशन आदि सामाजिक कार्यों मे भी रुचि रही है। आपका स्वर्गवास स० २०२८ के माह सुदी ५ (वसत पचमी) के शुभ दिन मे हुआ।

आपकी धर्म पत्नी वडी धार्मिक प्रवृत्ति की है। आपकी स्मृति मे आपके सुपुत्र विजयचन्दजी ने इसे प्रकाशित कर एक बहुत ही उपयोगी काय किया है।

अपनी बातें

सन् १९५८-५९ की बात है। स्व० श्री उमरावचदजी जरगड योगीराज आनन्दघनजी के पदो का अर्थ लिख रहे थे, तब उन्होंने मुझे अपने कार्य मे सहयोग देने को कहा। वे बहुत कुछ कार्य कर चुके थे। बहुत कुछ बाकी था। उन्ही दिनो मे श्री देवचदजी महाराज की चौवीसी सार्थ के सम्पादन का कार्य भी चल रहा था। वह समाप्ति पर था। पहिले चौवीसी का कार्य पूर्ण कर प्रेस मे दिया गया। वह छपकर तैयार हो गया। अब नियमित रूप से श्री आनन्दघन-पदावली का कार्य चलने लगा।

स्व० श्री जरगडजी के पास 'आनन्दघन-पदावली' की हस्तलिखित पाच प्रतियाँ थी और दो प्रतियाँ गुजराती भाषा मे मुद्रित थी। मुद्रित प्रतियो मे प्रथम प्रति श्री मोतीलाल गिरधरलाल कापडिया द्वारा सम्पादित थी जिसमे केवल ५० पदो पर ही विस्तृत व्याख्या थी तथा दूसरी मुद्रित प्रति आचार्य श्री बुद्धिसागर सूरीश्वर द्वारा सम्पादित थी जिसमे १०७ पदो पर व्याख्या थी।

निकलता गया। अन्त मे वे रुग्ण हो गये। इससे फिर उन्हे रोग-मुक्ति काल ने ही दी।

सन् १९६९ ई० मे मेरे मित्र स्व० श्री जतनमलजी लूणावत ने मुझे आनन्दघनजी की पदावली के दो भाग श्री मोतीलाल गिरधरलाल कापडिया द्वारा सम्पादित देकर उन्हे आद्योपान्त पढने की प्रेरणा दी। मैंने दोनो भाग पढे। श्री कापडियाजी ने १०८ पदो का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। श्री जतनमलजी ने कहा कि ये सब गुजराती मे है। अपने लोगो को समझने मे बडी कठिनाई पडती है। यदि हिन्दी मे यह प्रयास किया जावे तो हिन्दी भाषा भाषियो के लिए एक अच्छी आध्यात्मिक वस्तु मिल सकती है। मैंने श्री जरगडजी के प्रयास की बात कही कि उसमे थोडा ही कार्य बाकी है। यदि पाडुलिपि मिल जावे तो उसे पूर्ण किया जा सकता है। तदन्तर श्री जरगडजी की धर्म-पत्नी से पूछ-ताछ और तलाश के पश्चात् ज्ञात हुआ कि वह पाडुलिपि कोई ले गया, जिसका कुछ पता नही है और श्री जरगडजी इस स्थिति मे नही थे कि वे कुछ बता सकें। अत निराश होकर मैं चुप बैठ गया। मेरे पास इस सम्बन्ध की कोई सामग्री नही थी। जो थी वह मैं पहिले ही श्री जरगडजी को दे चुका था। अन्त मे एक वर्ष पश्चात् श्री जरगडजी की पत्नी ने मुझे बुलाकर सूचित किया कि इनके लिखे हुए 'आनन्दघनजी' के पद मिल गये हैं। मैंने उन्हें देखा कि सब मेरे ही लिखे हुए थे। अब बाकी सामग्री की तलाश थी। काफी परिश्रम करके वह सामग्री एकत्रित की गई और उसे सुरक्षित रख दी। यह सब सामग्री सन् १९७१ के अगस्त मास मे मिली थी। इसके पश्चात् इसका कार्य आरम्भ कर दिया गया जो आपके सन्मुख प्रस्तुत है।

श्री जरगडजी से प्राप्त सामग्री देखने से ज्ञात हुआ कि उन्होने चौबीसी और पदावली दोनो पर ही करीब-करीब ६० प्रतिशत कार्य कर दिया था। चौबीसी के छठे स्तवन श्री पद्मप्रभ जिन से १८वें स्तवन श्री अर जिन स्तवन तक श्री जरगडजी ने बहुत अच्छा अर्थ लिखा है। बाकी के प्रथम पाच स्तवन मे उनके सकेतानुसार मैंने अर्थ लिखा है और उन्नीसवें स्तवन से चौबीसवें स्तवन तक मैंने अपनी मद बुद्धि अनुसार अर्थ किया है। इसी प्रकार पदावली के ६० पदो पर तो उनका ही अर्थ लिखा गया है और शेष पदो पर मैंने अर्थ लिखा

है। पदावली मे वहुत से पद शकास्पद तथा कुछ अन्य कवियो के लगे उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। जितने पद 'आनन्दघन' नाम के मिले वे सब ही इस पदावली मे सम्मिलित कर लिये गये हैं और उनसे सम्वन्धित सूचनायें उन पदो के साथ ही दे दी गई है। राष्ट्रभापा हिन्दी मे यह प्रथम ही प्रयास है। अभी इसमे सशोधन की काफी गु जाइश है।

पदावली तथा अन्य रचना

ऊपर लिखा जा चुका है कि श्री जरगडजी के पास पदो की हस्तलिखित प्रतियो की चार लिपिया थी। उन्हे मैंने पाठान्तर के लिये 'अ, आ, इ और उ नाम दिये है। 'अ' प्रति मे ८६ पद, 'आ' प्रति मे ८० पद, 'इ' प्रति मे ७७ पद और 'उ' प्रति मे ८२ पद हैं। स० १७५३ मे लिखी हुई डेरागाजीखा की प्रति का उल्लेख श्री जरगडजी ने और किया है। न तो उसकी प्रतिलिपि प्राप्त हुई और न यह ज्ञात हो सका कि यह प्रति किस महानुभाव से प्राप्त हुई थी। उनके (श्री जरगडजी के) लेखानुसार इतना ही ज्ञात हुआ कि इस प्रति मे १५-२० ही पद थे। यह प्रति मिल जाती तो इसमे सग्रहीत पदो का क्रम ज्ञात हो जाता और यह भी निश्चय हो जाता कि ये पद श्री आनन्दघन जी के ही हैं। कारण इसका यह कि यह प्रति श्री आनन्दघनजी के स्वर्गस्थ होने के २०-२२ वर्ष वाद ही लिखी गई थी।

जितनी भी प्रतिया मिली है, उन सवका एक क्रम नही है, और न उनमे पद सख्या ही समान है। किसी मे ७७,-७८, किसी मे ८० और किसी मे ६० पद मिलते हैं। श्री भीमसिंह माणेक ने सर्वप्रथम १०८ पदो का सग्रह करके स १९४४ वि मे 'आनदघन 'वहुत्तरी' के नाम से प्रकाशित किया था। इसके पश्चात इसी क्रम और पदो की सख्या से श्री मोतीलाल गिरवर लाल कापडियाजी तथा आचार्य श्री वुद्धिसागरजी ने पदो की विस्तृत व्याख्या कर प्रकाशित कराया है। इन प्रकाशित पदावलियो मे अन्य कवियो के भी पद आनदघनजी का नाम देखकर सम्मिलित कर लिये गये हैं, इससे वास्तविक पदो की सख्या ज्ञात करना कठिन और अत्यन्त परिश्रम साध्य हो गया है।

पदसख्या व नाम

श्री आनदघनजी के पदो का सग्रह तो 'वहुत्तरी' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। इन पदो के प्रथम सग्रहकार और प्रकाशक ने १०८ पद सग्रह कर

प्रकाशित किये, उसका नाम भी 'बहुत्तरी' ही रखा है। इससे यह तो सभव लगता है कि इन पदो के सग्रह का प्राचीन नाम 'बहुत्तरी' रहा होगा। ऐसा अनुमान होता है कि श्री भीमसिंह माणेक के सन्मुख बहुत्तरी की कई प्रतिया थी। उन्होने जिस प्रति मे नयापद देखा, उसे ही अपने सग्रह मे सम्मिलित करके पदो की स १०८ करली। यदि वे सावधानी से छानबीन करते तो पदो की सख्या इतनी नही हो सकती थी और न श्री आनदघनजी के सबध मे जो अनर्गल बातें उठाई गई हैं, वे ही उठती।

हमारे विचार मे तो इन पदो की सख्या 'बहुत्तर' से अधिक होने के कारण यह है कि उन दिनो मुद्रण जैसे साधन तो उपलब्ध थे नही, जिनसे प्रचार-प्रसार हो सकता था। एकमात्र साधन लोक-गायक और सतगण जो देश मे पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण घूमते हुये जनता को भजन गाकर सुनाते थे। इस प्रकार पदो (गायनो] का प्रचार-प्रसार सहज ही हो जाता था। मध्य-युग मे जब भी किसी सत महात्मा का आविर्भाव हुआ, धीरे धीरे उसका प्रभाव सवत्र देश मे फैल जाता था। यही कारण था कि सूरदास, कबीर, मीरा आदि के भजन बगाल, महाराष्ट्र और गुजरात तक घर घर मे फैल गये थे। अच्छे भजनो को जनता भी सुन सुनकर कठाग्र कर लेती थी। समय समय पर इन भजनो को गाकर अपनी भक्ति प्रकट करने के साथ-साथ अपना मनोरजन भी किया करती थी। यह भी होता था कि इन भजनो मे प्रयुक्त शब्दो की स्थान विशेप के अनुसार काया पलट जाती थी। इसके साथ ही यह भी होता था कि पद किसी अन्य का है और विस्मृति के कारण किसी दूसरे के नाम चढा दिया जाता था। यथा 'कहत कबीर सुनो भाई साधु" या "मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,, आदि पद के अन्त मे जोडकर पद समाप्त कर दिया जाता था। और यह भी होता था कि कोई पक्ति किसी की, कोई पक्ति किसी की, गाकर अत मे किसी प्रसिद्ध पदकर्ता का नाम रखकर पद पूर्ण कर दिया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पदावलियो मे अनेक पाठ भेद हो गये और अन्य पद-कर्त्ताओ के पद अन्य पद कर्ताओ के नाम मे प्रसारित हो गये। यही घटना श्री आनदघनजी के पदो के साथ हुई। अन्य कवियो के पद और उनकी शैली से भिन्न पद भी उनके नाम मे प्रसिद्धि पा गये। लिखकर सग्रह करने वालो ने

जैसे जैसे सुना वैसे वैसे ही लिखकर सग्रह कर लिया। यही कारण है कि श्री ग्रानदघनजी के पदो का क्रम सब सग्रहो मे समान नही है और न ही उनकी सख्या समान है। हम यहाँ एक अकारादि क्रम से प्राप्त पदो की सूची दे रहे हैं जिससे प्रकट होगा कि हमारे पास वाली किस प्रति मे कौनसा पद किस सख्या पर है और किस प्रति मे कितने पद हैं। प्रस्तुत पुस्तक [ग्र थावली] मे पदो की सख्या १२१ है और उनका क्रम भी इसलिए पृथक हो गया है कि हमारी धारणा के अनुसार जो पद श्री आनदघनजी के है उन्हे प्रथम रखा गया है और जो पद उनके नही समझे गये उन्हें बाद मे। वास्तव मे होना तो यह चाहिये था कि विषयवार या राग या लयवार क्रम बनाया जाता किन्तु यह कार्य समय की काफी अपेक्षा रखता है। इधर पुस्तक प्रकाशित करने शीघ्रता थी इससे यह नही हो सका।

श्री जरगडजी के सग्रह मे श्री आनदघनजी की एक रचना "समितियो की ढालें" और मिली है। वह भी दी जा रही है। यह रचना पूर्व मे श्री अगरचदजी नाहटा द्वारा सम्पादित अष्ट प्रवचन माता सज्झाय सार्थ श्री देवचद सज्झाय माला भाग १ मे प्रकाशित हो चुकी है। साथ ही श्री अगरचद जी नाहटा के सग्रह से प्राप्त आनदघनजी की दो रचनायें—[१] आदिनाथ जिन स्तवन और [२] चौवीस तीर्थंकरो का स्तवन-और दे रहे है। ये दोनो स्फुट रचनायें श्री आनदघनजी के साधु जीवन स्वीकार करने के पश्चात कुछ वर्षो के बाद की लिखी हुई मालूम पडती हैं। इनकी प्राचीन प्रतिया नही मिलने मे सदिग्ध भी हो सकती है। श्री नाहटाजी ने हस्तलिखित प्रतियो की खोज सर्वाधिक की है अत उन्हे अप्रकाशित पद भी १५ और मिले है।

चौबीसी

श्री जरगडजी के सग्रह मे चौबीसी की छै प्रतियो की प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई। ये प्रतिलिपियें किस किस समय की प्रतियो की हैं, इसकी जानकारी मिलना अब असभव है। इन प्रतिलिपियो को मैंने, 'अ' 'आ' 'इ' 'ई' 'उ' और 'ऊ' से चिह्नित कर पाठ भेद दिये हैं। इनमे 'उ' प्रति श्री ज्ञानविमलसूरि जी के टब्बेवाली है और 'ऊ' प्रति श्री ज्ञानसारजी के टब्बेवाली है। इन प्रतियो मे प्रथम प्रति १८वी सदी के अतिम चरण की और दूसरी प्रति १९वी सदी के नवे दशक की है।

चौबीसी के स्तवनो मे बत्तीस स्तवन ही योगीराज श्री आनदघनजी के रचित कहे जाते हैं। शेष अन्तिम दो स्तवन—श्री पार्श्वनाथ जिन स्तवन और श्री महावीर जिन स्तवन—अन्य महानुभावो के 'आनदघन' नाम से रचित है। हमने प्रस्तुत पुस्तक मे श्री पार्श्वनाथ भगवान के तीन स्तवन और श्री महावीर भगवान के तीन स्तवन दिये हैं। दोनो ही जिनेश्वरो के तीन तीन स्तवन हैं। जिनमे प्रथम २३ वा और २४ वा स्तवन–"ध्रुवपदरामी हो स्वामी माहरा" और वीरजी नै चरण लागू वीरपणु तें मागू रे" है। द्वितीय २३ वा और २४वा स्तवन–"पास जिन ताहरा रूपनू मुझ प्रतिभास किम होय रे" और "चरम जिणेसर विगत स्वरूपनू रे, भावू केम स्वरूप" है तथा तृतीय २३वा और २४वा स्तवन—"प्रणमू पाद-पकज पार्श्वना जस वासना अगम अनूप रे" और "वीर जिणेसर परमेश्वर जयो जग जीवन जिन भूप" है। ये तृतीय स्तवन प मुनि श्री गब्बूलालजी की 'आनदघन चौबीसी याने अध्यात्म परमामृत" के गुजराती अनुवादक प श्री मगल जी उद्धवजी शास्त्री की पुस्तक से लिये गये है। अत हम उनके आभारी हैं। इन स्तवनो के सबध मे इस पुस्तक मे किसी प्रकार की सूचना नही दी गई हैं। हमने इन स्तवनो के अर्थ के साथ जो टिप्पणी दी है उसमे गलतफहमी के कारण भूल हो गई अत यहाँ उसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। प्रथम २३ वा और २४वा स्तवन "ध्रुवपदरामी" और "वीरजी नै चरणे लागू" श्री ज्ञानसारजी के टब्बे के लेखानुसार तथा श्री अगरचदजी नाहटा के सग्रह की चौवीसी की एक प्रति -जो स १८५७ की लिखी हुई है-के अनुसार श्री देवचदजी महाराज रचित हैं। द्वितीय २३वा और २४वा स्तवन

'पास जिन ताहरा रूपनू" और चरम जिणेसर विगत स्वरूपनू रे" श्री ज्ञानसार जी महाराज रचित है। तृतीय २३वा और २४ वा स्तवन--"प्रणगू पादपकज" और "वीर जीणेसर परमेश्वर जयो"--किसकी रचना है पता नही लगा। श्री अगरचन्दजी नाहटा का अनुमान है कि ये दोनो स्तवन उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज के होने चाहिये। इस विषय मे निश्चयात्मक बात नही कही जा सकती। यह आगे की शोध का विषय है।

इस चौबीसी को पूर्ण करने के लिये अन्य महानुभावो ने भी प्रयास किया मालूम होता है। श्री ज्ञानविमल सूरिजी ने अपने नाम से दो स्तवनो की रचना कर चौबीसी पूर्ण की थी। यह चौबीसी श्री जिनदत्तसूरि पुस्तकालय जयपुर मे सुरक्षित है। स्थानाभाव से उन स्तवनो को यहाँ देने मे हम असमर्थ है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि बावीस ही स्तवन श्री आनदघनजी के बनाये हुये है और परवर्ती दो स्तवन आनदघनजी के नाम से अन्य कवियो ने बनाये है। श्री आनदघनजी ने बावीस ही स्तवन क्यो बनाय, चौबीस पूर्ण क्यो नही किय। यह जिज्ञासा उत्पन्न होती ही है। हमारे से पूर्व के चौबीसी सपादको ने इस प्रश्न पर विचार किया है। स्वर्गीय श्री मोतीलाल गिरिधर कापडियाजी ने काफी ऊहापोह कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है--"श्री आनदघनजी ने चौबीसी के स्तवन आयु के उत्तर भाग मे बनाये थे क्यो कि इन स्तवनो की भाषा, उनका विषय निरूपण और उनके वाक्य प्रयोगो को देखने से प्रौढता स्तवनो मे दिखाई पडती है वह पदो मे नही है। यह प्रौढता उन्हे उत्तर अवस्था मे प्राप्त हुई लगती है। इस उत्तर अवस्था के भी अतिम भाग मे इन स्तवनो की रचना हुई है। यदि वे उत्तर अवस्था के अतिम भाग मे नही बने होते तो चौबीसी को श्री आनदघनजी दो स्तवनो के लिये कभी अधूरी नही छोडते। किन्ही अनिवार्य कारणो से २३वा और २४वा स्तवन वे नही बना पाये।" (५० पदो के प्रथम सस्करण की भूमिका पृ ८०--८६)

इसी स्थान पर श्री कापडियाजी ने एक शका और उठाई है--"श्री आनदघनजी ने केवल इकवीस ही स्तवनो की रचना की थी। बावीसवा स्तवन उनका नही मालूम होता है। इस प्रकार इकवीस स्तवनो मे आत्मा की उत्क्राति बतानेवाले योगीराज जो बाकी के स्तवन लिखे होते तो अति विशुद्ध आत्मदशा

भावो को बताने वाले और खास कर योग की अति उत्कृष्ट दशा सूचित करने वाले होते। बावीसवें स्तवन की वस्तु रचना, भापा और विपय पूर्व स्तवनो से बिलकुल अलग पड जाते है। इकवीस स्तवनो तक जो लय चली आ रही थी उसका एकदम भग हो जाता है। उसमे (बावीसवें स्तवन मे) जो विपय लिया गया है, वह सामान्य कवि जैसा है।"

यहाँ हम अत्यन्त नम्र निवेदन करना चाहते है कि बावीसवे स्तवन मे योगीराज ने राजुल (राजिमती) की वेदना का हृदयस्पर्शी वर्णन करते हुये, बताया है कि आत्मा वैभाविक दशा से स्वाभाविक दशा की ओर कैसे अग्रसर होती है। पशुओ का क्रन्दन सुनकर श्री नेमिनाथ जब शोभायात्रा (बरात) मे से रथ वापिस कर देते है, तब साध्वी राजिमती का हृदय विदीर्ण हो जाता है। इसका अत्यन्त मार्मिक वर्णन श्री योगीराज ने किया है। वह मन मे विचारती है कि मेरा और प्रभु का सबध तो आज का नही, अनेक जन्मो का है, फिर प्रभु ऐसा क्यो करते हैं। वे पशुओं पर तो दया दिखाते है और मेरे कष्टो की ओर जरा भी ध्यान नही देते है। जो विवाह ही न करना था तो सगाई-सबध ही क्यो किया ? सगाई-सबध करके लगन-विवाह न करने से तो मेरी गति अत्यन्त भयानक हो गई है। राजिमती का स्वयबर नही हुआ था। माता-पिता की इच्छा को ही उसने शिरोधार्य किया था। राजिमती का जीवन अपने ढग का निराला ही है। उस समय उसकी अवस्था भी बहुत नही थी, फिर भी वह एक सती साध्वी की तरह राज महलो के सुखो को ठुकराकर तुरत अपने होनेवाले पति नेमिनाथ के पद-चिह्नो पर आगे बढी। इधर भगवान अरिष्ठ नेमिनाथ के भाई रहनेमिने अनेक प्रकार के भय दिखाये, प्रलोभन दिये, पर वह तो हृदय से भगवान अरिष्ठ नेमिनाथ को वरण कर चुकी थी। सती साध्वी के तेज के सम्मुख रहनेमि की पराजय हुई। ऐसी अपूर्व स्त्री रत्न का यदि कवि वर्णन न करते तो यह अपराध हो जाता। श्री आनदघनजी जैसे महापुरुप उस सती को कभी भूल नही सकते थे। तीर्थंकर पत्नियो मे जितना रोचक भाव पूर्ण और उत्कृष्ट त्यागमय जीवन राजिमती का था वैसा अन्य किसी का नही था। ऐसी साध्वी की वेदना का वर्णन न करना वास्तविकता से मुँह मोडना होता। श्री योगीराज का यह प्रेम-प्रसग का रसमय वर्णन और दुखी हृदय की पुकार ही

नही है वल्कि आठो जन्मो मे वने हुये सवध को अक्षुण्ण वनाये रखने व पूर्ण आत्म ममर्पण का अद्भुत एव वेजोड वर्णन है। सच्ची साध्वी स्त्री का कार्य पति मे दोप निकालना नही है किन्तु पति के पद- चिन्हो पर चलकर आत्म ममर्पण है। पति जिस मार्ग जावे उमी मार्ग का अनुमरण पत्नी के लिये श्रेय-स्कर है। राजिमती ने यही किया और स्वामी से पूर्व ही भव-वधनो को तोड डाला और मोक्ष मे पति का स्वागत करने के लिये पहिले ही पहुँच गई। कवि का इम प्रकार का वर्णन इमी वात का द्योतक है। आत्मोत्क्रांति की भूमिका मे जो वात प्रथम स्नवन मे—"कपट रहित थई आतम अरपणा रे आनदघन पद रेह" कही है उमही की परम पुष्टि इस स्तवन मे इम प्रकार की है--"मेवकपणु ते आदरे रे, तो रहे मेवक माम। आशय माथे चालिये रे, अेहिज रूडो काम।" इममे वढकर कौन मा आत्म समर्पण होगा ? कौन सा त्याग होगा ? कौन सा योग होगा? ममार से मुक्त करानेवाला व्यापार ही तो, समर्पण, त्याग और योग है।

ऐमे उच्चाशय वाले स्नवन पर श्री कापडिया जी का शका करना निराधार ही कहा जा सकना है।

ऊपर के विचार श्री कापडियाजी के चौवीसी तथा वावीमवे स्तवन के लिये उठाई गई शका के सम्वन्ध मे हैं। अव श्री आनदघनजी की रचना-पदावली के एक अन्य मपादक व विवेचक आचार्य श्री वुद्धिसागर सूरिजी के विचार दिये जाते है। आचार्य श्री का कथन है--"अन्य दर्शनीय विद्वानो का कथन है कि प्रथम सगुण की उपासना-स्तुति की जाती है, तत्पश्चात आध्यात्म ज्ञान मे गहरे पैठने के पश्चाद निर्गुण की उपासना-भक्ति की ओर अग्रसर होना पडता है।-यद्यपि इस प्रकार की शैली जैन विद्वानो मे दिखाई नही देती है तथापि इम वात को माना जावे तो आनदघनजी ने गुजराती भापा मे चौवीसी की रचना की, फिर मारवाड मे घूमते हुये लोगो के उपकारार्थ व्रजभापा मे पदो की रचना की।" आगे वे लिखते हैं--"एक दत कथा सुनने मे आती है कि एक ममय श्री आनदघनजी शत्रुजय पर्वत पर जिन दर्शन करने गये हुये थे। उन्ही दिनो श्री यशोविजयजी और श्री ज्ञानविमलमूरिजी श्री आनदघनजी से मिलने के लिये शत्रुजय पर गये थे। श्री आनदघनजी एक जिन मदिर मे प्रभु की स्तवना

को आनन्दघन जी के बाईस स्तवन ही प्राप्त थे, इसलिए अन्य जो दो प्रकार के दो-दो स्तवन पार्श्वनाथ और महावीर के स्तवन आनन्दघनजी के नाम से प्राप्त होते है, उनमे दो तो श्रीमद् देवचन्द्रजी रचित है+ । यह ज्ञानसारजी के विवेचन मे स्पष्ट लिखा है। अत बाकी जो दो स्तवन और रह जाते हैं, मेरी राय मे वे यशोविजयजी के रचित हो सकते हैं। क्योकि जिस तरह ज्ञानविमलसूरि और ज्ञानसारजी ने बाईस स्तवनो का विवेचन लिखने के बाद पूर्ति के रूप मे अन्तिम दो स्तवन अपनी ओर से बनाकर चौबीसी की पूर्ति की थी उसी तरह यशोविजयजी ने भी बावीसी पर विवेचन लिखने के बाद अन्तिम दो स्तवनो को स्वय बनाकर पूर्ति की होगी। श्रीमद् देवचन्दजी को भी आनन्दघनजी के बाईस स्तवन ही मिले। इसलिए उन्होने अन्तिम दो स्तवन स्वय बनाकर चौबीसी की पूर्ति की। हमारे सग्रह के एक गुटके मे आनन्दघनजी की चौवीसी लिखी हुई है उसमे अन्तिम दोनो स्तवनो के रचयिता स्पष्ट रूप मे देवचन्द्रजी को बतलाया है। सौभाग्य से हमे आनन्दघनजी के बावीस स्तवनो की एक प्राचीनतम प्रति भी मिल गई है जिसमे बावीस स्तवन ही लिखे हुये हैं। कारण कुछ भी रहा हो पर इन सब बातो से स्पष्ट है कि आनन्दघनजी ने बाईस स्तवन ही बनाये थे। पीछे के पार्श्वनाथ और महावीर के स्तवन अन्य जैन कवियो ने बनाकर चौबीसी की पूर्ति की है।

पू० सहजानन्दजी की पूर्ति चैत्यवदन एव स्तुति

यहाँ एक नई सूचना भी देना आवश्यक समझता हूँ कि आनदघनजी ने बाईस स्तवन ही बनाये थे पर मन्दिरो मे स्तवन से पहिले चैत्यवन्दन और स्तवन के बाद स्तुति भी (अन्य नमोत्थुरण जय वोयराय आदि के साथ) बोली जाती है। अत चैत्यवन्दन और स्तुति की पूर्ति के रूप मे पूज्य सहजानदजी ने २४ चैत्यवन्दन और २४ स्तुतिया भी आनदघनजी के भावो के साथ ताल-

---

+ प्रस्तुत ग्रन्थ मे २२ स्तवनो के बाद जो पार्श्वनाथ और महावीर स्तवनो को जो ज्ञानविमल सूरि के कहे जाते है लिखा है वे वास्तव मे श्रीमद् देवचन्दजी के हैं। ज्ञानविमलजी ने पूर्ति रूप जो दो स्तवन बनाये है उनको मैंने तो ज्ञानविमल नाम दिया है।

मेल बनाने वाली बनादी है, जो 'सहजानद पदावली' आदि मे प्रकाशित भी हो चुकी है ।

पद बहुतरी

आनदघनजी की दूसरी प्रमुख रचना है—गीत द्रुपद या आध्यात्मिक पदावली । योगीराज ने समय-समय पर अपने हृदयोद्गार और अनुभूति के व्यक्तिकरण रूप जो पद-भजन बनाये हैं, वास्तव मे वे एक ही समय पर नही बने थे इसलिए पद-सग्रह का नाम 'बहोत्तरी' आदि उनकी ओर से नही रखा गया था। प्राचीन प्रतियो मे बहोत्तर (७२) पद मिलते भी नही हैं, किसी मे चालीस-पैंतालीस के करीब है, किसी मे साठ-सत्तर । अत उन्नीसवी शताब्दी मे किसी सग्रहकर्त्ता ने आनदघनजी के प्राप्त पदो का सग्रह किया और उनकी सख्या चौहत्तर-पचहत्तर के लगभग हो गई तब शायद पद सग्रह का नाम बहोत्तरी रख दिया गया । सवत् १८५७ की लिखी हुई प्रति हमे प्राप्त हुई है जिसमे ७४–७६ पद है पर उसमे पद सग्रह का नाम बहोतरी नही दिया है परन्तु आनदघनजी के सर्वाधिक मर्मज्ञ श्रीमद् ज्ञानसागरजी ने आनदघनजी के अनुकरण मे जो चौहत्तर पद बनाये है उनका नाम उन्होंने 'बहोतरी' रखा है । अत उन्नीसवी शताब्दी मे आनदघनजी का पद सग्रह बहोतरी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया मालूम देता है ।[+] इसके बाद चिदानन्दजी ने भी समय-समय पर जो पद स्तवन बनाये उनकी सख्या भी बहत्तर (७२) तक पहुँच गई । अत चिदानदजी की बहोतरी प्रसिद्ध हो गई । बहत्तर (७२) सख्या का आकर्षण अठारहवी शताब्दी मे रहा है । जिनरगसूरिजी ने बहत्तर पद्यो वाली एक रचना को जिनरग बहोतरी नाम दिया जो अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना है ।

स्तवनो एव पदो के समर्थ विवेचक ज्ञानसारजी

श्रीमद् ज्ञानसारजी ने आनदघनजी के स्तवनो और पदो पर वर्षों तक गभीर चिंतन किया था । चौवीसी बालावबोध मे ज्ञानसारजी ने स्पष्ट लिखा

१ + हमे प्रवर्त्तक कातिविजय के सग्रह की स० १८९० की प्रति मे बहुतरी नाम लिखा मिला है । इसमे पहले की स० १८७१ की बनारस की प्रति के अन्त मे बहुतरी' लिखा है । दे जै गु क भाग ३

है कि स० १८२६ से मैंने ग्रानदघनजी के स्तवनो पर चिंतन करना प्रारम्भ किया। ३७ वर्ष तक चिंतन चलता रहा, ग्रनेको से पूछा पर सतोष नही हुग्रा। ग्रन्त मे वृद्धावस्था ग्राने लगी देखकर स० १८६६ मे किशनगढ मे चौमासा करते हुए ग्रानन्दघनजी के वावीस स्तवनो पर उन्होने 'वालाववोध-भाषाई टीका एव विवेचन' लिखा। उसमे उन्होने ग्रानदघनजी का ग्राशय ग्रति गहन-गभीर है। उनके भाव को ठीक से समझने की मेरी पहुँच नही है, यह स्पष्ट लिखा है। योगीराज कविजी की महानता ग्रौर ग्रपनी लघुता तथा पूर्व वालाववोध के लेखक ज्ञानविमलसूरि की ग्रसमर्थता पर उन्होने ग्रनेक जगह उल्लेख किया है।

ज्ञानसारजी ने एक वार विवेचन लिखकर ही सन्तोष नही किया। उन्होने कई वार इसमे सशोधन, परिवर्द्धन किया है। हमे उनके वालाववोध की दो तरह की प्रतियाँ मिली है+ जिनसे मालुम होता है कि स० १८६६ के वाद उन्होने ग्रपने वालाववोध मे जगह-जगह पर ग्रानदघनजी की उक्तियो के साथ-साथ ग्रपनी ग्रोर से भी वहुत से दोहे ग्रादि वनाकर (यदुक्ति के उल्लेखन) ग्रानदघनजी के भावो को ग्रधिक स्पष्ट ग्रौर सुवोध वनाने का प्रयत्न किया है। खेद है, भीमसी माणक ग्रादि ने ज्ञानसारजी के विवेचन को मूलरूप मे प्रकाशित नही कर सक्षेप कर दिया ग्रौर भाषा भी वदल दी। हमने मूल विवेचन की प्रतिलिपि कर रखी है यदि ग्रार्थिक सहयोग मिला तो उसे प्रकाशित करने का विचार है। ज्ञानसारजी के पदादि मे ग्रानदघनजी का प्रभाव व ग्रनुकरण स्पष्ट है। ग्रा जयसागर सूरिजी ने ज्ञानसागर जी को "लघुग्रानदघन" वतलाया है।

ज्ञानसारजी ने ग्रानदघनजी के स्तवनो के साथ-साथ उनके पदो का विवेचन भी लिखना प्रारम्भ कर दिया था पर सम्भवत वे सव पदो पर विवेचन लिख नही पाये। पद विवेचन की हमे दो-तीन प्रतियाँ मिली उनमे तो

\+ हमारे सग्रह मे स० १८६६–७१ की लिखित वालाववोध की प्रति के पत्र भी है, जिनमे लिखा है कि ज्ञानसारजी की स्वय लिखित प्रति से नक्ल की है। वडे सस्करण की भी हमारे यहाँ प्रति है।

केवल तेरह पदो का ही बालावबोध था। पर ढूढते-ढूढते एक प्रति ऐसी मिली जिसमे और भी १८ पदो का विवेचन मिल गया। फिर भी श्रीजिन कृपाचन्द्र सूरिजी ने जिस जैतारण की प्रति की सूचना दी थी उसमें करीब ४० पदो का विवेचन था[1]। वह प्रति हमे प्राप्त न हो सकी। अभी हमे ३१ पदो से अधिक का विवेनच ही मिल गया है। उसमे एक पद के विवेचन मे ज्ञानसारजी ने लिखा है कि आनदघनजी पहिले वैष्णव सप्रदाय मे थे फिर जैन मे दीक्षित हुए।[2]

यदि ज्ञानसारजी रचित आनदघनजी के पदो का विवेचन, परवर्ती विवेचक बुद्धिसागर सूरि को मिल गया होता तो अवश्य ही उनका विवेचन और अधिक ज्ञानवर्द्धक बन जाता। बुद्धिसागर सूरिजी को ५० पदो की गम्भीरविजय विवेचन की एव माणकलाल घेलाभाई की ३६ पद-विवेचन की नोट बुक मिली थी।

मैंने कही उल्लेख पढा था कि आनदघनजी के कुछ पदो पर विवेचन प० लालन ने भी लिखा था पर वह मुझे प्राप्त नही हो सका। फुटकर रूप से तो कुछ पदो का विवेचन अन्य विद्वानो का भी किया हुआ मिलता है पर समस्त पदो का विवेचन योगनिष्ठ बुद्धिसागर सूरिजी व मोतीचन्द कापडिया का ही प्रकाशित हुआ है। इन दोनो मे कापडियजी[3] का विवेचन काफी विस्तृत और अच्छा है क्योंकि गम्भीरविजयजी जैसे विद्वान का उन्हे सहयोग मिल गया था। बहुत से पदो का सक्षिप्त विवेचन गम्भीरविजयजी ने किया उसे कापडियाजी या उनके साथियो ने नोट कर लिया था उसे अपनी ओर से अधिक विस्तृत कर दिया। देशाई सग्रह मे पद विवेचन की हमे एक नकल मिली है सम्भवत वह विवेचन माणकलाल घेसाभाई का हो।

---

१ 'बुद्धिप्रभा' सन् १९१२ जनवरी-फरवरी अक।

२ वैष्णव सप्रदायी भक्त कवि आनदघन, जैन आनदघन से बहुत पीछे हुए हैं। इनके समय मे १०० वष का अतर है। सभवत नाम साम्य के कारण श्री ज्ञानसारजी को भ्रम हो गया हो। (सम्पादक)

३ कापडिया को १ अपूर्ण १ पूर्ण बालोवबोध सहित प्रति मिली जिसका उपयोग उन्होने किया। यह ज्ञानसारजी कृत ही होगा।

पाठभेद

आनदघनजी के स्तवनो के पाठ मे भी भिन्न-भिन्न प्रतियो मे काफी पाठ-भेद मिलते है। मुनि श्री जम्बुविजयजी ने कई प्रतियो के आधार से पाठ-भेद सहित प्रेस कॉपी तैयार की थी और उसको वे प्रकाशित करने वाले भी थे। मुझे नौ स्तवनो का प्रूफ भी उन्होने एक बार भेजा था पर पता नही क्यो उसका प्रकाशन स्थगित कर दिया। हमने भी कई प्रतियो के पाठ भेद ले रखे है। मूलपाठ का निर्णय और अन्तिम रूप देने का काम हमने पूज्य गुरुदेव श्री सहजानन्दघनजी को सौपा था पर वह पूरा नही हो पाया। **स्तवनो का प्रथम सर्वश्रेष्ठ हिन्दी विवेचन।**

पूज्य गुरुदेव ने हमारे अनुरोध से आनन्दघनजी के स्तवनो पर मननीय विवेचन लिखना प्रारम्भ किया था पर बीकानेर के निकटवर्ती उदरामसर के धोरो की गुफा मे सोलह-सतरह स्तवनो पर ही विवेचन लिख पाये, उसके बाद जो काम रुक गया, वह रुका ही रहा। अनेक बार अनुरोध किया पर पूरा होने का सयोग नही था। गुरुदेव कहते रहे कि जो पहले लिखा गया है वह भी ज्यो-ज्यो अनुभव और मनन बढता है त्यो त्यो उसमे और सशोधन परिवर्तन की आवश्यकता मालुम देने लगती है। इसीलिए हमे किये हुए विवेचन की भी नकल करने का सुयोग नही दिया और अब वह किसके पास रहा इसका भी पता नही चल रहा है। हिन्दी मे यह सबसे पहला और अच्छा विवेचन लिखा जा रहा था पर वह पूरा और सशोधित परिवर्द्धित नही हो पाया, इसका बडा खेद है।

आनदघनजी के कई पदो पर पूज्य सहजानदघनजी ने कई प्रवचनो मे विस्तृत विवेचन किया था पर खेद है वह भी लिखा नही जा सका।

पूज्य श्री को हमने कई प्रतियो की नकलें करके भेजी तो उन्होने एक काम अवश्य किया कि आनदघनजी के ६० पदो का वर्गीकरण १० भागो मे करके उन पदो की विषय सूचक नामावली की सूची हमे लिखकर भेज दी जो आज भी हमारे पास मौजूद है। अभी तक ऐसा प्रयास किसी ने नही किया और एक आत्मानुभवी ने यह काम करके हमे भेज दिया, इसे भी हम अपना सौभाग्य ही समझते है।

पूज्य सहजानन्दजी की विशेष प्रेरणा से हमने 'ज्ञानसार ग्रथावली' का प्रकाशन किया था पर खेद है कि कलकत्ते के हिन्दू-मुस्लिम दगे मे मूल ग्रन्थावली के फर्मे मुसलमान जिल्दसाज के पास ही रह गये, इसलिए बीकानेर मे इसका करीब आधा मैटर ही छपाकर प्रकाशित करना पडा। अच्छा यही हुआ कि जीवनी आदि के प्रारम्भिक फर्मे हमे सुरक्षित मिल गये, वे पूरे दे दिये।

इसके बाद उन्होने हमे श्रीमद् देवचन्दजी की भाषा बद्ध पद्य रचनाओ का शुद्ध पाठ हस्तलिखित प्रति के आधार से तैयार करने का काम सौपा था और वह ग्रन्थ हमने तैयार करके अन्तिम रूप देने के लिए उन्हे भेज भी दिया था पर स्वास्थ्य अनुकूल नही रहने से वे उस काम को भी कर नही पाये और समाधिमरण प्राप्त हो गये।

तीसरा काम आनदघनजी का सौंपा था। हमने अपनी ओर से प्राचीनतम प्रतियाँ ढूढ कर नकल करने और पाठभेद लेने मे यथाशक्ति प्रयत्न भी किया पर वह प्रयत्न भी पूज्य गुरुदेव के चले जाने से पूर्ण सफल नही हो पाया। पूज्य गुरुदेव की सूचनानुसार ज्ञात हुआ कि श्री आनन्दघनजी मेडते के एक वैश्य के तीसरे पुत्र थे। कुछ सामग्री का उपयोग करने के लिए हमने श्री महताब चन्दजी खारेड को भेजी थी। पर वह देरी से मिलने से उसका पूरा उपयोग होना रह गया।

आनन्दघनजी के पदो की सख्या

जैसा कि ऊपर लिखा गया है आनदघनजी के पदो की सख्या बहत्तर मानते हुए श्री खारेडजी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में पद सग्रह व विवेचन को तीन भागो में बाँट दिया है इसमें से पहले विभाग का नाम 'आनदघन बहोतरी' उन्होने रखा है। जिसमें तेहतर (७३) पद विवेचन सहित दिए गए हैं। दूसरे विभाग में स्फुट पद के रूप में उन्होने तीन विभाग कर दिये हैं जिनमें से पदाक ७४ से ८३ वाले पदो को तो उन्होने आनदघनजी का मानकर विवेचन किया है।

इसके बाद शकास्पद पदो वाला विभाग है। उनके सबध में उन्होने लिखा है कि "ये पद हमारी प्रति में तो नही किन्तु मुद्रित प्रतियो में है इनकी भाषा और शैली आनदघनजी के पदो से भिन्न है। ये पद किसी अन्य जैन कवि

के या और कवियो के हो सकते है। पदाक ६४ के बाद खारेडजी ने लिखा है कि "श्री आनदघनी के पदो में अन्य कवियो के वे पद जो आनदघन नाम की छाप के हैं और हमारी प्रतियो में है, यहाँ मूलमात्र दिये जाते है।" पदाक ६६ के बाद में उन्होने लिखा है कि 'अब इसके आगे के वे पद दिये जा रहे है जो हमारी किसी प्रति में नही हैं किन्तु मुद्रित प्रतियो में है, किन्तु वे पद आनदघन जी के नही हैं, अन्य कवियो के है।" उनमें से कई पदो के वास्तविक रचियता कौन हैं, इस पर भी उन्होने विचारणा की है। पदाँक १०६ के बाद वे फिर लिखते हैं कि "यहाँ वे पद दिये जा रहे है, जो हमारे पास हस्तलिखित प्रतियो मे है किन्तु अब तक की प्रकाशित प्रतियो मे नही है।

इस तरह श्री खारेडजी ने अपनी ओर से प्राप्त पदो के विषय मे काफी विचार और खोज की है पर वे अपने निर्णय मे पूर्ण सफल नही हो पाये हैं। अभी तक प्राचीनतम प्रतियो की खोज आवश्यक है तभी मूल और वास्तविक पाठ का निर्णय हो सकेगा। हमे अब तक जो प्राचीन प्रतिया मिली है उसके आधार से यह कह सकता हूँ कि पद सख्या ७८, ६५, ६६, ६७, ११२, ११३, ११८ ये पद तो निश्चित रूप से आनदघनजी के ही है क्योकि वे प्राचीन १८वी शताब्दी की प्रतियो मे प्राप्त है। कुछ अन्य पद भी हमे आनदघनजी के ही लगते हैं पर वे उन्नीसवी शताब्दी की प्रतियो मे मिले है अत निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इस ग्रन्थ मे काफी परिश्रम से जो मूलपाठ दिया है उसमे भी कहीं-कहीं परिवर्तन की आवश्यकता लगती है। हमारी खोज अभी जारी है। अत मूल शुद्ध पाठ और आनदघनजी के मूल कृतित्व के सम्बन्ध मे आगे कभी निर्णय किया जा सकेगा।

इस ग्रन्थ मे आनदघनजी के १२१ पद छपे हैं। १५ हमे अप्रकाशित और मिले हैं। इन सब मे से अन्य कवियो एव सदिग्ध के बाद देने पर भी करीब १०० पद ऐसे रह जायेंगे जो आनदघनजी के रचित होने सभव है।

स्तवनो और पदो की प्राचीतम प्रतियाँ

आनदघनजी के स्तवनो की हमने बीसो प्रतिया देखी है उनमे से एक प्रति तो हमे ऐसी भी प्राप्त हुई है जो निश्चित रूप से कागज, स्याही और

अक्षरो को देखते हुए अठाहरवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की है। हमारी राय मे तो वह आनदघनजी की विद्यमानता के समय की ही है क्योकि प्राणनाथ सम्प्रदाय के 'निजानन्द चरित्र' से आनदघनजी का स्वर्गवास सवत् १७३१ मे मेडता मे हुआ, यह निश्चित हो गया है। इस प्रति मे आनदघनजी के बावीस स्तवन ही लिखे हुए है।

पद सग्रह की अनेको प्रतियाँ हमने देखी है उनमे से सबमे प्राचीन प्रति सवत् १७०० के आस-पास की लगती है। वह एक गुटके के रूप मे हमारे अभय जैन ग्रन्थालय मे है। कविवर बनारसीदास के मित्र कवरपाल की रचनाए और हस्ताक्षर भी इसमे है। कई रचनाओ के अत मे लेखक सवत् १६८३ दिया हुआ है। पर उस गुटके के जिन पिछले पन्नो मे कवि रूपचद और आनदघन के पद लिखे हुए है उनकी स्याही और अक्षर कुछ पीछे के है। स्याही के दोष से आनदघनजी के पदो वाले कई पत्र तो टुकडे हो गये, नष्ट हो गये फिर भी हमने प्रति की उपलब्धि के समय ही पदो की नकल करवा ली थी जिसमे ३८ पद तो सुरक्षित मिल गये बाकी के पत्र टूट जाने के कारण पदो की पूरी नकल करना सम्भव नही हो सका। इस प्रति मे आनदघनजी के ६० से अधिक पद है।

इसके बाद हमे सवत् १७५६, १७६२, १७६८ के सवतोल्लेख वाली अठारहवी शताब्दी की आनदघनजी के पदो की तीन प्रतियाँ और मिल गई। और इन प्रतियो के भी पहले से लिखे हुए गुटके मे कुछ पद और मिल गये।

जैन गुर्जर कवियो मे जैन साहित्य महारथी स्व० मोहनलाल देसाई ने आनदघनजी के स्तवनो व पदो की प्रतियो का विवरण भाग २ और ३ मे दिया है। उनमे स्तवनो की सवतोल्लेख वाली सबसे प्राचीन प्रति सवत् १७५८ की श्री सीमधर ज्ञान भण्डार मे होने की सूचना है पर वह भण्डार कहाँ का है, स्थान का उल्लेख नही किया इसलिए हम उस प्रति को प्राप्त नही कर सके।

पूज्य मुनि श्री जबूविजयजी को हमने कई बार पूछा कि आपने कहाँ-कहाँ की किस स० की प्रतियो का पाठ भेद लेने मे उपयोग किया है, इसकी सूचना हमे दें पर उन्होने इसका स्पष्टीकरण नही किया।

मेरी राय मे आनदघनजी के स्तवनो का जो पाठ ज्ञानविमल सूरि और ज्ञानसारजी ने अपने बालावबोधो मे ग्रहण किया है एव इसी तरह पदो के विवेचन मे ज्ञानसारजी ने पदो का जो पाठ ग्रहण किया है उमे अठारहवी शताब्दी का पाठ मानते हुए प्राथमिकता दी जा सकती है। प्राचीनतम प्रतियो के पाठ का तो उपयोग करना ही चाहिए। शुद्ध पाठ होने पर ही अर्थ ठीक हो सकेगा।

आनदघन चौबीसी पर आधुनिक विवेचन

ज्ञानविमलसूरि और ज्ञानसारजी के पुराने विवेचन सक्षेप व आधुनिक ग्रन्थ मे छप चुके है। इनके आधार से और स्वतत्र रूप से भी बीसवी शताब्दी मे चौबीसी पर कई विवेचन लिखे गये है। जिनका यहाँ सक्षिप्त परिचय दे देना आवश्यक समझता हूँ। झवेरी माणकलाल घेलाभाई के प्रकाशित ग्रन्थ तो मेरे देखने मे नही आये पर जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर से सवत् १९८२ मे प्रकाशित 'आनदघनजी कृत चौबीसी अर्थयुक्त' नामक ग्रन्थ मेरे ग्रन्थालय मे है उसकी प्रस्तावना म लिखा है कि ज्ञानविमलसूरि कृत बालावबोध इसमे दिया गया है। पर वास्तव मे बालावबोध जिस रूप मे प्राप्त है उसी रूप मे तो यह छपा नही है। इसी प्रस्तावना मे यह भी लिखा गया है कि 'झवेरी माणकलाल घेलाभाई ने जिस रूप मे छपाया यहाँ अक्षरश छापा गया है। अत शब्दार्थ, भावार्थ और परमार्थ रूप शैली व गुजराती भाषा मे माणकलाल भाई ने ही इस विवेचन को ज्ञानविमलसूरि के बालावबोध के आधार से तैयार किया मालूम होता है।

श्रीमद् रायचन्दजी ने चौबीसी पर विवेचन लिखना प्रारम्भ किया था पर केवल प्रथम स्तवन का ही वे लिख पाये। पता नही उसमे भी दूसरी गाथा का विवेचन कैसे छूट गया। यदि श्रीमद् जी चौबीसी पर पूरा विवेचन लिख पाते तो अवश्य ही बहुत महत्त्व का होता। आगे का काम डॉ० भगवानदास मेहता ने प्रारम्भ किया और सवत् २००० से २००८ तक मे दूसरे और तीसरे स्तवन का विस्तृत विवेचन लिखा, जो 'जैन धर्म प्रकाश मे क्रमश प्रकाशित होता रहा। इसमे दूसरे स्तवन के विवेचन का नाम 'दिव्य जिनमार्ग दर्शन'

और तीसरे स्तवन के विवेचन का नाम 'प्रभु सेवा नी प्रथम भूमिका' रखा गया है। दोनो स्तवनो का विवेचन स्वतत्र पुस्तक रूप मे सवत् २०११ मे ३३२ पृष्ठो मे छपा है। इसके परिशिष्ट मे श्रीमद् रायचन्द्र लिखित प्रथम स्तवन का विवेचन भी दे दिया गया है। डॉ० भगवानदास मेहता ने जितने विस्तार से विवेचन लिखा है, उतना और किसी ने नही लिखा।

श्री प्रभुदास वेचरदास पारेख ने भी चौवीसी का विवेचन बहुत अच्छा लिखा है, जिसकी प्रथम आवृति स० २००६ मे प्रकाशित हुई। उसमे बहुत परिवर्तन करके जो नया विवेचन उन्होने तैयार किया वह द्वितीयावृति २०१४ मे जैन श्रेयस्कर मण्डल मेहसाना से प्रकाशित हुई है। ४८० पृष्ठो का यह ग्रथ भी पठनीय है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के मुनि सतवालजी ने चौवीसी का विवेचन लिखा है पर वह अभी तक प्रकाशित नही हुआ। उसका उल्लेख इसी सम्प्रदाय के हिन्दी मे विवेचन लिखने वाले मुनि गवूलालजी ने किया है। गवूलालजी का हिन्दी विवेचन भी प्रकाशित नही हुआ। उसका गुजराती अनुवाद पण्डित मगलजी उधवजी शास्त्री ने किया, जो अहमदावाद से स० २००७ मे प्रकाशित हुआ है।

आनदघनजी के पदो पर विस्तृत विवेचन लिखने वाले श्री मोतीचन्द कापडिया ने ज्ञानविमल सूरि के आधार पर विवेचन लिखा, जो महावीर विद्यालय बम्बई से प्रकाशित हो चुका है। वही से कापडिया लिखित पदो के विवेचन के दो भाग इससे पहिले महावीर विद्यालय से प्रकाशित हुए हैं।

जिस तरह पूज्य सहजानन्दजी ने चौवीसी पर अधूरा विवेचन हिन्दी मे लिखा, उसी तरह प्रो श्री जवाहरचन्दजी पटनी भी हिन्दी मे विवेचन लिख रहे हैं पर वह अभी पूरा नही हो पाया है।

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'आनदघन और घनानद नामक' पुस्तक प्रकाशित की थी, उसमे से घनानद की तो स्वतत्र पुस्तक वे निकाल चुके थे। आनदघनजी सबधी ग्रन्थ हनुमान मदिर न्यास, कलकत्ता से २०२६ मे प्रकाशित किया है। उस 'आनदघन' पुस्तक मे

विवेचन तो नही, पर चौवीसी और पदो का मूल पाठ देने के साथ-साथ नीचे टिप्पणी मे विशेप शब्दो के अर्थ हिन्दी मे दे दिए गए है।

आनन्दघनजी की जीवनी सम्बन्धी दो ग्रन्थ

वैसे तो आनदघनजी सवधी विशेप वृतात नही मिलता जो कुछ जानने सुनने मे आया वह बुद्धिसागर सूरिजी, मोतीचन्द कापडिया आदि विवेचन लेखको ने अपने ग्रन्थो मे दे दिया। पर आनदघनजी सवधी दो स्वतत्र ग्रन्थ भी गुजराती मे प्रकाशित हुए हैं। इनकी जानकारी प्राय लोगो को नही है इसलिए उनका उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ।

अव से लगभग ५० वर्प पहिले शतावधानी प० धीरजलालजी शाह ने 'वाल ग्रन्थावली' के कई भाग तैयार करके प्रकाशित किये थे, इनमे आनदघनजी सवधी एक छोटी पुस्तक भी है।

वम्वई के सुलेखक स्व श्री वसन्तलाल कान्तीलाल ने आनदघनजी सवधी निवध 'जैन सत्य प्रकाश' मे पहले प्रकाशित किया था फिर उन्होने स्वतत्र पुस्तक 'महायोगी आनदघन' के नाम से प्रकाशित की। सन् ६६ मे प्रकाशित यह पुस्तक १०४ पृष्ठो की है। इस ग्रथ मे आनदघनजी सवधी प्रवादो को सुन्दर शैली मे उपस्थित किया गया है।

आनन्दघनजी के चित्र

आनदघनजी जैसे योगी का परिचय ही नही मिलता तो समकालीन चित्र मिलने की तो सभावना ही नही है पर लोगो की माग अवश्य रही, अत नवीन चित्र वनाकर श्रीमद बुद्धिसागर सूरिजी के 'आनदघन पद सग्रह भावार्थ' ग्रन्थ की द्वितीयावृति स० २००८ मे प्रकाशित हुई तव आनदघनजी के जो कई प्रवाद प्रचलित है उनके आधार से कई चित्र वनाकर इस आवृति मे प्रकाशित किये है। इन्ही चित्रो को मेरे वडे भ्राता श्री मेघराजजी ने वीकानेर की रेल दादावाडी मे भित्ति चित्र के रूप मे चित्रित करवाये है।

आनन्दघनजी की स्तुति

समकालीन जैन विद्वानो मे उ यशोविजयजी ने अष्टपदी रूप आनद-घनजी की भव्य स्तुति की है और विशेष कुछ नही लिखा। २०वी शती मे योगनिष्ठ बुद्धिसागर सूरिजी ने लम्बी स्तवना की है। डा० भगवानदास मेहता ने भी स्तुति बनाई है।

२२ स्तवनो के गाने के तर्ज रूप देसियो का उद्धरण

स्व मोहनलाल देसाई ने श्री महावीर रजत स्मारक ग्रथ मे आध्यात्मी श्री आनन्दघन अने यशोविजय नामक महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित किया था उसमे प्रकाशित आनन्दघन चौबीसी के प्रारम्भ मे जिन देसियो का उल्लेख हुआ है, उनके सम्बन्ध मे खोजपूर्ण प्रकाश डाला गया है। श्री महतावचन्दजी खारेड ने उस प्रयास को 'चमत्कारी' बताया है पर वास्तव मे उन देसियो का प्रयोग आनन्दघन जी ने अपने स्तवनो मे नहीं किया था। वह तो प्रतियो के लेखको और स्तवनो के गायको न कौनसा स्तवन कौनसी प्रचलित तर्ज मे गाया जाय, इसको बतलाने के लिए उन देसियो के नाम लिख दिये हैं। आनन्दघन जी के बाईस स्तवनो की जो प्राचीनतम प्रति हमे मिली है उसमे किसी भी स्तवन की 'देसी' लिखी हुई नही है तथा देसियो के आधार से आनन्दघनजी के समय का जो विचार किया गया है, वह सफल प्रयास नही है।

एक भ्रम का निवारण

श्रीमाराभाई मणिलाल नवाब ने 'आनन्दघन पद रत्नावली' नामक पुस्तक सन् ५४ मे प्रकाशित की। इनमे स्तवन और पद प्रकाशित करते हुए निवेदन मे लिखा है कि उनकी मान्यतानुसार श्री यशोविजय जी और आनन्द-घनजी एक ही थे, पर उनकी यह मान्यता सवथा गलत है। यशोविजय जी ने तो आनन्दघन बावीसी पर बालावबोध लिखा है। उन्होने अष्ट पदो मे आनन्दघनजी की महत्वपूर्ण स्तुति की है। इससे दोनो के मिलन की बात तो ज्ञात होती है पर दोनो के एक होने के तो विरुद्ध पडती है।

आनन्दघन जी के पदो मे कबीर का एक और पद

कई वर्ष पहले मैंने 'सन्त कबीर और आनन्दघन' नामक लेख प्रकाशित किया था, उसमे आनन्दघनजी के नाम से प्रकाशित तीन पदो को कबीर का

वतलाया था । उनमे मे दो पद तो समयसुन्दरजी के लिखे हुए एक पत्र मे मुझे मिले थे, जिसके अन्त मे कवीर का स्पष्ट नाम था । अत मैंने उस पत्र मे प्राप्त पाठ से आनन्दघन वहोतरी मे प्राप्त पाठ की तुलना कर दी थी । श्री विश्वनाथ प्रसाद और खारैड जी ने भी उन पदो को कवीर का वतलाया है । पर इसी तरह एक तीसरा पद और है, वह प्रस्तुत सग्रह पद न ९९ मे भी छपा है और कवीर के रचित होने की सम्भावना भी की है पर वह कवीर ग्रथावली मे नही मिलने के कारण निश्चय नही कहा जा सका । श्री मोहनलाल देसाई ने अपने निवन्ध मे लिखा है कि कवीर का एक पद एक प्राचीन हस्तलिखित पत्र मे से मैंने उतारा है जो आनन्दघन वहोतरी के १०६ वें पद मे मिलता है । उन्होने तुलना के लिए पाठ भी दे दिया है यथा —

कबीर का पद, (राग सारग)

भमरा ! कित गुन भयो रे उदासी ।
तन तेरो कारो मुख तेरो पीरो, सवहें फुलन को सुवासी —
ज्या कलि वैठहि सुवासही लीनी, सो कलि गई रे निरासी—
कहेत कवीरा सुन भाई साधो ! जइ करवत ल्यो कासी ।

आनन्दघनजी का १०६ वाँ पद राग नट्ट

किन गुन भयो रे उदासी, भमरा ! किन,
पख तेरी कारी, मुख तेरा पीरा, सब फुलनको वासी भमरा
सब कलियन को रस तुम लीना, सो क्यू जाय निरासी—
आनन्दघन प्रभु तुमारे मिलन कु , जाय करवत ल्यू कासी ।

इस ग्रथ मे प्रकाशित पद न ११८ आनन्द (वर्द्धन) का है, आनन्दघन जी का नही है ।

क्या आनन्दघनजी मर्मी या रहस्यवादी थे ?

आनन्दघनजी के सम्बन्ध मे जैनेतर विद्वानो मे सबसे पहले सन्त साहित्य के मर्मज्ञ वगाली विद्वान क्षितिमोहन सेन ने 'वीणा' मे लेख प्रकाशित किया । उसमे उन्होंने आनन्दघन को 'मर्मी' या रहस्यवादी कवि वताया पर हिन्दी साहित्य के विद्वान विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने आनन्दघन ग्रन्थ के

प्रारम्भ मे लिखा है कि आनन्दघन मे अध्यात्म जैन धर्म का ही अध्यात्म है, निर्गुणियो सन्तो मे जो सूफियो का रहस्यवाद घुस गया है उसका प्रभाव अन्य जैन साधुओ की रचनाओ मे चाहे हो भी पर इन जैन आनन्दघन मे उसका प्रभाव वहतर स्थान पर शतादिक पदो मे एकत्र होकर ही डाला है। जैन आनन्दघन को मर्मी सिद्ध करने के लिए श्री सेन ने लिखा है पर इनकी प्रवृत्ति मे वैसा नही जान पडता।

आनन्दघनजी के अप्रकाशित पद

आनन्दघनजी के पदो के अनेक सग्रह प्रकाशित हुए, उनमे से ज्ञानसुन्दरजी की 'आनन्दघन पद मुक्तावली' मे तो करीव ६५ पद ही है। भीमसी माणेक ने आनन्दघनजी और चिदानन्दजी की वहोतरियो के सग्रह एक साथ पॉकेट साइज और पुस्तक साइज मे प्रकाशित किये। उनमे आनन्दघनजी के पदो की सख्या १०७ तक पहुँची। बुद्धिसागर सूरीश्वरजी के पद मग्रह भावार्थ मे १०८ पद मूल मे और ४ पद प्रस्तावना मे, कुल ११२ पद छपे। प्रस्तुत सग्रह ग्रन्थ मे इनकी सख्या १२१ तक पहुँच गई है। भद्र कर सूरीजी के शिष्य पुण्यविजय जी सम्पादित 'भक्ति-दीपिका' नामक ग्रन्थ मे चौवीसी के वाद १०९ पद छापे हैं और उसके वाद सज्भाय सग्रह के नाम से ६ स्तवन-सज्भाय और दे दिये गये हैं। उनमे कई तो स्पष्ट रूप से आनन्दघनजी के नही है वास्तव मे जिस तरह सूर, कवीर, मीरा, तुलसीदास आदि प्रसिद्ध कवियो के नाम से परवर्ती कवि सख्या वृद्धि करते रहे है। इसी तरह आनन्दघनजी के पदो मे भी वहुत अभिवृद्धि होती रही है। हमने अनेक हस्तलिखित प्रतियो मे से समय-समय पर अप्रकाशित पदो की नकल की तो १५ पद ऐसे हमे और मिल गये जो अभी तक कही भी प्रकाशित हुए देखने मे नही आए। इनमे कुछ पद तो दूसरो के रचित लगते है और कुछ आनन्दघनजी के भी हो सकते हैं। इसलिए उन अप्रकाशित पदो को यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—

(१) राग-आसाउरी

माई प्रीति के फंद परो मत कोई।
लाज सकुच सुधि वुधि सव विसरी, लोक करे वदगोई ।।मा०।।१।।

असन वसन मन्दिर न सुहावै, रैंन नैन भरि रोई।
नीद न आवै विरह सतावै, दुख की वेलि मै वोई ।।२ मा० ।।
जेता सुख सनेह का जानौ, तेता दुख फिर होई।
"लाभानद" भले नेह निवारई, सुखोय होइ नर सोई ।।३मा०।।
(इति प्रीति निवारण सिझाय। १८वी शती की लिखित प्रति मे)

(२)

राग विहाग चोतालो ।
हे नेना तोहे बरजो, तू नही मानत मोरी मीख ।।ने०।। टेक
वरज रही वरजो नही मानत, घर-घर मागत रूप भीख ।।ने०१।।
चित चाहे मेरे प्यारे को स्वरूप रूप, स्याम के वदन पर वरसत ईख
आनन्दघन पिया के रस प्यारो, टारि न टरत करम रीख ।
(स० १८७३ प्रति १६ कान्तिविजयजी सग्रह, वडौदा)

(३) राग मारु

हा रे आज मनवो, हमेरो वाऊरो रे ।।टेक।।
आप न आवे पिया लखहु ने भेजे, प्रीत करन उतावरो रे ।।आ०।।१।।
आप रगीला पियो सेजहुँ रगीली, और रगीलो मेरो सावरो रे
।।आ०।।२
"आनन्दघन" वावो निज घर आवे तो मिटै सतावरो रे ।।आ० ३।।
(उपरोक्त सव् १८७३ लिखित कान्तिविजयजी की प्रति से)

(४) राग-काफी

चेतन प्यारा रे मोरा तुम सुमति सग क्यू न करो, रहो न्यारा ।।चेतन०
पर रमणी से वहुत दु ख पायो सो कछु मन मे विचारा ।
या अवसर तुहि आय मिल्यउ है, भूले नही रे गिवारा ।।
तुम कछु समझ समझ भरतारा ।।चे० ।१। आप विचार चले घर अपने
और से कियो निस्तारा । चेतन मुमता माहि मिले दोउ
खेलत है दिन सागा ।। आनन्द ह्वाँ लियो भवपारा ।।चे०।।२।।

(५) राग काफी

आज चेतन घर आवै, देखो मेरे सहिओ । आ०
काल अनादि कियो परवश ही अव निज चित ही चितावे ।।दे० १।।
जनम-जनम के पाप किए ते सो निधन माहि वहावै ।
श्री जिन आज्ञा सिर पर धर के परमानन्द गुण गावै ।।दे०।।२।।
देत जलाजलि जगहि फिरण कु, फिर के न जगत मे आवै ।
विलसत सुख पर अखडित 'आनन्दघन' पद पावै ।।दे०।३।।

(६) राग काफी

कव घर चेतन आवेगे ।।क०।। सखिरी री लेउं वलैया वार वार ।क०।
रयण दिना मैनु ध्यान तुषाढा, कवहुक दरश दिखावेगे ।। मे० ।।१।।
विरह दिवानी फिरु ढूँढती पिउ पिउ करत पुकारेगे ।
पिऊ जाय मिले ममता से काल अनत गमावेगे ।।मे० ।।२।।
करु उपाय णक मे उद्यम अनुभौ मित्र वुलावेगे ।
आय उपाय करके अनुभव नाथ मेरा समझावेगे ।।मे०।।३।।
अनुभव मित्र कहे सुनि साइव अरज एक अवधारेगे ।।मे०।।४।।
अनुभव चेतन मित्र मिले दो सुमति निसाण घुरावेगे ।
विलसत सुख आनन्द लीला मे अनुभव आप जगावेने ।। मे०।।५।।

(७)

राम रस मुहगा है रे भाई, जाको मोल मुनत घर जाइ ।।रा०
जेणे चाख्या सोइ जाणै, मुख सु कहे सो झूठ ।
या हम तुम से वहुत कही परमावै सारो ही कूड ।।रा०।१।।
दर्शन-दर्शन भटकियो, सिर पटक्यौ सो वार ।
वाट वटाउ पूछियउ पायो न ए रस र सार ।। रा०।।२।।
तप जप किरिया थिर नही ज्ञान विज्ञान अज्ञान
साधक वाधक जाणियउ और कहा परमाण ।।रा०।।३।।
द्वैत भाव भासे नही ग्राहक घर ही जान ।
द्वैत ध्यान वृथा सही है इक होय मुजान ।।रा०।।४।।
हाय कामना वश तुम्हे मत्र जत नही तत ।
अनुभव गम्य विचारिये पावे आनदघन विरतत ।।रा०।।५।।

(८)

कूडी दुनीहदा बे अजब तमासा।
पाणी की भीत पवन का थभा, बाकी कब लग आसा ।।कूडी।।१।।
झटा वधार भये नर मुनी, मगन भय जेसा भेसा।
चवडी उपर खाख लगाई, फिर जैसा का तैसा ।।कू०।।२।।
कोडी-कोडी कर एक पइसा जोड्या, जोड्या लाख पचासा
जोड-जोड कर काठी कीनी, सग न चल्या इक मासा ।।कू०।३।।
केइ नर विणजे सोना रूपा, केइ विणजे जुग सारा।
'आनन्दघन' प्रभु तुमकुं विणज्या जीत गया जुग सारा ।।कू०।।४।।
(इति अध्यात्म सज्झाय।–विनय सागर जी के फुटकर पत्र से)

(९)

प्यारा गुमान न करिये, संतो गुमान न धरिये ।।प्या०।।
थोडे जीवन ते मान न करिये, जनम-जनम करि गहिये ।।१।।प्या०।।
इस गन्दी काया के माही ममता तज रहिये ।।२।। प्या०।।
'आनन्दघन, चेतन मे मूरति भक्ति सु चित हित धरिये ।।३।।प्या०।।

(१०) राग काफी

नैना मेरे लागे री, श्याम सुन्दर वृजमोहन पिय सु नैना मोहे लागे री
विन देखे नही चैन सखि री, निश दिन एक टक जागे री ।।नै०।।
लोक लाज कुल कान विसारी ह्वाँ ही सो मन लागे री ।।नै०।।
'आनन्दघन' हित प्राण पपीहा, कुह कर प्राण पागे री ।।नै०।।

(११)

कुण खेले तोसु होरी रे सग लागोजी आवै।
अपने-अपने मदर निकसी, काइ सावली काइ गोरी रे।।स० ।।१।।
चोवा चदन अगर कु कु मा, केसर गागर घोरी रे ।।स० ।।२।।
भर पिचकारी रे मु ह पर डारी (भी) जगई तनु सारी रे ।।स० ।।३।।
'आनन्दघन' प्रभु रस भरी मूरत, आनन्द रहि वा झोरी रे ।।स० ।।४।।

(१२)

वनडो भलो रीझायो रे, म्हारी सुरत सुहागन सुघर वनी रे ।।
चोरासी मे भ्रमत-भ्रमत अवके मोसर पाओ।
अवकी विरीया चूंक गयो तो कीयो आपरो पावो ।।१।।वनडो।।
साधु सगत कीया केसरिया सतगुरु ब्याह रचाओ
साधू जन की जान वनी है, सीतल कलश वंदाओ ।।२।। वनडो।।
तत्व नाम को मोड वंधावो, पडलो प्रेम भराओ
पाच पचीसे मिली आतमा हिलमिल मगल गायो ।।३।। वनडो।।
चोराशी का फेरा मेटी परण पती घर आओ
निरभय डोर लगी साहव सूं जब साहिब मन भाओ ।।४।। वनडो।।
करण तेज पर सेज विछी है, ता पर पोढे मेरा पीवे
'आनन्दघन' पीया पर मे पल-पल वारूं जीवे ।।५।। वनडो।।

(इति पदम्, अजमेर की पद सग्रह प्रति के अन्त मे)

(१३)

मै कवहु भव अन्तर प्रभु पाइ न पूजै।
अपने रस वसि रीझ के दिल वाढे दूजे ।।१।। मै०।।
वछित पूर्ण चरण की मैं सेव न पाई।
ता या भव दुखिया भयो, याहि वनि आई ।।२।। मै०।।
मन के मर्म सु मन ही मे ज्यो कूप की छैया।
'आनन्दघन' प्रभु पास जी अव दीजै वैया ।।३।। मै०।।

(इति जिन पदो, प्रति हमारे सग्रह मे)

(१४) राग भैरव

नाटकीयाना खेल से लागो मन मोरो
और खेल सव सेल हैं पण नाटक दोहरो ।।१।। ना०।।
ज्ञान का ढोर वजाव के चौंहटे वाजी माडु।
काम क्रोध का पुतला सोजी ने काढू ।।ना० ।।२।।
नर न वाधुले सुर सत ए ऐसा खेल जमाऊ।
मन मोयर आगे धरूं कछु मोजा पाऊं ।।ना०।।३।।

अणि कटारी पेहर के तजुं तन की आसा ।
सरत वाधु बगने चढु देखा तरा तमासा ।। ना०।।४।।
सेल खेल धरती तणु, सोना मोना न सुहाइ ।
गशमरत विनाखेल है, ऐसा सुख जचा है ।।ना०।।५।।
उलट सुलट गृह खेल कुं, ताकु सीस नमाउ ।
कहे 'आनन्दघन' कछु मागहुं बेगम पद पाउ ।।ना०।।६।।

(१६ वी शताब्दी लिखित फुटकर पत्र-हमारे सग्रह मे)

(१५)

हठ करी टुक हठ के कभी, देत निनोरी रोई ।।१।।
मारग ज्यु रगाइ के रीही, पिय सदि के 'द्वारि ।
लाजडागमन मे नही, का नि पछेवडा टारि ।।२।।
अनि अनुभव प्रतिम विना, काहु की हठ के नइ कतिल कोर ।
हाथी आप मते अरे, पावे न महावत जोर ।।३।।
सुनि अनुभव प्रीतम विना, प्रान जात इन ठाविहि ।
हे जिन आतुर चातुरी, दूरि 'आनन्दघन' नाही ।। हठीली ।।४।।

(सग्रह प्रति न० ८०३२ सवत १८८६ लिखित)*

---

*(१)-१,३,४,५,७,८,६,१२,१३, और १४, इन सख्याओ के पदो के सबध मे निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा नही जा सकता है। भविष्य की शोध से ही निश्चय हो सकेगा।

(२) पद स० २ और १०, भक्त कवि आनदघन के हैं। देखो-श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र सपादित "घनानद आनदघन" ग्र थावली के पृ० ३२५ पर स्फुट पद ११ तथा पृ० २२२ पर पद स०-१२६ ।

(३) पद स० ६ सुखानद कविका है। इसमे सुखानद की छाप हे ।

(४) पद स० ११ भक्त कवि आनदघन का होना चाहिये। प्रकाशित पदो मे यह मिला नही। निर्णय आगे ही हो सकेगा।

(५) पद स० १५ अधूरा है। ऊपर की पक्ति इसमे नही है। ये पक्तिया प्रस्तुत ग्र थावली के पृ० ७५ के पद स० ३३ की हैं। (सम्पादक)

आनदघनजी महान् योगी थे। उनकी अनुभूतियो को ठीक से समझना वहुत कठिन है। साधना की गहराई मे पहुँचने और डुवकी लगाने पर ही तत्व प्राप्त हो सकता है। प्रस्तुत ग्र थ तो केवल जिज्ञासुओ की भूख को जगाने वाला है हिन्दी मे अब तक ऐसा कोई प्रकाशन नही हुआ। इसलिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। पर प्रकाशित पाठ और उसका अर्थ अभी और सशोधनीय है। आशा है गुजराती मे जिस तरह आनदघनजी पर कई लोगो ने यथामति लिखा है, हिन्दी मे भी ऐसे प्रयास होते रहेगे।

आनन्दघनजी के स्तवन और पदो को धीरे-धीरे लय और तालवद्ध गाते हुए उसके अर्थ मे अपने को रमाते हुए स्रोता व गायक आनन्दविभोर हो सकेंगे। एक-एक पक्ति या कडी को गाकर उस पर गहरा चिन्तन किया जायगा तो अवश्य ही आनन्द की गगा लहराने लगेगी। ऐसे महापुरुष की रचनाओ से प्रेरणा प्राप्त करके हम अपने जीवन को पवित्र एव निर्मल वनावें, इसी शुभ कामना के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

प्राग वाच्य

साधना का महत्वपूर्ण अग ध्यान है। उसके दो प्रकार है—सभेद-प्रणिधान और अभेद-प्रणिधान। सभेद-प्रणिधान पद के आलम्बन से होने वाला पदस्थ ध्यान है। महर्षि पतजलि ने इसे जप कहा है।[1] जैन साधना-पद्धति के अनुसार यह भावना का एक प्रकार है। भावना के द्वारा ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है। उसके चार मुख्य प्रकार है—ज्ञान भावना, दर्शन भावना, चरित्र भावना और वैराग्य भावना।[2] पदस्थ ध्यान या जप दर्शन भावना के अन्तर्गत हो सकता है। अर्हन् का आत्मा के साथ अभेद स्थापित कर 'स्वय देवो भूत्वा देव ध्यायेत्'—स्वय देव होकर देव का ध्यान करे—इस प्रकार सर्वात्मना ध्यान करना अभेद-प्रणिधान है।

भक्ति का विकास सभेद-प्रणिधान के आधार पर हुआ है। इसकी दो धाराए हैं—आत्मवादी और ईश्वरवादी। आत्मवादी धारा के अनुसार आत्म-स्वरूप का अनुसन्धान करना भक्ति है। ईश्वरवादी धारा के अनुसार ईश्वर के प्रति समर्पित होना भक्ति है। जैन परम्परा मे भक्ति विषयक साहित्य प्रचुर मात्रा मे मिलता है। आचार्य कुदकुद की स्वतन्त्र कृति 'दशभक्ति' से इस धारा का प्रारभ हुआ और वह क्रमश वढती चली गई।

रामानुज, निम्बार्क, माध्व, चैतन्य और वल्लभ इन सभी सम्प्रदायो ने भक्ति की अतिशय प्रतिष्ठा की। ईश्वर की शरणागति के बिना मोक्ष नही हो सकता, इस भावना की सशक्त धारा प्रवाहित हो गई। कुछ तर्कों और वाद विवादो से ऊबी हुई जनता इस सरल और आकर्षण मार्ग की ओर आकर्षित हुई। भारतीय मानस भक्ति-मार्ग से ओत प्रोत हो गया। जैन परम्परा मे भक्ति-तत्त्व मान्य था। पर भगवान के अनुग्रह का पुष्टिमार्गीय विचार उसे स्वीकार्य

---

१ योगदर्शन, १।२८ तज्जपस्तदर्थभावनम्।

२ ध्यानशतक ३०–३४।

नही था। मोक्ष मार्ग की त्रयी— सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र — की स्वीकृति के कारण केवल भक्ति को ही मोक्ष का साधन नही माना जा सकता था। इस स्थिति मे जैन आचार्य भक्ति की वैसी धारा प्रवाहित नही कर सके, जैसी वैष्णव आचार्यों ने की।

आनदघनजी ने भक्ति मार्ग का अवलबन लिया ? शरणागति या सिद्धान्त उनके लिए अपरिचित नही था। 'अरहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि' इन चार शरणों की स्वकृति जैन परम्परा मे बहुत पुरानी है।

आनदघनजी ने शरणागति का उपयोग इस सिद्धान्त के आलोक मे किया कि भगवान मे अपनी चित्तवृत्तियो को लीन करना ही शरणागति है। भगवान से अनुग्रह की आशा करना शरणागति नही है। वे भगवद्-लीला मे विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने लिखा है—

'कोई कहै लीला ललक अलख तणी, लख पूरे मन आस।
दोष रहित नै लीला नवि घटै, लीला दोष विलास॥[1]'

जैन परम्परा मे भगवान् की पति के रूप मे उपासना करने की पद्धति नही रही है। फिर भी आनदघनजी ने इसका उपयोग किया है। इसमे भक्ति मार्गीय वैष्णव धारा का प्रभाव उन पर रहा है। उन्होंने लिखा है —

'ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो, और न चाहू कत।
रीझ्यो साहब सग न परिहरे, भागे सादि अनन्त॥[2]

प्रस्तुत पुस्तक मे आनदघनजी के चार ग्रथ प्रकाशित हैं—१ आनदघन बहुत्तरी २ स्फुटपद ३ अन्य रचनाए ४ आनदघन चौवीसी। इनमे चौवीसी (चौवीसों तीर्थंकरो की स्तुति बहुत ही महत्वपूर्ण रचना है। इसमे भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित है। उसमे तत्त्वज्ञान और अध्यात्म के स्रोत भी सम्मिलित हैं। स्तुतिपदो मे इस प्रकार का योग विरलता से ही मिलता है। इनकी तुलना कबीर के पदो मे की जा सकती है। सोलहवी शती के उत्तरवर्ती भक्त कवियो

---

१ ऋषभजिनस्तवन ५, पृष्ठ २५६।

२ ऋषभजिनस्तवन, १ पृष्ठ २५६।

की रचनाओ मे बहुत साम्य है, इसलिए उनमे मिश्रण भी हुआ है। सग्रहकार ने इस मिश्रण को विविक्त करने का प्रयास भी किया है।[1] पर वह और अधिक विमर्श मागता हैं। आनदघनजी की भाषा केवल राजस्थानी नही हैं उसमे गुजराती का मिश्रण है। अन्य भाषाओ का मिश्रण भी उसमे है।

ग्रथकार परिचय

आनदघनजी विक्रम की १७ वी शताब्दी के महान अध्यात्म योगी थे। वे श्वेताम्बर जैन परम्परा मे दीक्षित हुए। उनका नाम लाभानद था। अध्यात्म साधना की प्रखरता ने उनका नाम बदल दिया। वे लाभानद से आनदघन हो गए। उनमे अध्यात्म योग और भक्ति का मणिकाचन योग था। इसलिए उन्होने भक्ति को वीतरागता से विमुक्त नही किया। भक्ति प्रेम का उदात्तीकरण है। वह वीतरागता से विमुक्त होकर राग के बिन्दु पर भी पहुँच सकती है। इस समस्या को वही भक्त समाहित कर सकता है, जो धर्मानुराग को भी वीतरागभाव से प्रभावित रखता है।

कोई भी अध्यात्मयोगी वीतरागभाव से दूर नही जा सकता और वह किसी साम्प्रदायिक आवेश मे भी नही उलझ सकता। आनदघनजी मे ये दोनो विशेषताए थी। वे अपनी रचनाओ मे समूची जैन परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका अध्यात्मपरम्परा का प्रतिनिधित्व भी असदिग्ध है। उन्होने अपनी इस विशेष क्षमता के कारण 'उपाध्याय यशोविजयजी' जैसे महान् प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् को असाधारण रूप से प्रभावित किया था। उन्होने आनदघनजी के विषय मे अनेक वार अपने उद्गार व्यक्त किए हैं—

ऐरी आज आनद भयो मेरे, तेरो मुख निरख निरख
रोम रोम शीतल भयो अगोअग
शुद्ध समजण समतारस झीलत, आनदघन भयो अनत रग—ऐरी
ऐसी आनददशा प्रगटी चित्त अतर, ताको प्रभाव चलत निरमल गग
वाही गग समता दोउ मिल रहे, जसविजय झीलत ताके सग—ऐरी[2]

+ + + +

---

१ देखें, पृ० २१६।
२ अष्टपदी

आनदघन के सग सुजस ही मिले जब

तब आनद सम भयो सुजस,

पारस सग लोहा जो फरसत, कचन होत ही ताके कस।

उपाध्याय यशोविजयजी ने आनदघनजी की चौवीसी मे से २२ पदो पर गुजराती मे वालवबोध लिखा था। वह उपलब्ध नही है। पर योगिप्रवर आनदघनजी और प्रतिभा सम्पन्न यशोविजयजी के मिलन ने अध्यात्म और ज्ञान के समन्वय की अनूठी धारा प्रवाहित की। वह आज भी वहुत मूल्यवान है। सग्रहकार और सपादक ने उसमे से एक स्रोत को गतिशील कर जनता के लिए कल्याण का कार्य किया है। परिमार्जन की अपेक्षा होने पर भी प्रस्तुत श्रम के मूल्य को कम नही आका जा सकता।

अणुव्रत विहार,
नई दिल्ली

मुनि नथमल

भूमिका

[सक्षिप्त परिचय—श्रीमद् आनन्दघनजी १७ वी शताब्दी उत्तरार्द्ध के श्वेताम्बर जैन कवि थे। इनका मूल नाम लाभानन्द था। इनकी विहार-भूमि गुजरात व्रज प्रदेश एव राजस्थान थी। मेडता (राजस्थान) मे इनका स्वर्गवास हुआ था। इनके काव्य मे ज्ञान-भक्ति और योग का मधुर मेल है। जैन दशन की रत्नत्रयी-सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एव सम्यक् चारित्र का सरल तथा सरस विवेचन इनके काव्य मे दर्शनीय है। जैनागमो का सार इनके काव्य मे भरा हुआ है। वे सन्त परम्परा के महान कवि थे। इनकी भक्ति प्रेम-लक्षणा है। भक्ति की भूमिका है—अभय, अद्वेष, अखेद। यह तभी सभव है जब भक्ति निरुपाधिक हो। आनन्दघनजी ने भगवान को 'सकल जतु विसराम' बताया है। इनके समस्त काव्य मे भगवान का 'आनन्दघन' स्वरूप प्रकट हुआ है। योग दृष्टि मे वे कबीर के अधिक निकट है। वस्तुत इन्होने योग को सम्यक् चारित्र के रूप मे प्रकट किया है। इनके मुख्य ग्रन्थ हैं

१ आनन्दघन चौबीमी, २ आनन्दघन बहोतरी। चौबीसी मे २४ जैन तीर्थंकर देवो की स्तुति की गई है। ये स्तवन गीत है, जो सगुण भक्ति के परिचायक हैं, आनन्दघन बहोतरी मे निर्गुण भक्ति विषयक पद है। सगीत-माधुर्य उनके समस्त काव्य मे भरपूर है। शृगार और शान्त रस मे गीतो की रचना हुई है। शृगार की विप्रलम्भ धारा मधुर कलनाद करती हुई शान्त रस सागर मे मिल गई है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने इनको 'मर्मी' कवि कहा है। श्रीमद् आनन्दघनजी के विषय मे अनुसधान की अत्यन्त आवश्यकता है।]

भक्ति कल्पलता की जड है श्रद्धा, प्रेम फूल है, सेवा सुगन्ध है, आनन्द फल है। सदाचार जल है जिससे भक्ति कल्पलता का सीचन होता है। अत भक्त जन कहते हैं कि मनुष्य जीवन अमूल्य हीरा है, इसे कचरे मे मत फेंकिए।

परन्तु ससार की माया तृष्णा मे उलझा हुआ मनुष्य हीरे को खो रहा है। सत धर्मदास ने एक पद मे कहा है

म्हारो हीरो गवायो कचरा मे ॥
इन पाँच पचीसो रे झगरा मे ।
म्हारो हीरो गवायो कचरा मे ॥
कोई कहे रे हीरो पूरव-पश्चिम मे ।
कोई कहे रे उत्तर दखणो मे ॥
पडित वेद पुराण बतावें ।
उलझ गये रे सब रगडा मे ॥
म्हा-ो हीरो गवायो कचरा मे ।
काजी रे कीताव कुरान बतावे ।
उलझ गये सब नखरा मे ॥
म्हारो हीरो गवायो कचरा मे ।
धर्मदास कहे गुरुजी हीरो व-ायो ।
बाध लियो निज अचरा मे ॥

हीरे की पहचान हो जाय तो झगडा रफा दफा हो जाय, परन्तु विडम्बना यह है कि मनुष्य अज्ञानाधकार मे हीरे के बदले मे काच के टुकडो को पाकर फूला नही समा रहा है। सचमुच देखा जाय तो मनुष्य क्षणिक सुखो की चकाचौध मे भ्रमित है। वासन्ती पवन की सुगधित लहरो मे मनुष्य यह भूल जाता जाता है कि यह क्षण भगुर जीवन ओस-बूद के समान है जरा-सी वायु का झोका आया कि धूल मे मिल जायगा। इसीलिए योगीराज ने चेतावनी देते हुए कहा है

क्या सोवे उठि जाग बाउरे।[1]

अजलि जल ज्यू आउ घटतु है, देत पहुरिया घरी घाउ रे॥ क्या० ॥१॥
इन्द्र चन्द्र नागिंद मूनिंद चले, कौन राजा पतिसाह राउरे।
भ्रमत-भ्रमत भव जलधि पाई तें, भगवत भगति सुभाव नाउरे॥क्या० ॥२॥

---

१ योगिराज आनन्दघन रचित पद राग-वेलावल

कहा विलब करे अब बोरे, तरि भव-जल-निधि पार पाउरे ।
'आनन्दघन' चेतनमय मूर्ति सुद्ध निरजन देव ध्याउ र ।। क्या० ।।३।।

'जैसे ओस की बूद कुशा की नोक पर लटकती हुई थोडी देर तक ही ठहरती है, वैसे ही मनुष्यो का जीवन भी अत्यन्त अस्थिर है, शीघ्र नष्ट हो जाने वाला है, इसलिए हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर' ।[२]

प्रसिद्ध भाषाशास्त्री मेनियर विलियम्स के अनुसार भक्ति शब्द की व्युत्पति 'भज्' से की जा सकती है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्ति-भावना, आर्यो के दार्शनिक एव आध्यात्मिक विचारो के फलस्वरूप, क्रमश श्रद्धा-उपासना से विकसित होकर उपास्य भगवान् के ऐश्वर्य मे भाग लेना (भज् = भाग लेना) जैसे व्यापक भाव मे परिणत हुई ।[3] इस ऐश्वर्य मे कोई भी भाग ले सकता है, इसके लिए ससार की आशा-तृष्णा छोडकर ज्ञान-सुधारस पीना होगा, अन्यथा ईश्वरीय ऐश्वर्य की झलक भी नही दिखाई देगी । इस ऐश्वर्य का उपभोग करने के लिए पात्रता चाहिए । श्री आनन्दघन ने यह नुस्खा बताया है

(राग आशावरी)

आसा औरन की कहा कीजै, ज्ञान-सुधारस पीजै ।।
भटकै द्वारि-द्वारि लोकन कै, कूकर आसाधारी ।
आतम अनुभव रस के रसिया, उतरइ न कबहु खुमारी ।।आ०।।१।।
आसा दासी के जे जायै, ते जन जग के दासा ।
आसा दासी करे जे नायक, लायक अनुभौ प्यासा ।।आ० ।।२।।

---

२ कुसग्गे जह ओसबिंदुए,
थोव चिट्ठइ लवमाणए
एव मणुयाण जीवित,
समय गोयम ! मा पमायए ।

—महावीर वाणी वेचरदास दोशी पृष्ठ ९९,

३ हिंदी साहित्य का इतिहास सम्पादक डॉ नगेन्द्र
अध्याय भक्तिकाल-पूर्व पीठिका पृष्ठ सख्या ७२

मनसा प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म अगनि परजाली ॥
तन भाठी अवटाइ पीयै कस, जागे अनुभौ लाली ॥ आ० ॥३॥

अगम पीयाला पीओ मतवाला, चिन्हे अध्यात्म वासा ।
'आनन्दघन' ह्वै जग में खेलै, देखै लोक तमासा ॥आ०॥४॥

ससार की आशा निराशा है, आशा दासी की सतान जगत् की गुलाम है। भक्त जन कहते हैं कि आशा-तृष्णा के बन्धन तोड कर मुक्त हो जाओ। आत्म-सुख मे लीन हो जाना ही स्वाधीनता है।

अज्ञान, जिसे जैन दर्शन मिथ्यात्व कहता है, जीवात्मा को ८४ लाख जीव-योनियो मे भटका रहा है। मिथ्यात्व, जीवात्मा को सत्य से विमुख रखता है। ससार-यात्रा मे पथभ्रष्ट करने वाले मिथ्यात्व के प्रभाव को देखिये कि इसके वशीभूत होकर जीवात्मा मोह-जाल मे फसती है, तृष्णा के खारे जल को पीकर अतृप्त रहती है, दु ख-ग्राह के मुख मे पडकर आर्त्तनाद करती है और क्षणिक दैहिक सुख को शाश्वत समझकर दुर्गति की खाई मे गिरती है। मिथ्यात्व जनित अभिशाप का विश्लेषण करते हुए लकास्टर विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर निनिअन स्मार्ट लिखते है —

'मनुष्य के लिए मुख्य बाधा पाप नही है वरन् अध्यात्म विषयक अज्ञान (मिथ्यात्व) है। अज्ञान के आवरण मे लिपटे रहने के कारण मनुष्य, सत्य के दर्शन नही कर पाता, फलस्वरूप वह ससार की मोह-फास मे फसा रहता है।[४]

---

४ The trouble with man is not in essence sin, so much as spiritual ignorance The truth is veiled from man's sight because of his immersion in the world, and conversely, spiritual ignorance keeps him bound to the world

—'The Religious Experience of mankind'
Author , Ninian Smart ·
Chapter Jainism Page 103

मनुष्य को अन्धकार से प्रकाश में ले जाने के लिए ब्रह्मज्ञानी परोप-कारी सन्तो ने सतत प्रयास किया है। कबीर, आनन्दघन, मीराबाई, चैतन्य-महाप्रभु, देवचन्द्र, यशोविजय, चिदानन्द प्रभृति भक्तो ने अपनी पीयूषवाणी से मनुष्य को भव पक मे पकज की तरह खिले रहने का उपदेश दिया है। यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण नही है कि आनन्दघन की वाणी मे कबीर का ज्ञान-मसाला, मीराबाई की तन्मयता, नरसी मेहता की प्रेम-माधुरी, चैतन्य महाप्रभु की मस्ती, देवचन्द्र की सारगर्भिता, यशोविजय की सहजता तथा चिदानन्द की खुमारी है। इसे ज्ञान-सुधारस कहिये या प्रेम-पचामृत, यह वस्तुत ' आनन्दघन' से बरसने वाला आनन्दरस है जिसे पीकर कौन ऐसा है जो नही झूमता, जो तुच्छ सासारिक सुखो से मु ह नही फेरता जो 'प्रेम-बाण' से घायल होकर प्रिय के विरह मे व्याकुल नही होता। प्रेम-बाण से घायल प्रिया का यह आत्म निवे-दन क्या कत नही सुनेंगे ?

(राग–सोरठ)

कत चतुर दिल ज्यानी हो मेरो कत चतुर दिल जानी।
जो हम चीनी सो हम कीनी प्रीत अधिक पहिचानी हो ।। मेरो०।।१।।

एक बू द को महिल बनायो, तामे ज्योति समानी हो।
दोय चोर दो चुगल महल मे बात कछु नहि छानी हो । मेरो०।।२।।

पाच अरु तीन त्रिया मन्दिर मे राज करै रजधानी हो।
एक त्रिया सब जग बस कीनो, ज्ञान खड्ग वस आनी हो ।।मेरो०।।३।।

चार पुरुष मन्दिर मे भूखे कबहू त्रिपत न आनी हो।
इक असील इक असली बूझै, बूझ्यौ ब्रह्म ज्ञानी हो ।।मेरो०।।४।।

चारु गति मे रुलता बीते, करम की किनहु न जानी हो।
'आनन्दघन' इस पद कू बूझै, बूझ्यो भविक जन प्राणी हो ।।मेरो०।।५।।

वियोगावस्था मे निरावलम्बता के कारण वियोगिनी को अनेक कष्टो का सामना करना पडता है। विरह-पीडित आत्म-प्रिया, दुष्टो के काले-कार-नामो का भण्डाफोड अपने प्रियतम को कर रही है। प्रिया, चिकने घडे के समान

टीठ, माया-जाल के आकर्षण मे फसाने वाले, कुशल षडयत्र से आत्म-खजाने के गुण-रत्नो को चुराने वाले राग-द्वेष' नामक दो विकट चोरो की, अपने राजराजेश्वर अरिहत प्रभु से शिकायत करती है। इन चोरो की सहायतार्थ चार दुष्ट और बैठे हुए है—ये राग-द्वेष रूपी महाचोरो के उच्चाधिकारी है जिनका काम है प्रिया (आत्म-ललना) को इनकी माया-जाल मे फसाये रखना क्योंकि इन्हे यह पता है कि माया का पर्दा हटते ही इन्हे कूच करना पडेगा, अत इन्होने भयकर कुचक्र फैला रखा है। प्रियतम शक्तिशाली है, वह इन विकराल चोरो से प्रिया को बचाने मे सब प्रकार से योग्य है। वीतराग देव 'राग-द्वेष' नामक विकट असुरो से आत्म-प्रिया का उद्धार कर सकते हैं, अन्य किसी मे यह शक्ति नही है।

सत आनदघनजी ने रूपक अलकार द्वारा हृदयविदारक दृश्य प्रस्तुत किया है। राग–द्वेषादि महा चोरो के उच्च अफसर–बोडी-गार्डस–अगरक्षक है—क्रोध मान, माया और लोभ। राग सम्राट है, द्वेष उसका महामत्री है, क्रोध, मान, माया और लोभ है—कुशल प्रशासक। यह नौकर शाही जीवन-महल मे घुसी हुई है, इसी कारण इतनी 'हायतोबा' मची हुई है। भगवान महावीर ने इसीलिए कहा है

कोह माण च माय च,
लोभ च पाववड्ढण।
वमे चत्तारि दोसेउ
इच्छन्तो हियमप्पणो ॥[५]

[जो मनुष्य अपना हित चाहता है, उसे पाप को बढाने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार दोषो को सदा के लिए त्याग देना चाहिए।] रागी स्वामी की शरण मे मुक्ति की आशा करना नादानी है। अत आनन्दघनजी महाराज ने वीतराग देव की सुखदायिनी शरण मे जाने के लिए उपदेश दिया है। प्रभु की दिव्य शरण मे जाने के लिए निर्मल प्रेम-भक्ति होनी चाहिये। निर्मल मन-मदिर मे ही मन मोहन पधारेंगे, अत प्रिया सकल्प करती है —

५ महावीर वाणी वेचरदास दोशी
कसाय सुत्त पृष्ठ स ११९

(राग–वेलावल)

सा जोगे चित ल्याऊ रे वहाला ।
समकित दोरी सील लगोटी, घुलघुल गांठ घुलाऊ;
तत्त्व–गुफा मे दीपक जोऊ, चेतन-रतन जगाऊ रे बहाला ।
अष्ट-करम कडे की धूनी, ध्याना अगन जलाऊ,
उपसम छनने भसम छणाऊ, मलि-मलि अग लगाऊ रे बहाला
आदि गुरु का चेला होकर, मोह के कान फराऊ,
धरम सुकल दोय मुद्रा सोहै, करुणा नाद बजाऊ रे बहाला ।
इह विध योग-सिंहासन बैठा, मुगतिपुरी कू ध्याऊ,
'आनन्दघन' देवेन्द्र से योगी, बहुरि न कलि में आऊ रे बहाला ।

शुद्ध श्रद्धा और शील से विभूपित होकर प्रिया ने प्रियतम–मिलन की वात सोची है । ज्ञान–दीपक से आतम-रत्न को जगमगाकर वह अपने मन मोहन को निमत्रण भेजेगी । करुणा मे नहाकर, धर्म एव शुक्ल ध्यान मे रमकर वह मुक्ति-महल मे प्रिय से भेंट करेगी । उसे यह ज्ञात हो गया है कि उसका प्रिय से वियोग अष्ट-कर्मों के बन्धन के कारण है । राग-द्वेप एव काम, क्रोध, माया तथा लोभादि अष्ट कार्मो ६ के प्रवेश-द्वार ७ है । इनको शुद्ध चारित्र द्वारा बद

---

६ अष्टकम —ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयुष्य ६ नामकम, ७ गोत्र कर्म ८ अतराय कर्म ।

७ इन कर्मों के बन्धन होने मे कारणभूत है मिथ्यात्व, हिंसादि की अविरति, क्रोधादि कपाय वगैरह जिन्हे आस्रव (आश्रव) तत्त्व कहते है । (आस्रव = जिससे आत्मा मे कार्यों का स्रवण हो । इन आस्रव-द्वारो को ढकने वाले आस्रवो को रोक देने वाले सम्यक्त्व-व्रत-उपशम भाव आदि है । इनके साधक समितिगुप्ति, परिसह, यतिधर्म, भावना और चारित्र को सवर तत्त्व कहते है । इसमे नये कर्मवन्ध रुक जाते है । प्राचीन कर्म बधनो का क्षय करने वाले वाह्य–आभ्यन्तर तप को निर्जरा कहते है ।

—ललित विस्तरा
रचयिता श्रीमद हरिभद्र सूरीश्वरजी
हिंदी अनुवाद श्रीभानु विजयजी पृष्ठ ७८

करूगी । कर्म-बन्धन टूट जाएगे, फिर प्रिय से भेंट निश्चित है। पवित्र बाइबिल मे करुणा एव शुद्ध जीवन को ईश्वर मिलन का साधन बताया है —

> Blessed are the merciful for they shall obtain mercy
> Ble sed are the pure in heart, for they shall obtain mercy
>
> —The Sermon on the Mount

करुणामय जीवन मे करुणासागर निवास करते है। कारण स्पष्ट है— जिसके हृदय मे करुणा है वह प्राणीमात्र के साथ मैत्रीभाव रखता है। करुणा-लता पर विश्व-प्रेम के पुष्प खिलते है। करुणा की दिव्य-सुगन्ध से राग-द्वेष की दुर्गन्ध समाप्त हो जाती है, प्रेमधारा बहने लगती है आनन्दघन बरसने लगते है। करुणा आनन्दघन को बुलाने की 'प्रेम-पाती' है।

निर्मल प्रेमरग मे रगी प्रिया (जीवात्मा) शृ गार करती है, अनेक गुण-रत्नो से सजधज कर वह अपने शशिकान्त के दर्शन कर लेती है। मुग्धा नायिका कहती है

(राग मारु)

मनसा नट नागर सु जोरी हो, मनसा नट नागर सु जोरी ।
नट नागर सु जोरी सखि हम, और सबन से तोरी ॥म०॥१॥

लोक लाज नाहिन काज, कुल मरजादा छोरी ।
लोक बटाऊ हसो बिरानौ, आपनो कहत न को भोरी ॥म०॥२॥

मात तात सज्जन जात, बात करत सब चोरी ।
चाखै रस की क्यु करि छूटै, सुरजन सुरिजन टोरी ॥म०॥३॥

ओरहानो कहा कहावत और पै नाहिन कीनी चोरी ।
काछ कछ्यो सो नाचत निबहै, और चा चरि चरि फोरी ॥म०॥४॥

ज्ञान सिन्धु मथित पाई, प्रेम पीयूष कटोरी ।
मोदत 'आनदघन' प्रभु शशिधर, देखत दृष्टि चकोरी ॥म०॥५॥

ज्ञान–समुद्र का मथन करने से प्रेम-पीयूष की कोटरी प्राप्त हुई, प्रेम-सुधा का पान करने से 'आनन्दघन-चन्द्र' के दर्शन हुए। प्रिया-चकोरी मन्त्र-मुग्ध होकर अपने चन्द्र को देख रही है।

प्रेम-भक्ति की भूमिका है

'सेवन कारण पहेली भूमिका रे, अभय अद्वेष अखेद।'[८]

'महामन्त्र की अनुप्रेक्षा' मे श्रीमद् भद्रंकर विजयजी गणिवर लिखते है – जहाँ अभेद वहाँ अभय-यह नियम है। भेद से भय एव अभेद से अभय–यह अनुभव सिद्ध है। भय ही चित्त की चचलता रूप बहिरात्मदशा रूप आत्मा का परिणाम है। अभेद के भावन मे वह चचलता दोष नष्ट होता है एव अन्तरात्मदशा रूप निश्चलता गुण उत्पन्न होता है।

अभेद के भावन से अभय की तरह अद्वेष भी साधित होता है। द्वेष अरोचक भाव रूप है, वह अभेद के भावन से चला जाता है। अभेद के भावन से जैसे भय एव द्वेष टल जाते हैं वैसे ही खेद भी नष्ट होता है। खेद प्रवृत्ति मे श्रान्त रूप है। जहाँ भेद वहाँ खेद एव जहाँ अभेद वहाँ अखेद अपने आप आ जाता है[९]।

आनन्दघनजी महाराज कहते है कि स्वामी कितने उदार है कि जो उनकी सेवा निर्मल भाव (अभय, अद्वेष, अखेद भाव) से करता है उसको वे अपने समान बना लेते है।

वे प्रेममूर्ति है, उनका प्रेम समस्त प्राणियो के लिए है। वे केवल आदर्श रूप ही नही हैं अपितु सकट काल मे उबारने वाले, भक्त के समीप सदैव रहने वाले भक्तवत्सल दीनबन्धु है। वे है सुदर्शनचक्रधारी भगवान जो दुःख-दग्ध

---

८ सभव देव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद,
सेवन कारण पहेली भूमिका रे, अभय अद्वेष अखेद।
—श्रीमद् आनन्दघन रचित श्री सभवनाथ जिन स्तवन
राग–सामग्री

९ महामन्त्र की अनुप्रेक्षा पृष्ठ ११

भक्त की तुरन्त वाह् पकड लेते हैं। मोह्-पक मे फसे हुए, तृष्णा रूपी ग्राह् के दातो मे कराह्ने वाले दु खी जीव को अपने सुदर्शनचक्र से वचाने मे वे विलम्ब नहीं करते। वे भक्त की प्रेमपुकार शीघ्र सुन लेते है उनका सुदर्शनचक्र है- सम्यक् दर्शन। सुदशचक्रधारी जिनेश्वर देव की भक्ति से सम्यक् दृष्टि प्राप्त होती है, हृिय की आख खुल जाती है, तृष्णा और मोह के फदे टूट जाते है और जीवात्मा का उद्धार हो जाता है। श्रीमद् आनन्दघनजी ने वीतराग स्वामी का तारणहार रूप प्रकट किया है। कुरान शरीफ मे तारणहार त्रैलोक्य पूजित प्रभु के विपय मे यह वर्णन मिलता है —

वलम् यकुल्लह
कुफोवन अहद।

(उस सर्वविभूति सम्पन्न, सर्वशक्तिसमर्थ एव कृपा-करुणा के सागर के समान और दूसरा कोई नही है।) उनकी सेवा से जहर अमृत वन जाता है, सर्प-पुष्प माल वन जाती है, वेडिया कट जाती हैं, दरिद्रता मिट जाती है, रोग नष्ट हो जाते है, और जीवन के काटे सुन्दर फूल वनकर महकने लगते है। इसीलिए सत शिरोमणिअखड विश्वास के साथ कहते हैं —

(राग मल्हार)

दु ख दोहग दूरे टल्या रे, सुख-सपदशु भेट,
धींग धणी माथे कियो रे, कुण गजे नर खेट।
॥ विमल जिन० ॥१॥

चरणकमल कमला वसे रे, निर्मल थिर पद देख,
समल अथिर पद परिहरे रे, पकज पामर पेख।
॥ विमल जिन० ॥२॥

मुज मन तुज पद पकजे रे, लीनो गुणमकरद,
रक गणे मदर-धरा रे, इद चद नागिंद।
विमल जिन० ॥३॥

साहिब समरथ तु धणी रे, पाम्यो परम उदार;
मन विसरामी वालहो रे, आतमचो आधार।
विमल जिन० ॥४॥

दरिसण दीठे जिनतणु रे, सशय न रहे वेध,
दिनकर करभर पसरता रे, अधकार प्रतिषेध।
विमल जिन० ॥५॥

अमिय भरी मूरती रची रे उपमा न घटे कोय,
शात सुधारस झीलती रे, निरखत तृपति न होय।
विमल जिन० ॥६॥

एक अरज सेवक तणी रे, अवधारो जिन देव,
कृपा करी मुझ दीजिये रे, 'आनन्दघन पद सेव।
विमल जिन० ॥७॥

आनन्दघनजी महाराज कहते हैं कि 'साहेब' समथ हैं, ऐसे स्वामी के सम्मुख रहने पर कोई भी दुष्ट नही सता सकता। दु ख-दरिद्र्य तो उनके दर्शन मात्र से दूर हो जाते है। उनकी सेवा से तृष्णा क्षय हो जाती है, महत्वाकाक्षा मिट जाती है, फलस्वरूप मेरुपर्वत की समृद्धि एव इन्द्र का वैभव भी तृणवत् लगते हैं। प्रभु के ऐश्वर्य के सामने ये सब नाचीज हैं, तुच्छ है।

भगवान करुणा सागर, अरिहन्त एव वीतराग हे। करुणा की कोमलता के कारण ही इन्द्र उनकी स्तुति मे कहते हैं, 'पुरिसवरपु डरीआण-अर्थात् पुरुषो मे पु डरीक कमल के समान। पु डरीक कमल कोमलता का प्रतीक है। वे अरिहत ह अर्थात् शत्रुओ का नाश करने वाले। अरि कौन ? राग-द्वेषादि। उनकी तीक्ष्णता[10] के सामने ये विकट शत्रु टिक नही पाते। उनकी कठोरता के सामने दु ख-दारिद्र्य क्षण भर भी नही रुकते। वे वीतराग हैं—तटस्थ, माध्यस्थ वृत्तिवाले, समतारस के सागर। आनन्दघनजी महाराज इसीलिए उन्हे 'शान्त-

१० देवेन्द्र उनकी स्तुति मे कहते हैं—पुरिससीहाण = पुरुषो मे सिह के समान,
नमत्थुण—शक्रस्तव सूत्र

सुधारस सागर' कहते हैं। भगवान की कोमलता, तीक्ष्णता तथा उदासीनता के गुणो की 'ललित त्रिभगी' विचित्र है

शीतल जिनपति ललित त्रिभगी, विविध भगी मन मोहे रे;
करुणा कोमलता तीक्ष्णता, उदासीनता सोहे रे।
सर्वजतु हितकरणी करुणा, कर्म विदारण तीक्षण रे;
हानादान रहित परिणामी, उदासीनता वीक्षण रे।

(आनन्दघन कृत श्री शीतलनाथ जिन स्तवन से)

प्रभु की 'सर्वजतु हितकरणी करुणा' का उल्लेख सकलार्हत् सूत्र मे इस प्रकार हुआ है

कोमलता

प्राणियो के परमसुख रूप अकुर को प्रकट करने के लिए नवीन मेघ-समान, तथा स्याद्वादरूप अमृत को बरसाने वाले श्री शीतलनाथ भगवान तुम्हारी रक्षा करें।[११]

अपराध किये हुए प्राणियो पर भी दया से झुकी हुई (आख की) पुतली वाले और थोडे आसुओ से भीगे हुए नेत्र वाले श्री महावीर भगवान महामगल-कारी है।[१२]

तीक्ष्णता

राग द्वेष आदि भीतर के शत्रुओ को हटाने के लिए किये गये अधिक कोप से मानो लाल ऐसी पद्मप्रभु स्वामी की कान्तिया तुम्हारी लक्ष्मी को बढावें।[१३]

---

११ सकलार्हत सूत्र स्तुति सख्या १२,
१२ स्तुति २७,
१३ स्तुति ८,

उदासीनता

अपना अपना उचित-योग्य कार्य को करते हुए कमठ न और धरणेन्द्र पर समान भाव वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान् तु करें।[१४]

उदासीनता वीतरागता की प्रतीक है। वीतराग स्वामी क हुए श्रीमद् भद्रकरविजयजी गणिवर 'महामत्र की अनुप्रेक्षा मे लि

'वीतराग अर्थात् करुणानिधान एव माध्यस्थ गुण के वीतराग अर्थात् अनन्तज्ञान, दर्शन स्वरूप केवल ज्ञान एव केवल-द सर्ववस्तु को जानने वाले एव देखने वाले होते हुए भी सभी से वाले, सभी के ऊपर स्वप्रभाव को डालने वाले, पर किसी के भी प्र भी नही आने वाले प्रभु। देवाधिदेव करुणासागर की अभय शरण दु ख नाशिनी एव सुख-सम्पत्ति प्रदायिनी है।'[१५] भगवान् का वच

'न मे भक्त प्रणश्यति'

मेरे भक्त का कभी नाश नही है अर्थात् मेरी दृष्टि से दूर न

श्रीमद् आनन्दघनजी ने जिनेश्वरदेव का तारणहार स्वरूप सामने रखकर इस भ्रम का निवारण कर दिया है कि वे केवल मा आदर्शरूप ही है। उनकी चरण-सेवा सुख-सम्पत्ति एव सम्पन्नता प्र है, अनेक मगल होने लगते है और आनन्द के बाजे बजने लगते हैं। आनन्दघनजी ने दीनानाथ को 'धींगधणी'—समर्थ स्वामी कहा है।

श्रीमद् आनन्दघनजी ने समन्वय दृष्टि से भगवत्स्वरूप को प्रकट जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है। अनेकान्त अर्थात् निष्पक्ष दृष्टि से भगवान भिन्न-भिन्न रूपो मे दिखाई देते हैं। उनके भिन्न-भिन्न ना विशिष्ट गुणो के कारण है। वे निर्गुण होते हुए भी दिव्य गुण-रत्नो

---

१४ स्तुति २५,

१५ महामत्र की अनुप्रेक्षा पृष्ठ ४६

पित है, वे निरजन होते हुए भी समस्त प्राणियो से प्रेम-सूत्र से बधे हुए है। प्रभु के विविध नामो की महिमा मे श्रीमद् आनन्दघनजी कहते हैं

श्री सुपास जिन वदीए सुख सपत्ति नो हेतु। ललना०
शात सुधारस जलनिधि, भवसायर मा सेतु ।। ललना० श्री सु० ।।१।।
सात महाभय टालटो, सप्तम जिनवर देव। ललना०
सावधान मनसा करी, धारो जिनपद सेव ।। ललना० श्री सु० ।।२।।
अलख निरजन वच्छलु, सकल जतु विसराम। ललना०
अभयदान दाता सदा, पूरण आतमराम ।। ललना० श्री सु० ।।३।।
वीतराग मद कल्पना, रति अरति भय सोग। ललना०
निद्रा तद्रा दुरदसा, रहित अवाधित योग ।। ललना० श्री सु० ।।४।।
परम पुरुष परमात्मा, परमेश्वर परधान। ललना०
परम पदारथ परमेष्ठी, परमदेव परमान ललना० श्री सु० ।।५।।
विधि विरचि विश्वभरु हृषीकेश जगन्नाथ। ललना०
अघहर अघमोचन धणी, मुक्ति परमपद साथ ।।ललना० श्री सु० ।।६।।
इम अनेक अभिधा धरे, अनुभव गम्य विचार। ललना०
जो जाणे तेहने करे, आनन्दघन अवतार ।। ललना० श्री सु० ।।७।।

प्रभु 'सकल जतु विसराम' है। जिस प्रकार मा की गोद मे शिशु आनद पूर्वक सोता है, उसी प्रकार भगवान की अभय शरण मे समस्त प्राणी सुख पाते हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं, वे जगन्नाथ हैं, वे पाप-क्लेश का नाश करने वाले अघमोचन हैं।

ई० १७ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत मे औरगजेब का शासन काल था। उस समय धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू-मुसलमानो के बीच अलगाव था। साम्प्रदायिक सकीर्णता ने समाज मे विषमता उत्पन्न कर दी थी। आर्थिक पिछडेपन के कारण जनता मे घोर निराशा थी। पाखडी धर्म के नाम पर भोली भाली जनता को ठगते थे। हरिजनो की दशा दयनीय थी। धार्मिक कर्म-काडो मे धर्म कैद था। ऐसे समय मे सन्त आनन्दघनजी ने भेद भाव को दूर करने के लिए सत्प्रयास किया। उन्होने घोषणा की कि राम-रहीम कृष्ण-करीम, महादेव एव पार्श्वनाथ एक ही भगवान है

राम कहो रहेमान कहो, कोउ कान्ह कहो महादेव री ।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री ।।राम०।।१।।
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृतिका रूप री ।
तैसे खड कल्पनारोपित आप अखड सरूप री ।।राम०।।२।।
निज पद रमै राम सो कहिये, रहम करै रहमान री ।
करषै करम कान्ह सो कहिये महादेव निरवाण री ।।राम०।।३।।
परसै रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चीन्है सो ब्रह्म री ।
इह विध साधो आप 'आनन्दघन' चेतनमय नि कम री ।।राम०। ४।।

मिट्टी के पात्र भिन्न-भिन्न रूपो मे बनते है परन्तु मिट्टी एक ही है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न नाम हैं, परन्तु भगवान का स्वरूप एक ही है । रग-विरगे लैम्पो मे ज्योति रग-विरगी दिखाई देती है, पर ज्योति का स्वरूप तो सभी लैम्पो मे समान है । निज स्वरूप मे रमण करने वाला राम है, जो रहम अथवा दया करता है वह रहमान है, जो कर्मों का कर्पण कर आत्म स्वरूप को प्रकट करता हैं वह कृष्ण है, महादेव वह है जो निर्वाण प्राप्त कर लेता है । जो निज स्वरूप को परस ले वह पारसनाथहै । आनन्दघन वही है जो शुद्ध चेतनमय है । जैन दशन के स्यादवाद (अनेकान्त-दशन) के मर्मज्ञ सत आनन्द घनजी ने भगवान का सर्वव्यापी सहज स्वरूप जन साधारण को बताकर महोपकार किया है । इस महान सत ने धर्मांधता, सकीर्णता, असहिष्णुता, एव दुराग्रह से पीडित मरणोन्मुख मानव को एकता का अमृत पिलाया । उन्होने समाज मे व्याप्त नैराश्य अधकार को दूर कर आशा का दीपक जलाया । जो धर्म मठाधीशो एव बगुला भक्तो के आडम्बर रूपी कीचड मे फस गया था, उसे मुक्त कर सामान्य जन-मानस मे कमल की तरह खिला दिया ।

सत आनन्दघनजी ने कर्मकाड का खडन किया है परन्तु शुद्ध क्रिया का समर्थन किया है क्योकि यह मोक्ष प्राप्ति का साधन है । वे घोषणा करते है

निज स्वरूप जे क्रिया साधे, तेह अध्यात्म लही रे,
जे किरिया करी चउगति साधे, ते न अध्यात्म कहीए रे ।
(श्री श्रेयाम जिन स्तवन)

जिस क्रिया से, जिस चरित्र से, जिस जीवनचर्या से निजस्वरूप की प्राप्ति होती है वही शुद्ध क्रिया है, जिस क्रिया से-ग्राडम्बर युक्त कर्मकाण्ड से चार गतियो (देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी मे भ्रमण करना पडे, वह आध्यात्मिक क्रिया नही कही जा सकती, उस जीवन को कोई भी पवित्र नही कहेगा।

शुद्ध क्रिया की ग्राधार शिला है शुद्ध श्रद्धा-सम्यक्दर्शन (Right Faith) शुद्ध श्रद्धा से निर्मल भक्ति उत्पन्न होती है। प्रभु सेवा मे उमग रहती है, ग्रानन्द धारा वहती रहती है। भक्त के सारे कार्य-कलाप सहज हो जाते हैं। यान्त्रिक नही। शुद्ध श्रद्धा ग्राने पर ग्रन्तर्दृष्टि खुल जाती है, प्रभु का शुद्ध स्वरूप समझ मे ग्रा जाता है, धर्म-ग्रधर्म का विवेक हो जाता है मोह का पर्दा हट जाता है। शुद्ध श्रद्धा शिव का त्रिनेत्र है जिसकी प्रखर ग्रग्नि-ज्वाला मे ग्रज्ञान भस्म हो जाता है। शुद्ध श्रद्धा के विना मुक्ति-मन्दिर पहुँचना ग्रसम्भव है। श्रद्धा हीन क्रियाएँ निष्फल होती हैं

'शुद्ध श्रद्धान विण सर्व क्रिया करे, छारपर लींपणु तेह जाणो।'[१६] श्रद्धा विहीन भक्त की समस्त क्रियाएँ राख पर लीपन के समान है। राख पर लीपना व्यर्थ है।

शुद्ध श्रद्धा (सम्यक्दर्शन) ग्राने पर भक्त का सारा जीवन, उसका समस्त ग्राचरण ग्रानन्दघन के चरणो म चढने वाला पुष्प बन जाता है। देखिये, श्रद्धावान मस्त फकीर का यह रूप

मेरे प्रान ग्रानन्दघन तान ग्रानन्दघन ॥
मात ग्रानन्दघन तात ग्रानन्दघन।
गात ग्रानन्दघन जात ग्रानन्दघन ॥ मे० ॥१॥
राज ग्रानन्दघन काज ग्रानन्दघन।
साज ग्रानन्दघन लाभ ग्रानन्दघन ॥ मे० ॥२॥
ग्राभ ग्रानन्दघन गाभ ग्रानन्दघन।
नाभ ग्रानन्दघन लाभ ग्रानन्दघन ॥ मे० ॥३॥

---

१६ ग्रानन्दघन कृत श्री ग्रनन्तनाथ जिन स्तवन से उद्धृत।

महर्षि अरविंद कहते है

'तुम भगवान के दिव्य रूप को अपने जीवन मे प्रकट करो। तुम प्रभु मय बनो, उसके प्रकाश मे चमको, अपने कार्यकलापो मे उसकी दिव्य शक्ति प्रदर्शित करो, उसके आनन्द मे रमण करो। प्रभु के आनन्द मे, उसकी महिमा मे, उसके सौंदर्य मे, जीवन को रग दो।'[१७]

सत साईबाबा विश्वास पूर्वक बताते है

जीवन वृक्ष के समान है। प्रभु के प्रति श्रद्धा वृक्ष की जड है। हमारे सारे सम्बन्ध वृक्ष की शाखाएँ हैं। बुद्धि सुगन्धित फूल हैं। आनन्द फल है। उस फल का रस है चरित्र।[१८]

निर्मल श्रद्धायुक्त भक्त का जीवन प्रभुमय बन जाता है। उसकी समस्त क्रियाएँ विमान की तरह उडकर उसे आनन्दसागर के पास पहुँचा देती है। इसीलिए सन्त छोटमजी डके की चोट कहते है

आनन्दसागर सोई सतो भाई आनन्द सागर सोई;
जीहा द्वैत रहे नहीं कोई, सतो भाई आनन्दसागर सोई।
सोह हस जीहाँ लय पावे अनहद ज्योति समावे,
आनन्दसागर जो जन पावे, सो भव मे न आवे॥

---

१७ it is to discover God as thyself and reveal him to thyself in all things Live in his being, shine with his light, act w'th his power, rejoice with his bliss Be that joy and the greatness and that beauty

—The Hour of God Shri Arvindo, Page 11

१८ Our life is like atree, Faith in God is the root of the tree Our relations are its branches The intellect is like a fragrant flower Its fruit is bliss. The juice of that fruit is caracter

—Saint Saibaba The Illustrated Weekly of India Vol XC 21-3-71

निर्मल श्रद्धा से निर्मल जीवन वन जाता है, द्वैतता मिट जाती है, भक्त और भगवान एकाकार हो जाते हैं, भक्त के जीवन की आनन्दधारा आनन्दसागर मे मिल जाती है। भक्त को आनन्दघन के चरण-कमलो मे स्थान प्राप्त हो जाता है।

ज्ञान-भक्ति योग के समन्वय से निज स्वरूप का वोध हो जाता है। ससारी जीव की तीन अवस्थाएँ हैं १ वहिरात्मा २ अन्तरात्मा, ३ परमात्मा वहिरात्मा देह को ही आत्मा मानता है, वह दैहिक सुख मे रचा-पचा रहता है। आनन्दघनजी महाराज वहिरात्मा को 'अघरूप' मानते हैं। अपने सुख को जुटाने मे व्यस्त वहिरात्मा अनेक कुकर्म करके दुर्गति मे गिरता है। अन्तरात्मा वे है जो मोह-निद्रा से जागकर निज स्वरूप प्रकट करने के लिए प्रत्यनशील हो जाते हैं। अपनी शुद्ध साधना से आत्माराम परमात्म-पद प्राप्त कर लेते है। जव मोह नीद टूट जाती है तव जाग्रत जीव को यह भान हो जाता है कि देह और आत्मा भिन्न है।[१६] योग मे इस अवस्था को जागृति कहते है, जैन दर्शन इसे 'सम्यक्त्व' प्राप्ति कहता है। 'सम्यक्त्व' शुद्ध श्रद्धा को कहते है। जैन दर्शन मे 'चौहद गुण स्थानो का वडा महत्व है। यह 'मुक्ति-सोपान' है जिस पर जीवात्मा चढकर मुक्त मन्दिर मे पहुँचती है। मुक्ति-सोपान की १४ पायडिया हैं। प्रथम तीन पायडियाँ मोहावृत्त हैं। इन पर चढते हुए जीवात्मा मायावरण मे वेभान रहती है। चौथी पायडी (सम्यक्त्व गुणस्थान) पर पाँव धरते ही उसे अपने मनमोहन के स्वरूप का भान हो जाता है। तात्पर्य यह है कि चौथे गुणस्थान से जीवात्मा मुक्तिमन्दिर की वास्तविक यात्रा का शुभारम्भ करती है। ग्यारह गुणस्थानो पर पहुँचते-पहुँचते जीवात्मा को मोह-माया जन्य अनेक विघ्न-वाधाओ से जूझना पडता है। वारहवी पाँवडी (सक्षीण कषाय गुणस्थान) मुक्ति मन्दिर की प्रवेश पाँवडी है। १३ वी पाँवडी (सयोगी केवली गुणस्थान) पर चढते ही अन्त-र्दृष्टि पूर्णतया खुल जाती है। यही है केवल ज्ञान या ब्रह्म दर्शन। मुक्ति सोपान की अन्तिम पाँवडी है अयोगी केवली गुणस्थान। यह है सिद्धावस्था। आत्मा

---

१६ अन्नो जीवो अन्न सरीर २।१।६ सूत्रकृतागसूत्र
(आत्मा और है, शरीर और है।)

परमात्मा मे समा जाती है। जीवात्मा का आनन्दघन के चरणो मे चिर निवास हो जाता है। श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज कहते है कि वे मनुष्य कभी नही फिसलते जो निर्मल प्रेम-भक्ति मे प्रभु को भजते है। 'साहेब' की भक्ति के लिए न पाडित्य की आवश्यकता है और न पैसो-टको की। ऊँच-नीच, जाति-पाति का भी कोई भेदभाव नही है। उस 'अमोलक रतनधन' को पाने के लिए निरू-पाधिक-निस्वार्थ प्रेम चाहिए। भक्त प्रेम-भाव से अपने साहेब को विनती करता है

अवधू क्या मागु गुनहीना, वे तो गुनगन गगन प्रवीणा ॥
गाय न जानु बजाय न जानु नै जाणु सुर भेवा।
रीझ न जानु रीजाय न जानु नै जानु पद सेवा ॥ अवधू०॥१॥
वेद न जानु कतेब न जानु जानु न लच्छन छदा ।
तरक वाद विवाद न जानु, न जानु कवि फदा ॥ अवधू० ॥२॥
जा। न जानु जुवाब न जानु, न जानु कथ बाता।
भाव न जानु भगति न जानु जानु न सीरा ताता ॥अवधू०॥३॥
ग्यान न जानु विग्यान न जानु, न जानु भजनामा ।
आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे, रटन करू गुणधामा ॥ अवधू० ॥४॥

इस पद मे प्रभु सेवा का सरल नुस्खा बताया गया है। भक्ति मे विनय भाव का महत्व है। विनय भाव समर्पण की भूमिका है। प्रभु के अभय चरणो मे समर्पण से भक्त भगवान के ऐश्वय को पा लेता है। मामान्य व्यक्ति के लिए भी यह खजाना खुला हुआ है। भगवान महावीर स्वामी कहते है

धर्म रूपी वृक्ष का मूल विनय है और उस मूल मे से प्रकट होने वाला उत्तमोत्तम रस मोक्ष है। विनय से ही मनुष्य कीर्ति, विद्या श्लाघा-प्रशसा और कल्याण शीघ्र प्राप्त कर लेता है।[२०]

श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज कहते है कि सम्यक् ज्ञान मुक्तिदाता है। ज्ञान प्राप्ति के माधन हैं सत्‌शास्त्र, सुगुरू एव सत्सगति। सत्‌शास्त्र को सम-

---

२० एव धम्मस्स विणओ, मूल परमो से मोक्खो।
जेण किर्त्ति सुय सिग्घ, निस्सेस चाभिगच्छइ ॥
(दशवैकालिक सूत्र अ ९ उ २ गा

मन के लिए अन्तर्दृष्टि चाहिये। सुगुरु के बिना ज्ञान मिलना सम्भव नहीं। सत्संगति भी इस कलिकाल में दुर्लभ है। इनका अकाल सा पड़ गया है। भाग्य बिना इनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसी परिस्थिति में दीनानाथ वीतराग स्वामी की भक्ति ही कल्पतरु के समान है। भक्ति से सब साज-सामान सहज उपलब्ध हो सकते हैं। इसीलिए श्रीमद् आनन्दघनजी निर्मल भाव से (अभय, अद्वेष, अखेद भाव से) प्रभु सेवा का उपदेश देते हैं।

संसार में भ्रमण का कारण है ममता। भव-भ्रमण से मुक्त करने वाली है समता। भगवान समतावंत हैं—रागद्वेष से रहित हैं। समरस में रमण करने वाली वीतराग देव की सेवा-भक्ति से समता प्राप्त होगी। समरस अर्थात् शान्त रस के क्षीर सागर में शेषनाग (सुषुम्ना) की सेज पर सोने वाले लक्ष्मीरमण (मुक्ति लक्ष्मी के स्वामी) सच्चिदानन्द की सेवा-पूजा से ममता मिट जायगी और समता-धार प्रवाहित होगी। आनन्दघनजी महाराज समता-रंग में रमन करने का उपदेश देते हैं —

(राग—आशावरी)

साधो भाई समता संग रमीजे अवधू ममता संग न कीजै। साधो० ॥
सम्पत्ति नाहीं नाहीं ममता में, रमता राम समेटे।
खाट पाट तजी लाख खटाऊ अन्त खाख में लेटे ॥ साधो० ॥१॥
धन धरती में गाड़े बौरा, धूरि आप मुख ल्यावे।
मूषक साप होइगो आखर, तातें अलच्छी कहावे ॥ साधो० ॥२॥
समता रत्नागर की जाई, अनुभव चंद सुभाई।
कालकूट तजी भव में श्रेणी, आप अमृत ले जाई ॥साधो०॥३॥
लोचन चरन सहस चतुरानन, इनतें बहुत डराई।
आनन्दघन पुरुषोत्तम नायक हितकरी कंठ लगाई। साधो० ॥४॥

आत्मप्रिया कहती है कि ममता हजारों नेत्रों से, मुझे देख रही थी, हजारों पाँवों से दौड़कर मेरा पीछा कर रही थी, चारों ओर मेरी घात लगाए हुए थी। परन्तु मैंने समतारमण स्वामी प्रभु की अभय शरण पकड़ ली अतः उसके सारे पासे उल्टे पड़े। इस संसार में नवरस प्रवाहित हैं परन्तु साधुजन समता रंग में रमने को लगते हैं। नव रसमय संसार की झाँकी देखिये —

१ दु ख दृष्टि से ससार करुणारस से भरपूर है ।
२ पाप दृष्टि से ससार रौद्र रस से भरपूर है ।
३ अज्ञान दृष्टि से ससार भयानक रस से भरपूर है ।
४ मोह दृष्टि से ससार वीभत्स और हास्य रस से भरपूर है ।
५ सजातीय दृष्टि मे ससार स्नेहरस से भरपूर है ।
६ विजातीय दृष्टि से ससार वैराग्य रस से भरपूर है ।
७ कर्म दृष्टि से ससार अद्‌भुत रस से भरपूर है ।
८ धर्म दृष्टि से ससार वीर और वात्सल्य रस से भरपूर है ।
९ आत्मदृष्टि से ससार समतारस से भरपूर है ।
१० परमात्म दृष्टि से ससार भक्तिरस से भरपूर है ।
११ पूर्ण दृष्टि से सभी रसो की समाप्ति शान्तरस मे होती है ।

जैसे सूर्य के श्वेतवर्ण मे सप्तरग होते हैं, वैसे सभी रस तृष्णा क्षय रूप, शमरस रूप, स्थायी भाव, विभावानुभाव, सचारी भाव प्राप्त कर शान्तरस मे परिणत हो जाते हैं ।[२१]

नवरसमय ससार मे भक्तजन समतारस मे ही रमते हैं ।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है । भक्ति-ज्ञान एव कर्म की साधना से भगवत्स्वरूप प्राप्त हो जाता है । श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज के अनुसार योग ही सम्यक् चारित्र है । कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने योग को सम्यक् चारित्र माना है । आनन्दघनजी महाराज कालिकाल सर्वज्ञ की परम्परा के पहुँचे हुए महात्मा थे । भगवद् भक्त अपने जीवन को प्रभु का पावन मन्दिर बना लेता है । प्रिय मिलन के लिए प्रिया ने अपने जीवन को अत्यन्त पवित्र बना लिया है । उसका शृ गार देखिये —

आज सुहागन नारी, औधू, आज सुहागन नारी । टेक
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी नीज अग चारी ।।औधू० ।।१।।
प्रेम प्रतीत राग रुचि रगत, पहिरे जीनी सारी ।
मँहिदी भक्ति रग की राची, भाव अजन सुखकारी ।।औधू० ।।२।।

---

२१ श्रीमद् भद्रकर विजयजी महाराज के सदुपदेश से प्राप्त ।

सहज स्वभाव चूरी मैं पेनी, थीरता कगन भारी ।
ध्यान उरवसी उर मे राखी, पियगुन माल आधारी ।।औघू० ।।३।।
सूरत सिंदूर माग रगराती, निरते वेणी समारी ।
उपजी ज्योत उद्योत घट, त्रिभुवन, आरसी केवल कारी ।।औघू०।।४।।
उपजी धूनी अजपा की अनहद, जीत नगारे वारी ।
झडी सदा 'आनन्दघन' वरखत, बन मोर एकनतारी ।।औघू०।५।

प्रेम की रग-बिरगी चुनरिया ओढकर भक्ति की मेहदी रचाकर, सहज स्वभाव की चूडी पहनकर और प्रिय के गुण-रत्नो की माला (सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र—रत्नत्रयी) से सजकर प्रिया-अभिसारिका वनठन कर प्रिय मिलन हेतु उल्लासपूर्वक चल पडी है । प्रिया के इस रूप को निहार कर प्रिय क्यो नही रीझते ? शुद्धआत्मदर्पण मे मनमोहन का रूप छलक उठा ।

श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज ज्ञानी, प्रेम योगी एव समदर्शी सत थे । उन्होंने प्रभु दर्शन के लिए अष्टाग योग को प्रबल साधन माना है । परन्तु उनकी दृष्टि मे योग और सम्यक् चारित्र एक ही है । योग दर्शन के अनुसार योग के आठ अग है १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७, ध्यान, ८ समाधि । समाधि अवस्था मे योगी का ब्रह्मरध्र खुल जाता है और उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है । इस अवस्था मे सहस्रदल कमल खुल जाता है और उससे मकरद बिंदु टपकती है । कु डलिनी मकरद बिंदु (सुधारस) का पान कर ब्रह्मानन्द मे लीन हो जाती है । महाकु डलिनी नाडी शक्ति (Divine Energy) का निवास है अग्निचक्र । व्यक्ति मे प्राण के साथ यह शक्ति जन्मना आती है । अग्निचक्र के ऊपर मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धाख्यचक्र, आज्ञाचक्र और सहस्रारचक्र है । अतिम को शून्य चक्र या कैलाश भी कहते ह । यहाँ सदा अमृत झरता है । योगी का कर्त्तव्य, साधना (सम्यक् चारित्र) द्वारा कु डलिनी को जगाकर क्रमश इसी चक्र तक ले जाना और अमृत पिलाना है । कु डलिनी से ऊपर उठने पर शब्द होता है जिसे नाद कहते हैं । नाद मे प्रकाश होता है जिसके प्रकट रूप को बिंदु कहते हैं । यही है नित्यानन्द अवस्था । यही है ब्रह्मदर्शन, केवल ज्ञान

या Eternal Bliss। यही है समनारस, यही है ब्रह्मानद। योगिराज आनन्द घनजी का यह पद अष्टाग योग का दिग्दर्शन कराता है —

आतम अनुभव प्रेम को, अजब सुण्यो विरतन।
निर्वेदन वेदन करे, वेदन करे अनन्त।
म्हारो बालुडो सन्यासी, देह देवल मठवासी ॥१॥
इडा पिगला मारग तज जोगी, सुखमना[२२] घर आसी।
ब्रह्मरध्र मधि आसणपूरी बाबु, अनहद नाद वजासी ॥२॥
जम नियम आसन जयकारी, प्राणायाम अभ्यासी।
प्रत्याहार धारणाधारी, ध्यान समाधि समासी ॥३॥
मूल उत्तर गुण मुद्राधारी, परयकासन चारी।
रेचक पूरक कुभक कारी, मन इन्द्री जयकारी ॥४॥
स्थिरता जोग युगति अनुकारी, आपो आप विचारी।
आतम परमातम अनुसारी, सीजे काज सवारी ॥५॥

इस पद से यह सुविदित हो जाता है कि योगिराज श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज अष्टाग योग के मर्मज्ञ थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ज्ञान-भक्ति और योग का त्रिवेणी सगम था।

इस विरले सत के विपय मे अनेक चमत्कार-कथाए प्रचलित है। जोधपुर की महारानी से महाराज रूठ गये। महारानी चितत रहने लगी। उसने सुना कि जोधपुर के समीपवर्ती डूगर मे आनन्दघन नामक योगी भगवद् भक्ति मे लीन रहते है। उनकी कृपा से दु ख दुविधा मिट जाती है। महारानी ने उनके दर्शन किये। वह प्रति दिन उनके दर्शनार्थ जाने लगी। एक दिन उसने योगिराज को अपनी मनोव्यथा सुनाई। सत ने एक कागज के पर्चे पर लिखा 'राजा-रानी दो मिले उसमे आनन्दघन को क्या'। रानी को वह पुर्जा देकर

---

२२ शरीर मे ६२ हजार नाडिया है, ईडा, पिंगला, सुपुम्ना आदि। सुपुम्ना शम्भवी शक्ति है।
—हिंदी साहित्य कोश प्रकाशक ज्ञान मडल लिमिटेड, वनारस पृष्ठ ६११

सवधित है। उसके अग-प्रत्यग भी रिसीवरो एव ट्रासफार्मरो का क
वह अन्य दिव्यात्माओ की विद्युत् शक्ति से भी प्रभावित रहता
प्रत्येक जीवात्मा दूसरी से विद्युत् शक्ति से जुडी हुई है। जिस जी
शक्ति की जितनी प्रवलता होगी वह अन्य जीवो को उतना ही प्र
सकेगा। महापुरुषो के चमत्कारो का कारण भी यह विद्युत् शक्ति ह
दिव्य शक्ति का क्षेत्र विशाल एव व्यापक होता है। वे जहाँ विचरते है,
क्षेत्र अनेक मगलो से परिपूरित रहता है। प्रकृति सरस वन जाती है ए
त्माओ मे कोमल भावो का प्रस्फुटन हो जाता है।

सत-महात्माओ के विचारो को विद्युत् तरगे दूर-दूर तक ले जा
प्रचण्ड एव प्रखर मनोबल के कारण उनका मन्तव्य सबधित व्यक्ति को
वान के समान वेधता है। विज्ञान के विद्युद्रंगिक सिद्धान्त के अनुसार चम
महात्माओ की दिव्य विद्युत् एव चुम्बकीय शक्ति के कारण घटित होते
श्रीमद् आनन्दघनजी पहुँचे हुए योगी थे, अत ये चमत्कार उनके दिव्य
सहज जीवन के परिचायक हैं। आनन्दघनजी के जीवन का सर्वोत्कृष्ट चमत्
है—समता भाव।

आनन्दघनजी ने विविध राग-रागिनियो मे गीतो की रचना की है
ये विभिन्न राग आत्म ललना की जागृति, विरहोन्माद, मिलनोत्कठा, मिलन
खुमारी एव दशन सुख आदि भाव-दशाओ को प्रकट करते हैं। श्री ऋषभ
स्वामी का प्रथम स्तवन मारु राग मे गाया गया है। मारू राग युद्धोत्स
जगाने के लिए उपयुक्त है। राग-द्वेषादि विकट शत्रुओ से जूझने के लिए अद
उत्साह एव शौर्य चाहिए। श्री अजितनाथ जिन स्तवन मे आशावरी राग है
मोह-नीद के पश्चात् जागृति के प्रभात मे प्रिय मिलन की आशा का सचार हो
स्वाभाविक है। इसी प्रकार स्तवन गीतो एव पदो मे विविध राग-रागिनिया
प्रयोग सप्रयोजन हुआ है। समस्त गीतो मे सगीत की मधुरता आत्म विभोर क
देती है।

श्रीमद् आनन्दघनजी के समस्त गीत अनुभव रसामृत से भीगे हुए है
उन्होने जैन दर्शन का सागर अपने काव्य-कलश मे भर लिया है। इनकी शै
सूरज की किरण के समान है। किरण मे सप्त रग है, परन्तु वह श्वेत र

वाली दिखाई देती है। वैसे ही श्रीमद् आनन्दघनजी ने अपने संक्षिप्त काव्य में जैन दर्शन का समन्वयकारी रूप प्रस्तुत किया है। समस्त धर्म उसमें समाये हुए हैं। उनका काव्य यह प्रकट करता है कि जैन दर्शन किसी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं है यह आत्म दर्शन है जिससे मानव मात्र दुःख दारिद्र्य से मुक्त होकर शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है। अन्तरंग दृष्टि से देखने पर आनन्दघनजी का काव्य रत्नाकर के समान लगता है। अन्तर्दृष्टि वाला काव्य ममज्ञ एवं भक्त हृदय ही इसके रत्नों को पा सकता है। मैं तो इस दिव्य सागर-तट पर खड़ा-खड़ा चन्द्र ज्योत्स्ना में क्रीडा करती उत्फुल्ल लहरों को देख कर ही तृप्त हूँ।

मैं अल्पज्ञ हूँ। भक्ति वश कुछ अटपटे शब्द पुष्पों को भूमिका के रूप में श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज के चरणों में चढ़ा रहा हूँ।

'आनन्दघन ग्रन्थावलि' में 'आनन्दघन चौवीसी' 'आनन्दघन बहोतरी' तथा अन्य पदों के सरलार्थ और सुबोध भाष्य हैं। लेखक ने निष्ठा से कार्य किया है। योगिराज के गीतों में निहित भावों को प्रकट करने के लिए अन्तर्दृष्टि चाहिये, जैन दर्शन का विशद एवं अन्तरंग अध्ययन चाहिये तथा काव्यात्मा में प्रवेश के लिए कवि हृदय चाहिए। साथ ही चाहिये भक्ति रंग में रंगी दृष्टि।

मेरी दृष्टि में लेखक का प्रयास स्तुत्य है 'आनन्दघन ग्रन्थावलि' जनता में अधिकाधिक लोक प्रिय होगी इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शिवमस्तु सर्वजगत

फालना (राजस्थान)
दिनांक 15, 5, 74

जवाहरचन्द्र पटनी
एम ए, (हिन्दी एवं अंग्रेजी)
उप प्राचार्य – श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय, फालना

श्री आनंदघनजी के जीवन प्रसंग

श्री आनदघनजी १७ वी शताब्दी के अन्तिम भाग और अठारहवी शती के आरम्भिक तीन दशको मे विद्यमान थे। उनके गच्छ, दीक्षागुरु, तथा सहयोगियो के सम्बन्ध मे प्रामाणिक जानकारी नही मिलती है। किन्तु यह निश्चित है कि इनका उपाध्याय श्रीयशोविजय से मिलाप हुआ। विशिष्ठ पुरुषो की जीवन घटनाओ का इतना महत्व नही होता जितना महत्व उनकी वाणी का होता है। वाणी द्वारा वे सदा विद्यमान रहते है।

श्री आनदघनजी जैनागमो के मर्मज्ञ, न्याय, तर्क, छन्द, अलकार और सगीत के उत्कृष्ट विद्वान थे। उनकी जीवनचर्या, विचारधारा और मान्यता के दर्शन स्थान-स्थान पर उनकी वाणी मे भरे पडे है। जो व्यक्ति उनकी कृतियो का मनन और अनुशीलन करेगा, वह उनके रहन-सहन तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति आदि से सुचारू रूप से परिचय पालेगा।

श्री आनदघनजी जैनागमानुसार साधुचर्या का पालन करते थे। उनके साधुत्व का आदर्श इस आगम वाक्य के अनुसार था —

"लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविये मरणे तहा।
समोनिंदा पससासु, तहा मणावमाणओ ॥"

उनकी आत्मध्वनि उनकी वाणी से भी सुन लीजिये—

मान अपमान चित सम गिणे, सम गिणे कनक पाषाण रे।
वदक निंदक सम गिणे, इश्यो होय तू जाण रे ॥
सर्व जग जन्तु सम गिणे, गिणे तृण मणि भाव रे।
मुक्ति ससार बेहु सम गिणे, मुणे भव-जलनिधि नाव रे ॥

(श्री शान्तिनाथ स्तवन)

इस प्रकार आत्मा मे रमण करते हुये अपने आराध्य के प्रति उनका 'कपट रहित आत्मापण था। वे सदा 'अभय, अद्वेष और अखेद' मे लीन रहते थे। यही योग की उत्कृष्ट स्थिति है और यही साधना का उच्चतम मार्ग है। पर वस्तु को अपनी समझना ही भय का कारण है। अज्ञान दशा (मोह दशा) ही भय है। अपने स्वरूप का ज्ञान होना अभय है। इस दशा का नाम ही योग है। स्व पर का भेद ज्ञान ही मुख्य है। स्वभाव रमणता ही अभय, अद्वेष और अखेद की द्योतक है।

श्री आनदघनजी का तत्कालीन समय मे साधुओ मे फैले हुये शिथिलाचार की ओर ध्यान गया। इस स्थिति की उन्होने भर्त्सना भी की है—

गच्छना भेद बहु नयण निहालतां, तत्त्वनी बात करता न लाजे ॥
उदरभरणादि निज काज करता थका, मोह नडिया कलिकाल राजे ॥
पुरुष परम्पर अनुभव जोवता रे अन्धो अन्ध पलाय।
वस्तु विचारे जो आगमे करी रे, चरण धरण नहीं ठाय ॥"

उनका तो स्पष्ट मत था—

'आतम ज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्यलिंगी रे।
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, 'आनदघन' मति सगीरे ॥'

किन्तु इस भर्त्सना आदि का कोई परिणाम न निकलने से वे अध्यात्म ग्रन्थो के स्वाध्याय एव आत्मध्यान मे विशेष आकृष्ट हुये। स्वाध्याय ध्यान द्वारा आत्मानद मे लीन रहने लगे। उनकी दृढ धारणा थी कि राग-द्वेष ही ससार का मूल कारण है। साधु जीवन स्वीकार करने के बाद भी राग-द्वेष के खटराग मे ही फसा रहना तो आत्मा से विमुख होना है, अपने ध्येय से गिरना है। वे इन सबसे उदासीन होकर अपने ध्यान-स्वाध्याय मे लीन रहने लगे।

सेठ के लिये व्याख्यान-प्रतिबन्ध

गुजरात के किसी नगर मे श्री आनदघनजी का चतुर्मास था। उस नगर मे ऐसी परम्परा चल पडी कि अमुक सेठ के आये विना साधु व्याख्यान आरम्भ नही कर सकते थे। पर्वाधिराज पर्यूषण के अवसर पर श्री आनदघन

जी यथा समय व्याख्यान आरम्भ करने लगे, तव सेठ की माता ने कहा कि मेरे पुत्र के आये बिना आप व्याख्यान आरम्भ नही कर सकते। कुछ समय श्री आनदघनजी ने प्रतीक्षा की। लोगो ने सेठ को जल्दी आने के लिये सूचना भिजवाई किन्तु सेठ आया नही। पुन व्याख्यान आरम्भ करने लगे, तव फिर लोगो ने भी कहा सेठजी को आ जाने दीजिये, नही तो वे नाराज होगे। इम पर आनदघनजी विचार करने लगे कि इस प्रकार श्रावको के प्रतिवन्ध से आगम विरुद्ध होना योग्य नही है। आगम के अनुसार स्वाध्याय काल का साधु को ध्यान रखना ही चाहिये। आगम विरुद्ध मुझे तो नही जाना चाहिये, चाहे कोई नाराज हो या खुश हो। ऐसा विचार कर उन्होने कल्पसूत्र का व्याख्यान आरम्भ कर दिया। सेठ को जव यह समाचार मिला तो वह वहुत क्रोधित हुआ। क्रोध मे भरे हुए वह उपाश्रय मे आया सेठ आनदघनजी से कहने लगा, "मेरे आये विना आपने व्याख्यान कैसे आरम्भ कर दिया।" श्री आनदघनजी ने उत्तर मे कहा--"आगमों के अनुसार स्वाध्याय काल मे ही सूत्र-वाचन होता है, अन्य समय नही। इसलिये मैंने व्याख्यान आरम्भ कर दिया।" सेठ ने कहा—"मेरे उपाश्रय मे तो परम्परानुसार ही व्याख्यान होगा।" श्री आनदघन जी ने कहा--"मुझे तो आगमो के अनुसार ही व्यवहार करने की आवश्यकता है, अन्य वातो की मुझे कोई आवश्यकता नही है। यह उत्तर सुनकर सेठ और भी क्रोध मे भर कर वोला—"मेरे उपाश्रय मे रहना हो तो मेरे अनुसार ही चलना होगा, नही तो मेरे उपाश्रय मे नही रह मकते। सेठ के इस प्रकार कहने के पश्चात् और कल्पसूत्र का व्याख्यान पूर्ण होने के वाद श्री आनदघनजी ने विचार किया कि इस प्रकार के प्रतिवन्ध मे मुझे तो आगमो के अनुसार साधुचर्या मे, तत्पर रहकर विचरना चाहिये। इस निश्चय के अनुसार श्री आनदघनजी ने समिति-गुप्ति मे सजग रहते हुये एकान्त स्थानो मे (गिरि कदराओ और श्मसान मे) रहकर साधना आरम्भ कर दी। इस तरह रहते हुये उन्होने प्रकृति के कोप और सर्प सिह आदि के उपसर्ग आनन्दपूर्वक वहन किये। इन उपमर्गों से तनिक भी विचलित नही हुये। निसगता वढने लगी। इससे ऐसे योगी महात्मा को विशिष्ट शक्तिया प्राप्त हो गई हो तो कोई आश्चर्य की वात नही।

श्री योगीराज आनदघनजी के सबध मे कई चमत्कारपूर्ण किंवदतिया सुनी जाती है। इन प्रवादो के सत्यासत्य के विषय मे निर्णय होना तो सभव नही है किन्तु योगीराज चमत्कारी पुरुष थे इसमे कोई सदेह नही है। हम लोग उनके अनुयायी भक्त अपने श्रद्धेय के प्रति चाहे कितनी भी उच्च कोटि की भावनायें रखें, वह प्रामाणिक नही मानी जा सकती है किन्तु अन्य धर्मावलवियो के उल्लेख अधिक विश्वसनीय माने जा सकते है। परणामी सप्रदाय के सस्थापक श्री प्राणलालजी, आनदघनजी के समसामयिक थे। उनके जीवन चरित्र मे यह उल्लेख मिलता है—

"श्री प्राणलालजी एक समय स १७३१ से पूर्व मेडता गये थे। उनका मिलन और शास्त्रार्थ श्री आनदघनजी से हुआ जिसमे उनका (आनदघनजी) पराभव होने से उन्होने कुछ प्रयोग श्री प्राणलालजी पर किये किन्तु उससे उनका कुछ भी बिगाड नही हुआ। जब वे दूसरी बार मेडते गये तब उनका (आनदघनजी का) स्वर्गवास हो चुका था।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री आनदघनजी का स्वर्गवास स १७३१ मे हुआ था तथा वे चमत्कारी योगी थे।

मै यहा उनके सम्बन्ध की किंवदतियो का सकलन सक्षिप्त मे देना समीचीन समझता हूँ जिससे पाठको को उन्हे समझने का पूरा-पूरा अवसर मिल जावे।

उ श्रीयशोविजयजी और आनदघनजी का मिलन

उपाध्याय श्रीयशोविजयजी और श्री आनदघनजी का मिलन तीन बार हुआ, कहा जाता है। नीचे उनके मिलन की घटनाये दी जा रही है।

(१)

सतरहवी और अठारहवी शती मे जैन साधुओ मे उपाध्याय श्री यशोविजयजी बहुश्रुत, जैन न्याय के प्रसिद्ध व्याख्याता, विवेचन कर्त्ता विद्वान थे। उनकी व्याख्यान शैली अनुपम थी। उनका व्याख्यान सुनने के लिये सैकडो की सख्या मे श्रावक-श्राविका एव साधु साध्विया एकत्रित होते थे।

एक समय की घटना[1] है कि उ यशोविजयजी का व्याख्यान अध्यात्म विषय पर हो रहा था। उस समय श्रोताओ मे सभी प्रकार के व्यक्ति उपस्थित थे। व्याख्यान शैली और विषय विवेचन से श्रोतागण मुग्ध हो रहे थे। एक श्लोक के विवेचन ने तो कमाल ही कर दिया था। श्री आनदघनजी उन दिनो उसी स्थान पर थे। उन्होने भी उ श्री यशोविजयजी की विवेचन शैली की प्रशसा सुनी थी। उस दिन व्याख्यान मे वे भी एक कोने मे उपस्थित थे। व्याख्यान समाप्ति पर श्री उपाध्यायजी ने चारो ओर दृष्टि फैलाई। उन्होने एक कोने मे एक वृद्ध और सीधे-सादे साधु को देखा। उन्हे ऐसा लगा कि इस साधु पर व्याख्यान का कोई प्रभाव नही हुआ। श्री उपाध्यायजी ने इस सीधे-सादे साधु की ओर दृष्टिकर पूछा—'मुनिराज! आपने व्याख्यान ठीक ढग से सुना या नही? आध्यात्म ज्ञान के इस व्याख्यान मे आपको कुछ समझ पडी या नही?" इस प्रश्न के उत्तर मे वह सरल सत बोला—"आप श्री के आध्यात्मिक व्याख्यान मे उत्तम विवेचन-दक्षता प्रगट हुई है।" श्री उपाध्यायजी उस सत के मुख की ओर बरावर दृष्टि किये हुये थे। उन्हे ऐसा लगा कि यह साधु विशेष ज्ञानी और योगी होना चाहिये। उन्होने साधु से नाम पूछा। उत्तर मे जब "आनदघन" सुना तो वे तत्काल ही अपने स्थान से उठकर श्री आनदघनजी के पास आये। उनका बहुत सम्मान किया। आदर सहित उन्हे वहा से उठाकर जहा वे बैठे थे वहा ले आये और उनको उच्चासन पर बैठाया। श्री उपाध्यायजी ने श्री आनदघनजी की प्रसिद्धि पहिले से ही सुन रखी थी किन्तु उनसे साक्षात्कार का अवसर कभी नही मिला था। आज अवसर मिलते ही अपना हृदय खोल कर उनके चरणो मे रख दिया। और बार-बार जिस श्लोक का उपाध्यायजी विवेचन कर रहे थे उसका विवेचन करने के लिये प्रार्थना की। इस पर आनदघनजी ने तीन घटे तक उस श्लोक का विशद विवेचन किया। श्रोतागण मुग्ध भाव से बैठे सुन रहे थे। किसी को समय का भान ही न रहा। सब के हृदय मे ज्ञान व वैराग्य की धारा बह निकली। इसी अवसर

---

१ इस घटना के लिये कोई इसे आबू मे हुई कहते हैं, कोई मेडता हुई कहते है।

पर उपाध्यायजी ने अष्ट पदी स्तुति श्रा आनदघनजी के सम्मुख उपस्थित की। ऐसे थे अध्यात्म ज्ञानी और योगी आनदघनजी।

(२)

कुछ व्यक्तियो का कहना है कि श्री आनदघनजी अपनी सावना मे लीन थे और आवू के आसपास विचरण कर रहे थे। उस समय यह 'अष्टपदी' वनाई गई थी। घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक समय श्री उपाध्यायजी एक दो अन्य साधुओ सहित श्री आनदघनजी के दर्शनार्थ उन्हे ढूढते हुये आवू के पास के मन्दिरो मे गये। इनको श्री आनदघनजी एक मन्दिर मे चौवीस तीर्थकरो की स्तवना मे मस्त दिखाई पडे। वे लोग चुपचाप एक ओर खडे होकर स्तवना सुनने लगे। श्री उपाध्यायजी की स्मरण शक्ति इतनी तेज थी कि एक दफा सुनी हुई वात कभी भूलते नही थे। वावीस तीर्थंकरो की स्तवना पूर्ण हो गई। तेवीसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की स्तवना आरम्भ करने वाले थे कि उन्हे अपने पीछे कुछ खटका हुआ सुनाई दिवा। वे पीछे की ओर देखने लगे। इन्हें एक कोन मे उपाध्यायजी नजर आये। वे तत्काल ही वहा से उठकर उनके पास आये। कुछ लोग यह भी कहते है कि वे वहा से उठकर बाहर चले गये। इसके पश्चात् उनका आपस मे वार्त्तालाप हुआ और अष्टपदी की रचना हुई।

(३)

और भी दो घटनायें श्री आनदघनजी और श्री उपाध्यायजी के सम्बन्ध मे कही जाती है। श्री आनदघनजी ने अपनी वृद्धावस्था जानकर उ यशोविजयजी को योग सम्वन्धी कुछ रहस्य की बातें वताने के लिये वुलाया। श्री उपाध्यायजी आये। उन्हे आये कुछ समय व्यतीत हो गया किन्तु श्री आनदघनजी ने कुछ कहा नही। श्री उपाध्यायजी ने विचार किया कि शायद मुझे बुलाने की वात विस्मरण हो गई है। अत प्रात काल उन्होने श्री आनदघनजी को को स्मरण कराया। तव आपने उत्तर मे कहा—'अव मुझे कहने जैसा कुछ है नही। मुझे इस वात का खेद है कि आप मे अभी तक धैर्य और स्थिरता की कमी है। यह तो आपको ध्यान रखना ही चाहिये था। मैने जव आपको कुछ कहने के लिये वुलाया था तो अवसर देखकर ही कहता। जव तक आप मे

स्थिरता और धैर्य की पूर्णता न हो तब तक योग के गूढ रहस्य बताने का प्रसग ही उपस्थित नही होता। अभी तो यह सब मेरे साथ ही जावेंगे।

(४)

दूसरी घटना इस प्रकार कही जाती है कि एक बार उ श्री यशोविजय जी श्री आनदघनजी के निकट 'स्वर्ण सिद्धि' लेने गये। इस योग विद्या को बताने के लिये श्री आनदघनजी किसी भी प्रकार तैयार नही हुये। कारण यह था कि वे उपाध्याय जी को इसके योग्य नही समझते थे।

मेरे समझ मे यह बात नही आती है कि उपाध्यायजी जैसे महान् स्थिति प्रज्ञ और चारित्र मे सजग रहने वाले के लिये स्वर्ण सिद्धि की इच्छा करना कहा तक उचित है। यह बात किसी भक्त की कल्पना ही ज्ञात होती है।

ज्वर को वस्त्र मे प्रवेश करके वार्तालाप करना

एक समय की घटना है कि श्री आनदघनजी जोधपुर राज्यान्तगत किसी गाव के बाहर ठहरे हुये थे। एक व्यक्ति अथवा जोधपुर नरेश उनके दर्शनार्थ वहा आया। उस समय श्री आनदघनजी तीव्र ज्वर से पीडित थे। उन्होंने ज्वर को एक वस्त्र मे छोडकर, उस वस्त्र को अपने निकट ही रख दिया और आगन्तुक से बातचीत कर उसे उपदेश दिया। उपदेश श्रवण करते समय आगन्तुक की दृष्टि उस कम्पित वस्त्र की ओर गई। उसे आश्चर्य हुआ कि यह वस्त्र कैसे कम्पित हो रहा है! वह अपनी उत्सुकता दबा नही सका और श्री आनदघनजी से प्रश्न कर ही बैठा। स्वामीनाथ! यह वस्त्र कम्पित क्यो हो रहा है? प्रथम तो उन्होंने उत्तर नही दिया। वे मुस्कराते रहे, फिर उन्होने कहा—"मै तीव्र ज्वर से पीडित था। बातचीत का अवसर जान मैने अपने ज्वर को इस वस्त्र मे त्याग कर अलग रख दिया। यह वस्त्र ज्वर के प्रभाव से कम्पित हो रहा है। यह उत्तर सुनकर योगिराज के प्रति उसके हृदय मे विशेष श्रद्धा भक्ति उत्पन्न हुई। वह विनयवन्त हो वन्दन नमस्कार कर फिर दर्शनार्थ आने के लिये कह कर चला गया।[1]

---

१ श्री कापडियाजी ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि श्रीमान हेमचन्द्राचार्य, श्री हरिभद्र सूरि और श्री हीरविजय सूरि के विषय मे भी उक्त प्रवाद सुनने मे आया है। (प्रथम सस्करण की भूमिका पृ ३९)

मृतपति के साथ सती होने वाली स्त्री को बोध

एक समय विहार करते हुये श्री आनंदघनजी मेडते आ रहे थे। उन्होंने मेडते के बाहर श्मसान के निकट एक स्त्री को 'सती' होने के लिये उद्यत देखा। जैसे ही उस स्त्री की दृष्टि उन पर पडी वह उनके निकट आकार चरणो मे झुककर कहने लगी--"बावाजी महाराज ! मै अपने पति के साथ सती हो रही हूँ, मुझे आशीर्वाद दीजिये।" इतने मे ही उस स्त्री के सम्बन्धियो ने आकर कहा--"महाराज ! इसे समझ इये हमने तो इसे बहुत ही समझाया किन्तु यह मानती ही नही है। सती होने के लिये हठ कर रही है।" इस पर श्री आनद-घनजी ने इस स्त्री को समझाने के लिये कई तरह से उपदेश दिये। ससार का स्वरूप और सम्बन्ध समझाया शरीर और आत्मा का सम्बन्ध बताया। श्री ऋषभदेव जिनेश्वर का स्तवन बडे ही सरस स्वर से गाकर सुनाया। स्त्री के और सुनने वालो के अन्तर चक्षु खुल गये। स्त्री शान्त और प्रसन्न चित्त से लौट गई। ऐसे थे मार्मिक उपदेशक श्री आनदघनजी।

राजा-राणी दो मिले उसमे आनदघन को क्या ?

इस घटना के लिये भिन्न भिन्न लेखको ने भिन्न-भिन्न स्थानो का उल्लेख किया है। किसी ने मेडते शहर का, किसी ने आबू पर्वत का और किसी ने जोधपुर के निकट की पहाडी गुफाओ का।

कहा जाता है कि एक समय श्री आनदघनजी आत्मस्थ बैठे हुये थे। एक स्त्री उनके पास आकर प्रणाम कर कहने लगी—'महाराज मै जोधपुर की महाराणी हूँ। महाराज जोधपुर मुझ से रुष्ठ होकर मेरे महलो मे नही पधारते हैं। कोई ऐसा मन्त्र-यन्त्र बताइये, आशीर्वाद दीजिये जिसमे महाराजा प्रसन्न होकर मेरे महलो मे आने लगे" श्री आनदघनजी ने कोई उत्तर नही दिया। वैसे के वैसे बैठे रहे। कुछ देर पश्चात् एक कागज का टुकडा उठाकर उसमे कुछ लिखकर और मोडकर राणी को दे दिया। राणी ने समझा कि महात्मा ने प्रसन्न होकर मुझे तावीज दिया है। राणी ने कागज को आदर से ग्रहण किया। प्रणाम कर वहा से चली गई। महलो मे आकर उसने एक सोने के यन्त्र मे रखकर गले मे पहिन लिया। सयोग की बात कि इसके पश्चात् राजा प्रसन्न होकर, राणी के महलो मे आने लगे। इससे राजा

की अन्य राणिया ईर्षा रखने लगी और राजा के कान भरने लगी। एक दिन राजा ने भी इस स्थिति पर विचार किया और राणी के महलो मे जाकर राणी के गले से तावीज निकाला और खोलकर पढा, पढने ही राजा को स्थिति स्पष्ट हो गई। वह खिल खिलाकर हसने लगा। तावीज मे लिखा था—"राजा राणी दोउ मिले, उसमे ग्रानदघन को क्या।" इन शब्दो को देखकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। साथ ही श्री ग्रानदघनजी की निसगता या आत्ममग्नता पर श्रद्धा हुई।

स्वर्ण सिद्धी रसायण

एक समय श्री ग्रानदघनजी आबू के पहाड पर योग साधना मे तल्लीन होकर विचरण कर रहे थे। एक दिन अकस्मात् एक व्यक्ति हाथ मे शीशी लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। वह उस शीशी को उनके चरणो मे रख कर कहने लगा—"आपके साथ साधना करने वाले आपके बाल मित्र इब्राहिम साहब ने यह रसायणिक सिद्धि भरी शीशी भेजी है। इस शीशी के रसायण की एक बूद मात्र, यदि पत्थर पर डाली जावे तो पत्थर सोना बन जाता है। इससे सम्पूर्ण ससार आपके वश मे हो जावेगा। यह कह कर उस आगत व्यक्ति ने शीशी से एक बूद पत्थर पर डाली जिसके प्रभाव से वह पत्थर स्वर्ण हो गया। स्वर्ण और पाषाण मे एक वृत्ति रखने वाले श्री ग्रानदघनजी के हृदय मे एक बडा विचार आया। उन्होने शीशी को पाषाण शिला पर पटक कर तोड डाला। यह देखकर उस शीशी वाहक व्यक्ति के क्रोध का ठिकाना नही रहा। उसने श्री ग्रानदघनजी को अनुचित कठोर शब्द कहे। वे शान्त मुद्रा से खडे रहे फिर एक ओर होकर उन्होने लघु शका की। जिस शिला पट्ट पर उन्होने लघुशका की थी वह स्वर्ण बन चुकी थी। यह देखकर वह व्यक्ति चकित रह गया। लज्जित होता हुआ श्री ग्रानदघनजी के चरणो मे गिर कर बार-बार क्षमा मांगने लगा। जाता जाता कह गया—"जिसके पेशाब मे स्वर्ण रसायण है उसे और रसायण की क्या आवश्यकता है। आप धन्य है।"

राजा को पुत्र प्राप्ति

कहा जाता है कि जोधपुर के राजा को लबे समय तक कोई पुत्र

उत्पन्न नही हुआ । इसलिये उसे उत्तराधिकारी के विषय मे चिन्ता रहने लगी। उनके प्रधान मन्त्री ने उन्हे चिन्तित देखकर, कहा--पुत्र होना, पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्म पर निर्भर है। फिर भी एक जैन साधु महायोगी और चमत्कारी हैं। उनका नाम आनन्दघनजी है। वे आज कल यही आस-पास हैं। महाराज, प्रधान मत्री के कथन पर विश्वास कर शुद्ध अन्त करण से श्री आनन्दघन जी की श्रद्धापूर्वक सेवा-भक्ति करने लगे। नित्य दर्शनार्थ आना, उपदेश सुनना और उस पर आचरण करने लगे। सयोग की बात कुछ ही दिनो मे महाराज को विश्वास हो गया कि अब पुत्र रत्न की प्राप्ति मे देर नही हैं। यथा समय उन्होने पुत्र का मुख देख लिया। ऐसे थे श्रीआनन्दघनजी जिनकी सेवा-भक्ति मे मनोकामनायें पूर्ण होती थी।

राज की दो विधवा पुत्रियो को बोध

एक राजा की दो पुत्रिया थी। सयोग से वे दोनो ही विधवा हो गई। वे वैधव्य से दुखी पुत्रिया हर समय रुदन करती रहती थी। राजा को इससे बहुत ही कष्ट होता था। उसने कई प्रकार के उपाय किये किन्तु उन पुत्रियो का शोक हल्का नही हुआ। राजा ने किसी विश्वस्त कर्मचारी से सुना कि श्री आनन्दघनजी सिद्ध पुरुष है। वे इनके शोक दूर करने मे समर्थ हैं। राजा ने उनसे प्रार्थना की और उन दोनो पुत्रियो को उनके पास ले गया श्री आनन्दघन जी ने उन्हे ससार की क्षण भगुरता मार्मिक शब्दो मे समझाई। आत्मा का असली स्वरूप बताया। ससार के आपसी सम्बन्धो के विषय मे अनेक उपदेश दिये। उनका शोक दूर हुआ और रुदन बद हो गया। अब तो वे नित्य ही उपदेश सुनने के लिये आने लगी। कुछ ही दिनो मे उनकी चित वृत्तिया शात हो गई और वे उन उपदेशो के अनुसार अपना जीवन सुधारने मे लग गईं।

शाहजादे का स्तभन

एक समय श्रीआनन्दघनजी बीकानेर मे थे। उन्ही दिनो दिल्ली के बादशाह का शाहजादा वहा आया हुआ था। बीकानर मे उस समय अन्य जैन साधु भी थे। जब वे कही जाते आते तो मार्ग मे जब शाहजादा उन्हे मिल जाता तो वह उनकी हसी-मजाक किया करता था। इस से वे साधु लोग बहुत

ही खिन्न मना हो गये थे । एक दिन उन सबने मिलकर श्री आनन्दघन जी को प्रार्थना की कि इस विपत्ति से छुटकारा दिलाइये । तब श्रीआनन्दघनजी बीकानेर के बाहर जहा वह शाहजादा घोड़े पर बैठकर कर घूमने जाता था गये। शाहजादे ने जैसे ही उन्हे देखा वैसे ही अपनी आदत के अनुसार उनकी भी मजाक उडाई । इस पर श्रीआनन्दघनजी ने उस से कहा—"बादशाह का बेटा खडा रहे ।" इतना कहते ही शाहजादे का घोडा खडा रह गया । अनेक प्रयत्न करने पर भी वह चल नही सका । (टस से मस नही हुआ) इतने मे ही शाहजादे के साथ के घुडसवार वहा आ पहुँचे । घोडा स्तभित खडा था । उन्होने भी घोडे को चलाने के प्रयत्न किये, किन्तु असफल ही रहे । शाहजादा भी घोडे से उतर नही सका । इधर आनन्दघनजी अपने स्थान पर आ गये । शाहजादे के उन साथियो ने शहजादे साहब से पूछा कि यह कैसे हो गया । आप कोई बात हुई हो तो फरमाइये । शाहजादे ने उत्तर दिया—"मुझे तो घोडे के न चलने का कोई सबब नजर नही आता, लेकिन एक बात अवश्य हुई है । मैंने एक श्वेत वस्त्र धारी साधु की मजाक जरूर उडाई थी ।" उसने कहा था—"बादशाह का बेटा खडा रहे ।" शाहजादे के उन साथियो की समझ मे आया कि हो न हो, उस साधु ने ही कुछ कर दिया है । शाहजादे के साथियो के कहने से बीकानेर के राजा ने साधुओ से पुछवाया । अन्त मे पता लगा कि यह काम श्री आनन्दघन जी का लगता है । आप लोग उनके पास जाइये । तब वे खोजते हुए श्री आनन्दघनजी के पास आये । उन लोगो ने उनकी बहुत ही आजीजी की तब तब श्री आनन्दघन जी ने कहा—"बादशाह का बेटा, साधु सतो को सताता है और उन की हसी मजाक करता है उसका फल उसे मिले तो आश्चर्य ही क्या ?" अन्त मे श्री आनन्दघनजी ने बादशाह के बेटे से कहलवाया—"बादशाह का बेटा चलेगा ।" शाहजादे ने जैसे ही यह शब्द लोगो के मुख से सुने वैसे ही उनका घोडा चलने लगा शाहजादे ने यह चमत्कार देखकर, तत्काल वह उनके दर्शनार्थ वहा आया । विनय भक्ति प्रदर्शित कर उसने कहा—"आप तो ओलिया हैं, मेरा कसूर मुआफ फरमावे ।"

पत्थर के सेर का स्वर्ण खड

एक समय मारवाड मे विहार करते हुये किसी ग्राम मे किसी दीन व्यक्ति के घरश्रीआनदघनजी कुछ दिन ठहरे। एक दिन वह दीन व्यक्ति चिन्तातुर होता हुआ उनकी सेवा मे वदन कर आ वैठा। वह दुखी तो था ही, उसकी आखें डवडवा आई। श्री योगीराज ने उसे रोने का कारण पूछा। उसने रोते हुये अपनी गरीवी की सम्पूर्ण कथा उनको सुना दी। उन्होने उसे सात्वना देते हुये समझाया कि अपने कृतकर्म तो भोगने ही पडते है। खैर, तुम्हारे पास कोई पत्थर का लोढा हो तो लाओ। उस व्यक्ति ने एक सेर वाला पत्थर लाकर उनके सम्मुख रख दिया। दूसरे दिन प्रात काल वह वहा आया। श्रीआनदघनजी उसे वहा दिखाई नही दिये। उसने उन्हे इधर-उधर देखा, फिर भी वे दृष्टिगत नही हुये। जहा वे पहिले दिन वैठे हुये थे, वहा उसे पत्थर के सेर के स्थान पर सोने का डला देखा। उसे वहुत ही आश्चर्य हुआ। जव उसने उस स्वर्ण के डले (खड) को उठाकर देखा तो उसे वहुत ही पश्चात्ताप हुआ क्योकि वह स्वर्ण खड तो वही पत्थर का सेर था, जो उसने उनके (योगीराज के) सामने लाकर रखा था। वह विचारने लगा, यदि मै इससे वडा पत्थर लाकर रखता तो कितना अच्छा होता। अव तो रमते राम योगीराज कही के कही पहुँच चुके थे।

अक्षय लब्धि

१७वी और १८वी शती मे राजस्थान मे मेडता नगर व्यापार का वडा केन्द्र था। वहा कई लक्षाधीश सेठ थे। एक समय श्रीआनदघनजी का वहा पदार्पण हुआ। वहा की जनता ने उनके उपदेशो का वहुत लाभ उठाया। एक विधवा सेठानी—जिसके पति का कुछ समय पूर्व देहान्त हो गया था—श्री आनदघनजी की परम भक्त थी। उनके प्रति उसका धर्मानुराग अनुकरणीय था। उसके पुत्र थे। घर मे करोडो की सम्पत्ति थी। उन्ही दिनो जोधपुर नरेश को किसी कारणवश द्रव्य की अत्यन्त आवश्यकता हुई। धन एकत्रित करने के लिये जोधपुर नरेश के उच्चाधिकारी और सिपाही मेडता नगर आये। उन लोगो ने धनपतियो से द्रव्य की माग की और उनकी कोठियो पर

मिपाहियो को वैठा दिया। उस विधवा की कोठी पर भी सिपाही आ वैठे। यह देखकर उस विधवा स्त्री का हृदय वैठने लगा। जव वह श्री आनन्दघनजी के दर्शन करने आई तव उसने श्रीआनदघनजी को अपनी विपत्ति की सम्पूर्ण गाथा कह सुनाई और उसकी निवृत्ति का उपाय पूछा। उन्होने कुछ देर मौन रहकर उस स्त्री से कहा—"तुम्हारे घर मे जितने प्रकार के सिक्के हो उनको अलग-अलग घडो मे रखकर यहा ले आवो। वह स्त्री घर आई। उसने स्वर्ण का सिक्का एक अलग घडे मे रक्खा और रजत का सिक्का अलग घडे मे रखा। उन दोनो घडो के मुह कपडे से ढक कर और उन्हे वाधकर श्रीआनदघनजी के पास ले आई। श्रीआनदघनजी ने कुछ वोलकर अपना हाथ उन घडो के ऊपर फिराया और कहा—"इनको ले जावो, इनमे से सिक्के निकाल-निकाल कर देती जावो।" घर आकर उसने आदेशानुसार आचरण किया। सिपाही लोग जितने गाडे लाये थे वे सव एक ही स्थान से भर गये। वे पुष्कल धन पाकर वहा से विदा हो गये। उनके जाने के पश्चात् उस स्त्री ने घडो मे हाथ डालकर देखा तो घडो मे एक-एक ही सिक्का था। अव तो उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना नही रहा। यह चमत्कार देखकर श्रीआनदघनजी के प्रति उसका पूर्व की अपेक्षा हजार गुना श्रद्धा-भक्ति भाव वढ गया। इस चमत्कार की वात सम्पूर्ण नगर मे फैल गई। लोगो के झुण्ड के झुण्ड उनके दर्शनार्थ आने लगे और दर्शनकर अपने आपको धन्य समझने लगे। ऐसे थे धर्म प्रभावना करने वाले आनदघनजी।

इन प्रवादो के विषय मे कुछ कहा नही जा सकता है किन्तु धर्म प्रभावना के लिये योगीराज श्रीआनन्दघनजी ने कुछ चमत्कार दिखाये हो या हो हो गये हो तो इन्हे प्रमाणाभाव मे अविश्वसनीय नही कहा जा सकता। इन से पूर्व के जैनाचार्यो ने भी समयोचित चमत्कार पूर्ण कार्य धर्म प्रभावना के लिये किये थे।[1] जय आनन्दघन

महताब चन्द खारैड

---

१ ये चमत्कारपूर्ण घटनाएँ श्रीकापडियाजी, श्री वुद्धिसागरजी, श्रीवसतलालजी, श्रीकातिलालजी और श्रीईश्वरलालजी की पुस्तको से ली गई हैं। मैं उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ।

पद-क्रम दर्शक

विवरण-पत्र

विवरण-पत्र भिन्न भिन्न

क्रम संख्या 1	पदो का अकारादि क्रम 2		क्रम संख्या प्रस्तुत ग्रंथावली 3	क्र म श्रीभीम सिंह माणेक श्री कापड़िया श्री आ बुद्धि सागर 4	क्रम संख्या क्र प्रति 5
1	अरण जोवता लाख	साखी	71	90	71
2	अनन्त अरूपी अविगत सासतो		13	71	12
3	अनुभो (अनुभव) तू है हितु हमारो		40	14	46
4	अनुभो (अनुभव) नाथ को क्यू न जगावे		28	8	32
5	अनुभो (अनुभव) प्रीतम कैसे मानसी		29	50	33
6	अनुभो (अनुभव) हम तो रावरी दासी		43	13	50
7	अपना रूप जब देखा		7	66	2
8	अब चलो सग हमारे काया		119	—	—
9	अब मेरे पति गति देव निरजन		8	60	3
10	अब हम अमर भये न मरेंगे		100	42	—
11	अरी मेरो नाहेरो अति वारो		92	96	—
12	अवधू अनुभव कलिका जागी		60	23	70
13	अवधू ऐसो ज्ञान विचारी		101	49	—
14	अवधू क्या मागू गुणहीना		10	26	5

प्रतियों में पदों का क्रम

क्रम सख्या ग्रा प्रति	क्रम सख्या इ प्रति	क्रम सख्या उ प्रति	श्री जिनदत्त पुस्तकालय जयपुर की प्रति की क्रम सख्या	श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर के प्रतियो की क स			
				मुख्य प्र 44 पद स 1756	प, 45 पद	बी 34 पद स 1762	सी 38 प स 1798
6	7	8	9	10	11	12	13
62	54	59	52	—	23	—	—
12	72	30	70	—	30	31	—
45	29	50	27	21	—	25	—
34	26	—	—	20	—	24	—
74	5	5	5	—	27	—	29
36	28	51	28	22	—	26	—
53	45	77	—	—	16	—	22
—	—	—	—	—	—	—	—
75	6	6	6	—	28	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
21	23	46	23	1	—	18	36
—	—	—	—	—	—	—	—
29	21	14	21	10	45	16	37

1	2		3	4	5
15	अवधू क्या सोवै तन मठ मे		57	7	43
16.	अवधू नटनागर की वाजी		59	5	88
17	अवधू नाम हमारा राखे		11	29	6
18.	अवधू राम नाम जग गावे		97	27	81
19	अवधू वैराग्य वेटा जायो		102	105	—
20	अवधू सो जोगी गुरु मेरा		103	98	—
21	आ कुवुद्धि कूवरी कवन जात		70	74	54
22	आज सुहागन नारी अवधू		86	20	—
23	आतम अनुभव प्रेम को,	साखी	74	6	74
24.	आतम अनुभव फूल की	साखी	28	8	32
25	आतम अनुभव रस कथा, प्याला अजव विचार,	साखी	53	—	67
26	आतम अनुभव रस कथा, प्याला पिया न जाय,	साखी	35	70	39
27	आतम अनुभव रीति वरी री		53	11	67
28.	आशा औरन की कहा कीजै		58	28	82
29	ए जिनके पाय लाग रे		87	102	—
30	ऐसी कैसी घर बसी		45	79	57
31	कत चतुर दिल ज्यानी		69	—	48
32	करेजा रेजा रेजा रेजा		25	35	26
33	कित जाण मते हो प्राणनाथ		80	31	56
34	कुए आगल कहूँ खाटो मीठो		112	—	—
35	कुवुद्धि कूवरी कुटिल गति	साखी	56	12	85

6	7	8	9	10	11	12	13
26	18	11	18	14	—	13	16
30	22	15	22	40	—	17	35
32	24	47	26	2	—	19	—
28	20	13	20	9	—	15	—
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	34	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
5	7	16	—	12 के साखी	—	—	—
34	26	29	26	12, 20	—	24	—
—	—	19	—	12 के साखी	—	—	—
38	30	53	30	12,29 „	1	—	24
19	11	19	11	7	—	—	9
27	19	12	19	13	—	14	1
—	—	—	—	—	—	—	—
66	58	63	56	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
50	42	45	41	—	13	—	26
—	—	—	—	39	43	—	17
18	—	—	—	—	—	—	—
8	10	18	10	44	—	8	8

1	2	3	4	5
36	क्या रे मुनै मिलसे म्हारो सत सनेही	5	25	23
37	क्या सोवे उठ जाग वाउरे	1	1	76
38	चेतन आपा कैसे लहोई	—	55	—
39	चेतन ऐसा ज्ञान विचारो	106	81	—
40	चेतन चतुर चौगान लरी री	52	46	65
41	चेतन शुद्धातम को ध्यावो	105	80	—
42	चेतन सकल वियापक होई	82	89	86
43	छवीले लालन नरम कहे	35	70	39
44	छोरा नै क्यू मारै छैरे डैण	67	17	60
45	जग आसा जजीर की	साखी 57	7	83
46	जगत गुरु मेरा मै जगत का चेरा	6	78	1
47	जिन चरणे चित ल्याऊँ रे मना	81	95	80
48	जिय जाने मेरी सफल घरी	3	3	77
49	ठगोरी भगोरी लगोरी जगोरी	17	45	18
50	तज मन हरि विमुखन को सग	109	108	—
51	तरस कीजइ दइ को दई की सवारी री	76	39	53
52	ता जोगे चित ल्याओ रे व्हाला	104	37	—
53	तुम ज्ञान विभो फूली वसत	108	107	—
54	तेरी हूँ तेरी हूँ ऐती कहूँ री	14	44	15
55	दग्यो जु महा मोह दावानल	111	—	—
56	दरसण प्राण जीवन मोहि दीजै	24	92	25

6	7	8	9	10	11	12	13
7	9	17	9	6	—	7	7
1	1	1	1	41	40	1	2
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
20	12	20	12	—	—	9	10
—	—	—	—	—	24	—	—
71	63	68	61	24	82	—	—
38	30	53	30	29	1	—	24
—	—	—	—	—	—	—	—
26	18	11	18	14	—	13	16
70	62	67	60	—	23	12	—
—	—	—	—	—	—	—	—
3	3	3	3	43	41	3	3
23	15	23	15	—	—	11	13
—	—	—	—	—	—	—	—
67	59	64	57	—	—	—	20
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
24	16	24	16	—	—	—	14
17	—	—	—	—	—	—	—
54	46	32	44	—	17	—	—

1	2	3	4	5
57	दुलहन री तू वडी वावरी	85	19	—
58	देखो आली नटनागर के सांग	21	34	22
59	देख्यो एक अपूरब खेला	55	57	69
60	नाथ निहारो आप मता सी	46	9	58
61	निरजन यार मोय कैसे मिलेगे	119	—	—
62	निराधार केम मूकी, श्याम	88	94	—
63	निसाणी कहा वताऊ रे	61	21	89
64	निसि दिन जोऊँ वाटडी	31	16	35
65	निस्पृह देश सुहामणो	75	83	66
66	परम नरम मति और न भावै	15	10	16
67	पिय विन कौन मिटावे रे	27	65	31
68	पिय माहरो जोसी हूँ पिय री जोसण	110	—	—
69	पिया तुम निठुर भये क्यो ऐसे	44	32	51
70	पिया विन निसि दिन झूरू खरी री	16	47	17
71	पिया विन सुध-बुध भूलो हो	26	41	30
72	पिय विन सुध-बुधमू दी हो	32	62	36
73	पूछीइ आली खवर नई	37	88	43
74	प्यारे अव जागो परम गुरु	83	64	52
75	प्यारे आइ मिलो कहा ऐते (एँठे) जात	78	58	42
76	प्यारे प्रान जीवन यह साच जान	79	76	55
77	प्यारे लालन विन मेरो कोण हवाल	68	75	41

6	6	8	9	10	11	12	13
—	—	—	—	—	—	—	—
48	40	43	39	—	11	—	—
51	43	74	42	—	14	—	—
37	29	52	29	—	—	27	—
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	28	—
46	38	41	77	24	9	—	—
58	50	40	48	19	19	—	27
11	71	29	69	—	38	30	—
22	14	22	14	—	—	—	12
43	35	35	35	25	6	—	—
16	—	—	—	—	—	—	—
55	47	33	45	—	18	—	—
21	13	21	13	—	—	10	11
61	53	76	51	—	22	—	—
60	52	57	50	—	21	—	—
41	33	56	33	33	4	—	32
—	—	—	—	28	—	—	—
—	—	—	—	31	—	—	—
—	—	—	—	35	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—

1	2	3	4	5
78	प्रभु तो सम अवर न कोइ खलक मे	89	82	—
79	प्रभु भजले मेरा दिल राजी रे	94	103	—
80	प्राणी मेरो खेले चतुर गति चौपर	56	12	85
81	प्रीति की रीति नई हो प्रीतम	48	69	61
82	बालूडी अवला जोर किसो करे	41	56	50
83	बेहेर बेहेर नहि आवे अवसर	84	100	—
84	भमरा किन गुण भयो रे उदासी	99	106	28
85	भादु की रात काती सी वहइ	34	51	38
86	भोरे लोगा भूल हूँ तुम भल हासा	19	73	20
87	मगरा ऊपर कउआ बैठा	120	—	—
88	मनसा नटनागर सु जोरी हो	49	38	62
89	मनु प्यारा मनु प्यारा रिखभदेव मनु प्यारा	93	101	—
90	मायडी मूनैं निरपख किण ही न मूकी	66	48	—
91	माहरो वालूडो सन्यासी	74	6	74
92	माहरो मौने कब मिलसी मन मेलू	12	24	8
93	मिलण रो वानक आज वन्यो छै जी	113	—	—
94	मिलापी आन मिलाओ रे	30	33	34
95	मीठो लागै कतडो नैं खाटो लागै लोक	50	40	63
96	मुनैं माहरा माधवियां नै मिलवानो कोड	23	93	24
97	मुदल थोडो रे भाई व्याजडो घणेरो	64	54	84
98	मेरी तु मेरी तु काहे डरे री	42	43	49

6	7	8	9	10	11	12	13
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
8	10	18	10	44	—	8	8
49	41	4	40	—	12	—	25
13	73	7	71	—	31	32	—
—	—	—	—	—	—	—	—
—	7	81	75	—	—	—	—
42	34	73	34	36	5	—	33
57	49	39	47	27	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
59	51	31	49	—	20	—	21
—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	82	76	—	—	29	—
5	7	16	7	4	—	5	5
6	8	—	8	5	—	6	6
80	—		—	—	—	—	—
45	37	37	37	38	8	—	—
69	61	66	59	—	—	—	—
65	57	62	55	18	—	—	—
79	68	10	66	—	35	23	—
25	17	25	17	—		—	15

1	2		3	4	5
99	मेरी सु मेरी सु मेरी सु मेरी सौ मेरी री		51	61	64
100	मेरे ए प्रभु चाहिये		117	108बु	—
101	मेरे घट ज्ञान भानु भयो भोर		73	15	73
102	मेरे प्राण ग्रानन्दघन तान ग्रानन्दघन		72	52	7
103	मेरे माभी मजीठी सुण इक वाता		20	72	21
104	मोको कोऊ कैसई हू तको		9	59	4
105	मौने कोई मिलावो रे कचन वरणो नाह		22	49	23
106	या पुद्गल का क्या विसवासा		107	97	—
107	राम कहो रहिमान कहो		65	67	79
108	राश शशी तारा कला	साखी	27	65	31
109	रिसानी ग्राप मनाग्रो रे		36	18	40
110	रे घरियाली वाउरे मत घरिय वजावै		2	2	72
111	रे परदेशी भ्रमरा		116	—	29
112	लागी लगन हमारी जिनराज		91	84	—
113	वारी हूँ वोलडे मीठडे		18	85	19
114	वारु रे नान्ही वहु ग्रै मन गमतु कीधू		71	90	71
115	वारे नाह सग मेरो		90	36	—
116	वारो रे कोई पर घर रमवानो ढाल		47	91	59
117	विचारी कहा विचारे रे		62	22	87
118	विवेकी वीरा सह्यो न परे		39	87	45
119	व्रजनाथ से सुनाथ विण		95	63	11

6	7	8	9	10	11	12	13
68	60	65	58	—	—	—	19
—	—	—	—	—	—	—	38
72	64	69	62	—	25	—	28
—	—	71	—	—	44	—	23
56	48	38	46	26	—	—	—
15	75	34	73	—	33	34	—
64	56	60	54	17	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
78	69	9	67	—	—	22	—
43	35	35	35	25	6	—	—
44	36	36	36	23	7	—	—
2	2	2	2	42	39	2	—
—	76	80	74	—	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
14	74	26	72	11	32	33	18
62	54	73	52	15	—	—	—
—	—	—	—	—	—	—	—
63	55	61	53	16	—	—	—
47	39	42	38	—	10	—	—
40	32	54	32	32	3	—	31
9	—	28	—	—	36	—	—

1	2	3	4	5
120	सरसती सामी करो रे पसाय	115	—	—
121	सलूने साहिब आवेंगे मेरे	38	86	44
122	सइँ मै किसके किसके बोला	—	—	27
123	साइडा दिल लगा है वशीवारे सू	98	53	9
124	साधु सगति बिनु कैसे पइये	63	68	75
125	साधो भाई समता रग रमीजै	4	30	78
126	सुरा चरखा वाली	114	—	—
127	सुहागनि जागी अनुभव प्रीत	54	4	68
128	हठीली आख्या टेक न मेटे	33	104	37
129	हमारी लौ लागी प्रभु नाम	77	77	14
130	हरि पतितन के उद्धारन	96	—	10
131	हूँ तो प्रणमू सद्गुरु राया रे	121	—	—

नोट—(1) ग्र थावली मे सम्पूर्ण पद 121 ही हैं, किन्तु यहाँ 131 सख्या होने का कारण यह है कि इसमे 8 साखियाँ और 2 परिवर्तित पद भी सम्मिलित हैं।

(6) क्रम सख्या 38 और 42 के पद थोडे से अन्तर से एक ही पद हैं।

(7) क्रम सख्या 44 का पद "ज्ञान सारजी" कृत टव्वे मे भी प्राप्त है।

(8) क्रम सख्या 61 का पद केवल आचार्य श्री बुद्धिसागर जी के "आनन्दघन पद सग्रह" की भूमिका पृष्ठ 173 पर ही है।

(9) क्रम सख्या 119 का पद "हरि पतितन के उद्धार" के साथ हैं।

(10) क्रम सख्या 122 का पद इस ग्रन्थावली के "देखो एक अपूरव खेला" पद का उत्तरार्द्ध है।

(11) क्रम सख्या 130 का पद "व्रजनाथ से सुनाथ विण" पद के साथ है।

(12) क्रम सख्या 131 का पद श्री साराभाई मणिलाल नवाब द्वारा सम्पादित "श्री आनन्दघन पद्य रत्नावली" से साभार लिया गया है।

सकेताक्षर —क, का = मोतीलाल गिरधर कापडिया, वि = विश्वनाथ, व, बु = आचार्य श्री बुद्धिसागर जी, द्य = द्यानतराय, भ = भगल जी उद्धव जी, मा = माणेकलाल घेलाभाई।

—x—

* कहाँ क्या *

※ आनन्दघन बहुत्तरी ※

चेतावनी　　　　　　　　१　　　　　　　　राग-वेलावल

क्या सोवैं उठि जाग बाउरे।
अंजलि जल ज्यूं आउ घटतु है, देत पहुरिया घरी घाउरे।
॥ क्या० ॥ १ ॥

इन्द्र चन्द्र नागिंद मुनिंद चले, कौन राजा पतिसाह राउरे।
भ्रमत भ्रमत भव जलधि पाई तै, भगवंत भगति सुभाव नाउरे॥
॥ क्या० ॥ २ ॥

कहा विलंब करें अब बोरे, तरि भव-जल-निधि पार पाउरे।
'आनन्दघन' चेतनमय मूरति, सुद्ध निरंजन देव ध्याउरे॥
॥ क्या० ॥ ३ ॥

पाठान्तर—जाग = (अ) जागि। (उ) बाउरे = बावरे। अंजलि = (इ) अंजरि। आउ, पहुरिया, घरी, घाउरे = (इ, उ)। आयु। पोहरिया। घरिय। घाव। कौन (इ) कुण। पाई तै = (उ) पायकैं। तरि = (इ) तर। ध्याउरे = (अ, इ) गाउरे। इन्द्र चन्द्र नागिन्द मुनिन्द चले = (क वि) इन्द, चन्द, नागिन्द, मुनि चले। (वं) इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र मुनीन्द्र चलें। भगवत भगति सुभाव नाउरे = भगवत भजन विन भाउ नाउरे। बोरे = (क, व, वि) बाउरे।

शब्दार्थ—बाउरे = भोले, पागल। अजलि = चुल्लू, हाथ से बना हुआ सुम्पुट। आउ = आयु, उम्र। पहुरिया = पहरायती, घडियाल बजाने वाला। घरी = घरियाल, घडावल, पीतल या काँसे की एक गोल वस्तु विशेष जिस पर डण्डे से चोट मार कर समय सूचित किया जाता है। घाउ = चोट। नागिन्द्र = नागेन्द्र, नाग नामक देवो का इन्द्र, धरणेन्द्र। मुनिन्द = मुनियों के इन्द्र, तीर्थंकर। कौन = किस गणना मे है। पतिसाह = बादशाह। राउ = राजा, राणा। भ्रमत भ्रमत = भ्रमण करते हुये, डोलते डोलते। भव जलधि = ससार समुद्र। पाई तै = तूने पाकर। सुभाउ = स्वभाव। नाउ = नाव, नौका। विलब = देर। तरि = तैर कर। भव-जलनिधि = ससार समुद्र। पार पाउरे = दूसरा किनारा प्राप्त कर। निरजन = मल रहित, शुद्ध, निर्दोष, परमात्मा।

उक्त पद के अर्थ से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि जीव का ह्रास विकास क्रम क्या है? जैन दर्शन के अनुसार अनादि काल से यह जीव ससार-समुद्र मे बस रहा है। सर्वप्रथम यह अव्यवहार राशि मे होता है, वहाँ कोई पुरुषार्थ नही करता। जिस प्रकार नदी के जल प्रवाह मे कुछ पत्थर काल प्रभाव से गोल हो जाते है, वैसे ही काललब्धि प्राप्त कर यह जीव व्यवहार राशि में आता है और विकास करते करते मानव जीवन प्राप्त करता है। किन्तु यह जीव इस दुर्लभ मानव जीवन को अनती बार प्राप्त कर खो चुका है। अब पुन. मानव जन्म मिला, तो फिर यह ऐसे ही व्यर्थ न चला जाये, अत. श्री योगीराज आनन्दघन जी सचेत कर रहे है:—

अरे भोले मानव! मोह निन्द्रा मे क्या पडा है? उठ, सचेत हो, प्रमाद त्याग कर जागृत हो, तेरी आयुष्य अंजलि के पानी के समान घटती जा रही है। पहरेदार घडियाल पर टकार मार-मार कर तुझे सचेत कर रहा है। इस प्रकार घडियाल पर चोट करते

करते उस स्थान पर घाव-सा दिखाई पडने लग गया है परन्तु तेरे हृदय पर जरा भी इसका असर नही हुआ है। तू सचेत (सावधान) नही होता है ॥१॥

देवताओ का राजा इन्द्र, चन्द्रलोक का स्वामी चन्द्र, नागलोक का स्वामी धरणेन्द्र और मुनियो के स्वामी तीर्थङ्कर भगवान भी जब इस देह को त्याग कर चले गये तब राजा, वादशाह और चक्रवर्ती की वात ही क्या है ? फिर तेरी तो विसात (सामर्थ्य) ही क्या है। ससार-समुद्र मे भटकते भटकते यह मानव शरीर मिलकर भगवान की भक्ति रूप स्वाभाविक नाव प्राप्त हुई है। भवसागर से पार पाने के लिये उस स्वभाव रूपी नाव का प्रयोग करके अपने लक्ष स्थान पर जा पहुच ॥२॥

नोट—"भगवत भजन विन भाउ नाउरे" पाठान्तर के अनुसार यह अर्थ होगा—भगवान के भजन के अतिरिक्त (सिवाय) अन्य कौनसी भाव-नौका तुझे प्राप्त होगी जिससे तू इस ससार समुद्र का उल्लघन कर सकेगा।

अरे वावले ! अव देर क्यो करता है। विषय-वासना, राग द्वेप रूपी समुद्र से तैर कर पार होजा। आनन्दघन जी कहते है—घनीभूत आनन्द के घर, चैतन्य स्वरूप, कर्म मल विहीन, राग-द्वेष रहित शुद्ध देव का ध्यान कर, उसी का गुणगान कर, जिससे तू भी वैसा ही हो जाय ॥३॥

विशेष—जीव (आत्मा) का चैतन्य स्वरूप व प्रभु (भगवान) का चैतन्य स्वरूप एकसा (समान) ही है। जीव जव प्रभु-भक्ति करता है—उसके गुणगान करता है तो उसे निज गुणो से गाढ परिचय होता है इसलिये प्रभु-भक्ति से बढ कर ससार समुद्र से पार पाने का अन्य कोई साधन नही है। ससार के सारे धर्म इसमे एकमत

है। इसमे कोई मतभेद नहीं है। इसलिये हे आत्मन्! तू भगवान का स्मरण कर, इसमे जरा भी देर न कर। उमर का कुछ भी भरोसा नही है। कोई भी अमर पट्टा लिखाकर नही आया है। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती ही नही रहे तो अन्य प्राणियो की क्या गिनती है, इसलिये तनिक भी विलम्ब किये विना भगवान का भजन-स्मरण कर। अर्थात् चैतन्य स्वरूप, कर्म-मल रहित, शुद्ध आत्म स्वरूप का ध्यान कर, जिससे तू अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हो सके।

ज्ञान घड़ी — **२** — **राग बिलाउल इकतारी**

रे घरिआरे बाउरे, मत घरीय बजावै।
नर सिर बाधै पाघरी, तू क्यो घरीय बतावै ॥ रे घरि० ॥ १ ॥
केवल काल कला कलै, पै तू अकल न पावै।
अकल कला घट मे घरी, मुझ सो घरी भावै ॥ रे घरि० ॥ २ ॥
आतम अनुभव रस भरी, यामे और न मावै।
'आनन्दघन' अविचल कला, विरला कोई पावै ॥ रे घरि० ॥ ३ ॥

पाठान्तर—घरीआरे = घरीयारे (इ, उ) । बाउरे = बावरे (उ) । मत = मति (आ) । बतावै = वजावै (इ) । कलै = करे (अ, इ) । पावै = कहावै (इ) । मुझ = मुहि (इ) । पावै = गावै (अ) ।

शब्दार्थ—घरीआरे = घडीवजानेवाला । पाघरी = पगडी, पाव घडी । काल कला कलै = समय जानने की युक्ति । पै = परन्तु । अकल = सब कलाओ से अलग (चेतन शक्ति) । भावै = पसन्द है । आतम = स्वरूपानुभव रूपी ज्ञानानन्द रस से भरी हुई । मावै = समाता है । अविचल=अचल, स्थिर ।

प्रथम पद मे प्रमाद त्याग कर जागृत होने की चेतावनी के

पश्चात इस पद मे घडी वजाने वाले को उद्देश कर श्री आनदघनजी ज्ञानघडी के उपयोग के सवध मे कहते है —

अर्थ—हे नादान ! पगले ! घडी वजाने वाले ! तू* घडी मत वजा, अर्थात् तू क्यो घडी वजा वजा कर समय सूचित करता है ? तेरा यह प्रयास व्यर्थ है। देख, मनुष्य ने तो स्वय ही अपने मस्तक पर पा घडो (पगडी) अर्थात पा (पाव) घडी वाध रखी है जिससे समय की उपयोगिता पर वह वरावर हर समय सचेत रह सके। मस्तक पर पा घडी (पगडी) वाधने का मतलव ही उसका यह है कि वह हर दम यह जानता है कि समय (काल) मेरे मस्तक पर है। फिर अव तू उसे वार वार समय क्या वता रहा है। (यहा श्री आनदघनजी ने पाघडी पर वहुत वडा व्यग किया है) ॥१॥

हे घडियाल वजाने वाले ! न तो केवल समय वताने की ही युक्ति जानना है। परन्तु तुझे जरा भी ऐसी वुद्धि नही है जिससे तू

---

*प्राचीन काल मे आजकल जैसी घडियां नही थी। उस समय, समय की जानकारी के लिये इस प्रकार के साधन थे —

(१) धूप घडी—जिसमे धूप की परछाई से समय जाना जाता था।

(२) जल घडी—पानी मे भरे वडे वरतन मे एक छोटी कटोरी मे वारीक छेद कर पानी मे रख दिया जाता था, कटोरी के पानी मे डूव जाने पर निर्धारित समय जान लिया जाता था।

(३) रेत (वालू) घडी—कांच के दो जुडे हुये लट्टुओ मे वालू भर दी जाती थी। इन दोनो लट्टुओ के मुँह छिद्र सहित जुडे होते थे। वालू वाले भाग को ऊपर करके रख दिया जाता था। वालू धीरे धीरे नीचे के लट्टू मे एक घडी अर्थात् चौवीस मिनिट मे आ जाती थी। दुवारा फिर इसी प्रकार यह क्रिया की जाती थी, जिससे समय जाना जाता था।

है। इसमें कोई मतभेद नहीं है। इसलिये हे आत्मन्! तू भगवान का स्मरण कर, इसमें जरा भी देर न कर। उमर का कुछ भी भरोसा नहीं है। कोई भी अमर पट्टा लिखाकर नहीं आया है। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती ही नहीं रहे तो अन्य प्राणियों की क्या गिनती है, इसलिये तनिक भी विलम्ब किये विना भगवान का भजन-स्मरण कर। अर्थात् चैतन्य स्वरूप, कर्म-मल रहित, शुद्ध आत्म स्वरूप का ध्यान कर, जिससे तू अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हो सके।

ज्ञान घड़ी　　　　२　　　　राग बिलाउल इकतारी

रे घरिआरे बाउरे, मत घरीय बजावै।
नर सिर बाधै पाघरी, तू क्यो घरीय बतावै ॥ रे घरि० ॥ १ ॥
केवल काल कला कलै, पै तू अकल न पावै।
अकल कला घट मे घरी, मुझ सो घरी भावै ॥ रे घरि० ॥ २ ॥
आतम अनुभव रस भरी, यामे और न मावै।
'आनन्दघन' अविचल कला, विरला कोई पावै ॥ रे घरि० ॥ ३ ॥

पाठान्तर—घरीआरे = घरीयारे (इ, उ)। बाउरे = बावरे (उ)। मत = मति (आ)। बतावै = बजावै (इ)। कलै = करे (अ, इ)। पावै = कहावै (इ)। मुझ = मुहि (इ)। पावै = गावै (अ)।

शब्दार्थ—घरीआरे = घडीबजानेवाला। पाघरी = पगडी, पाव घडी। काल कला कलै = समय जानने की युक्ति। पै = परन्तु। अकल = सब कलाओ से अलग (चेतन शक्ति)। भावै = पसन्द है। आतम = स्वरूपानुभव रूपी ज्ञानानन्द रस से भरी हुई। मावै = समाता है। अविचल=अचल, स्थिर।

प्रथम पद मे प्रमाद त्याग कर जागृत होने की चेतावनी के

पश्चात इस पद मे घडी बजाने वाले को उद्देश कर श्री आनदघनजी ज्ञानघडी के उपयोग के सबध मे कहते है —

अर्थ—हे नादान ! पगले ! घडी बजाने वाले ! तू* घडी मत बजा, अर्थात् तू क्यो घडी बजा बजा कर समय सूचित करता है ? तेरा यह प्रयास व्यर्थ है। देख, मनुष्य ने तो स्वय ही अपने मस्तक पर पा घडी (पगडी) अर्थात पा (पाव) घडी बाध रखी है जिससे समय की उपयोगिता पर वह बराबर हर समय सचेत रह सके। मस्तक पर पा घडी (पगडी) बाधने का मतलब ही उसका यह है कि वह हर दम यह जानता है कि समय (काल) मेरे मस्तक पर है। फिर अब तू उसे बार बार समय क्या बता रहा है। (यहा श्री आनदघनजी ने पाघडी पर बहुत बडा व्यग किया है) ॥१॥

हे घडियाल बजाने वाले ! न तो केवल समय बताने की ही युक्ति जानता है। परन्तु तुझे जरा भी ऐसी बुद्धि नही है जिससे तू

---

*प्राचीन काल मे आजकल जैसी घडियां नही थी। उस समय, समय की जानकारी के लिये इस प्रकार के साधन थे —

(१) धूप घडी—जिसमे धूप की परछाई से समय जाना जाता था।

(२) जल घडी—पानी मे भरे बडे बरतन मे एक छोटी कटोरी मे बारीक छेद कर पानी मे रख दिया जाता था, कटोरी के पानी मे डूब जाने पर निर्धारित समय जान लिया जाता था।

(३) रेत (बालू) घडी—कांच के दो जुडे हुये लट्टुओ मे बालू भर दी जाती थी। इन दोनो लट्टुओ के मुँह छिद्र सहित जुडे होते थे। बालू वाले भाग को ऊपर करके रख दिया जाता था। बालू धीरे धीरे नीचे के लट्टू मे एक घडी अर्थात् चौबीस मिनिट मे आ जाती थी। दुबारा फिर इसी प्रकार यह क्रिया की जाती थी, जिससे समय जाना जाता था।

उस-सब कलाओ से अलग, समय के सदुपयोग कराने वाली ज्ञानघडी को–जो हृदय मे ही है–बता सके। मुझे तो वही घडी (ज्ञान घडी) अच्छी लगती है अर्थात प्रिय है।।२।।

यह घडी आत्मानुभव रस से (निज स्वरूप को वताने वाले गुणो से) पूर्ण-लबालब भरी हुई है। इसमे और कोई वस्तु (विजातीय द्रव्य-रागद्वेषादि) नही आ सकती है—नही समा सकती है। यही घडी सचेतक है। श्री आनदघनजी कहते है कि इस अचल, अबाधित, आनददायिनी घडी की कला को विरला भाग्यवान मानव ही–लाखो मे से एक–प्राप्त कर सकता है।

वैराग्य **३** **राग-बिलावल**

जीउ जानै मेरी सफल घरी।

सुत बनिता घन यौवन मातो, गरभ तणी वेदन विसरी ।।जीउ०।।१।।

अति अचेत कछु चेतत नाही, पकरी टेक हारिल लकरी।

आइ अचानक काल तोपची, गहैगो ज्यू नाहर बकरी ।।जीउ०।।२।।

सुपन राज साँच करि राचत माचत छाह गगन बदरी।

'आनदघन' हीरो जन छारै, नर मोह्यो माया कँकरी ।।जीउ०।।३।।

पाठान्तर – जीउ = जीय (अ), जिय (इ) जीया (उ)। जानै = जाणै (उ)। यौवन = जोवन (अ इ, उ)। अति = अतहि (इ), अतिहि (उ)। अचेत = चेत (अ)। अति अचेत = अजहु अचेत (क)। आइ = आई (अ), आय (इ उ) अचानक = अचान (इ)। तोपची = तोवचाही (उ)। ज्यूं = यूं (इ, उ)। राज = राजि (अ)। जन = जव (अ)। छारै = छारी (इ, उ), छाग्त (क), छाडी (व)।

नोट—क, व, व प्रतियो मे प्रत्येक पक्ति के अन्त मे "री" है।

शब्दार्थ – जीउ = जीव । मातो = मस्त होकर । विसरी = भूल कर । अचेत = असावधान, वेसुध । टेक = हठ । हारिल = अपने चगुल मे लकडी का टुकडा लिये रहने वाला पक्षी और टेडे (तिरछा) चलते हुये लकडी कही अटक जाती है तो वह पक्षी उल्टा लटक जाता है, पीडा से चिल्लाता है पर लकडी नही छोडता है । तोपची = तोप चलाने वाला, तोप मे बत्ती लगाने वाला । गहैगा = पकडेगा । नाहर = सिंह । माचत = मग्न होता हैं । छाँह = छाया । वदरी = वादल । छारै = छोडकर । ककरी = कक्कड ।

नोट—दूसरे पद की प्रथम पक्ति किसी किसी प्रति मे "अति अचेत · · लकरी" तीसरे पद की प्रथम पक्ति के साथ है और तीसरे पद की प्रथम पक्ति "सुपन राज · वदरी" दूसरे पद की प्रथम पक्ति के साथ है ।

अर्थ—धन यौवन पाकर यह जीव (मानव) अपने आज के समय को अर्थात मनुष्य जन्म को सफल समझने लगता है। गर्भावस्था की सव वेदना (दुख) को भूलकर, स्त्री, पुत्र, धन और यौवन मे मग्न रहता है, और अपने आपको सुखी मानने लगता है ॥१॥

हे भोले मानव ! तू अत्यन्त असावधान है, जरा भी सचेत नही होता, तूने तो हारिल पक्षी की लकडो पकडने के हठ (जिद) के समान मोह माया मे रच पच रहने की टेक (हठ) पकडली है। जिस प्रकार सिंह एकाएक (अचानक) आकर वकरी को पकड लेता है, उसी प्रकार कालरूपी तोपची तुझे आ पकडेगा, इसकी भी तुझे कुछ खवर है ? ॥२॥

हे मूढ ! तू स्वप्न मे मिले हुये राज्य को सत्य समझ कर उसी मे मग्न हो रहा है। अरे भोले मानव ! तू तो आकाश मे छाई हुई वदली की छाया मे ही प्रसन्न हो रहा है। क्या तुझे मालुम नही कि

वदली हट जाने पर सूर्य की प्रचड गरमी सहन करनी पडेगी ? अतः इस मानव जीवन को व्यर्थ मत जाने दे। प्रमाद मे समय न खो। पूर्व पुण्य से धन यौवन कुलीन स्त्री आज्ञाकारी पुत्र आदि का योग मिला, उसमे लुब्ध न हो। अपने स्वरूप का स्मरण कर। (जिस तरह मुनीम के पास सेठ के करोडो रुपये होते है। समय समय पर इस दौलत को उसे अपनी भी कहनी होती हैं पर वह जानता है कि यह सब सेठ का है। उसी तरह तू भी इन सासारिक भोगो को पुण्य रूप सेठ का समझ, और अपने ज्ञान स्वरूप द्रष्टाभाव को न भूल।) आनदघनजी कहते है कि कितना आश्चर्य है कि परमानद स्वरूप साश्वत सुख रूपी हीरे को छोडकर यह जीव (मानव) कक्रर-पत्थर रूपी माया जाल मे मस्त हो रहा है।।३।।

विशेष—नीतिकारो ने छै सुख वताये है —

अर्थागमोनित्यमरोगिताच,
प्रियश्च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरीच विद्या
षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।

अर्थात्—धन का आगम, सदा आरोग्य लाभ, प्रिय वन्धु बांधव, मृदुभाषिणी स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र, द्रव्य प्राप्त कराने वाली विद्या ये छै सुख ससार मे सर्वोपरि है। इन सासारिक सुखो मे मग्न होकर मानव पिछले सव दुखो को भूलाकर, यहाँ तक की कुछ दिन पूर्व ही गर्भावस्था के दुख उठाये है, उन्हे भी विस्मृत करके धन, यौवन, सपदा, स्त्री, पुत्र वडे परिवार को प्राप्त कर अपने जीवन को सफल समझता है। अपने को धन्य समझता है— अहो मेरे समान ससार मे

और कौन हे ? इसी मस्ती मे भूल जाता है कि मुझे भी मरना हे। यह सब कुछ छोड कर मुझे भी खाली हाथ जाना है। मै किस समय चला जाऊ, इसका जरा भी ध्यान नही रखता है। इस जीवन मे जो कुछ सुख सौभाग्य मिला है, वह स्थिर नही है, बादल की छाह के समान है फिर भी हारिल पक्षी के लकडी की तरह इनको छोडने को तत्पर नही है। इन अस्थिर वस्तुओ मे ही लुब्ध है। ऐसे भ्रमित विलुब्ध मानव को श्री आनदघनजी वैराग्य भाव की ओर उन्मुख करते हुये कहते है कि परमानदरूप हीरे को त्याग कर मानव मोह माया रूप ककर-पत्थर मे मोहित हो रहा हे अर्थात अनत सुखदाता हीरे को छोड दुखदाई पत्थर ग्रहण करता है। इसलिये सावधान करते है—परभावरूप ककरो को त्याग कर स्वभाव रूप हीरे को ग्रहण करो।

समता भाव **४** **राग-आसावरी**

साधो भाई समता सग रमीजै, अवधु ममता रग न कीजै ।।
सपति नाहि नाहि ममता मे, रमता माम समेटै ।
खाट पाट तजि लाख खटाऊ, अ त खाक मे लेटै ।।अवधु०।।१।।
धन धरती मे गाडै बौरा, धूरि आप मुख लावै ।
मूषक साप होइगो आखर, तातै अलछि कहावै ।।अवधु०।।२।।
समता रतनागर की जाई, अनुभव चंद सु भाई ।
काल कूट तजि भव मे सेरगी, आप अमृत ले जाई ।।अवधु०।।३।।
लोचन चरण सहस चतुरानन, इन ते बहुत डराई ।
'आनदघन' पुरुषोत्तम नायक, हितकरि कठ लगाई ।।अवधु०।।४।।

समता भाव ४ राग-आसावरी

साधो भाई समता संग रमीजै, अवधु ममता संग न कीजै ।।
संपति नाहि नाहि ममता में, रमता माम समेटै ।
खाट पाट तजि लाख खटाऊ, अंत खाक में लेटै ।।अवधु०।।१।।
धन धरती मे गाडै बौरा, धूरि आप मुख लावै ।
मूषक साप होइगो आखर, तातैं अलछि कहावै ।।अवधु०।।२।।
समता रतनागर की जाई, अनुभव चंद सु भाई ।
काल कूट तजि भव मे सेणी, आप अमृत ले जाई ।।अवधु०।।३।।
लोचन चरण सहस चतुरानन, इन ते बहुत डराई ।
'आनंदघन' पुरुषोत्तम नायक, हितकरि कंठ लगाई ।।अवधु०।।४।।

पाठान्तर—सग = सगि (अ), रग (इ, उ)। रग=सग (इ, उ)। कीजै = कीजइ (अ)। रमता माम समेटे = ममता मा मिसमेटे, (क, व), रमता राम समेटे (वि), ममता माम सव मेटे (अ)। (इ प्रति मे 'माम' शब्द नही है) खटाऊ = पटाऊ (उ)। अत = अति (आ), अते (उ)। खाक = खाख (अ, इ, उ)। धरती = धरनी (उ)। धूरि = धूलि (उ)। मुखि = मुखक (अ)। साप = साप (आ, इ, उ)। होइगो = होयगो (इ), होइजो (उ)। तातैं = ताथे (इ), तामे (उ)। कहावैं = कहावइ (आ)। रतनागर=रतनाकर (क, वि), रत्नागर (व)। कालकूट = काल कूटि (अ)। भव = भाव (इ)। ले = लेई (इ, उ)। चरण = वरण (अ)। सहस = सहिस (इ)। तह = ते (अ, इ, उ)। हितकरि = हितकर (इ)।

शब्दार्थ—समता= राग-द्वेष रहित भाव । रमीजै= रमण करो, आनन्द करना, घमना-फिरना साथ रहना। ममता = ममत्व, प्रिय वस्तु पर राग। माम = ममत्व। समेटे = लपेट लेता है, एकत्रित करता है। खाट = पलग। पाट = चौकी, तख्त आदि बैठने की वस्तु। लाख खटाऊ = लाखो रुपया पैदा करने वाला। खाक = मिट्टी। बोरा = बावला, पागल। अलछि = अलक्ष्मी। रतनागर = रत्नो का खजाना, समुद्र। काल-कूट = हलाहल विष। भव मे सेणी = शुद्ध भाव रूप श्रेणी (पक्ति), शुद्ध परिणाम की धारा। लोचन चरण सहस = लोचन (नेत्र) सहस (हजार) इन्द्र, चरण सहस = सूर्य। चतुरानन = चार मुख वाला ब्रह्मा।

अर्थ—हे साधु पुरुषो ! समता के साथ रम जावो—राग-द्वेष को छोडकर समभावी वन जावो। हे अवधु आत्मा ! ममता के रग न पडो। स्त्री पुत्रादि, धन आदि-वैभव और यौवन मे लुब्ध न हो। ममता से किसी भी प्रकार की उन्नति सभव नही है। इसमे रमने से (साथ रहने से) तो अपनी आत्म सपत्ति सिमट कर वहुत थोडी हो जाती है। ममता भाव से लौकिक और पारलौकिक दोनो प्रकार की

उन्नति होती है और ममत्व भाव से यह ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा अपने अह मे सकुचित हो जाता है।* लाखो के कमाने वाले अपनी रत्न जटित सोने की शैय्या और बैठने के सिंहासन को यही छोडकर अत मे खाक (मिट्टी) मे जा लेटे अर्थात् जिस मिट्टी मे पैदा हुये थे उसी मे समा गये ॥१॥

भोले लोग धन को मिट्टी मे गाडते है—गड्ढा खोदकर उसमे धन दौलत रखकर ऊपर से मिट्टी डालते है। यह धन पर मिट्टी डालना नही है अपने ही मुख पर मिट्टी उडेलना है क्योकि जिनकी धन-दौलत पर अत्यन्त आसक्ति होती है, वे ही धन-दौलत को जमीन मे गाडते है। इस दृढ आसक्ति से मर कर वही सर्प या मूषक (चूहे) होते है। शकुन शास्त्रवेत्ता साप व मूषक को अलक्ष्मी कारक कहते है, अत जमीन मे धन गाडना अपने मुख पर धूल डालना है। वास्तव मे यह धन-दौलत लक्ष्मी नही है, अलक्ष्मी है। यदि यह लक्ष्मी होते तो सर्प-मूषक जन्म क्यो प्राप्त होता। असली लक्ष्मी तो आत्मिक गुण है, जिससे वास्तविक सुख प्राप्त होता है ॥२॥

वैदिक मतानुसार समुद्र मे चौदह रत्न निकले थे इसलिये उसे रत्नाकर कहा जाता है। मोती, मूगा आदि अनेक रत्न अब भी उसमे से निकलते है। इन रत्नो से जीव का आत्मिक उत्थान नही हो सकता है, इसलिये ये द्रव्य रत्न है। भाव रत्न तो क्षमा, सन्तोष, ऋजुतादि—जो मनुष्य के अन्तर से प्रकट होते है। इसलिये मनुष्य का हृदय ही भाव रत्नाकर है। श्री आनन्दघनजी कहते है—

---

* एक प्रति मे 'रमता राम सनेटे' पाठ है, जिसका अर्थ—इस रमते राम आत्मा की शक्तियां सीमित हो जाती है।

समता हृदय रूपी रत्नाकर (समुद्र) की पुत्री है। अनुभव रूपी चन्द्रमा इसका श्रेष्ठ भाई है। यह समता आर्त रौद्र ध्यान रूपी हलाहल विष को त्याग कर शुभ परिणाम—धर्म-शुक्ल रूपी अमृत को स्वय ले आती है ॥३॥

समता रूपी लक्ष्मी हजार चरण, हजार नेत्र व चार मुख वाले व्यक्ति को देख कर भयभीत होती है। अर्थात् मोह रूपी महा-राक्षस—जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी चार मुख है, जिसके हजार नेत्र और पाँव है जिनसे वह समता का नाश करता रहता है—को देख कर डर जाती है। श्री आनन्दघन जी कहते है, आनन्द स्वरूप राग-द्वेष रहित पुरुषो मे श्रेष्ठ वीतरागदेव ने प्रेमपूर्वक समता को गले से लगा लिया, अर्थात् समता से जो व्यक्ति स्नेह रखते है वे ही परमपद के अधिकारी होते है ॥४॥

विशेष—उक्त पद के चोथे पद मे एक वैदिक रूपक बहुत ही परिष्कृत रूप मे है। वह इस प्रकार है—अमृत प्राप्त करने के लिये देव और दानवो ने मिलकर समुद्र का मथन किया। सुमेरू पर्वत को 'रई' (फेरना) बनाया गया, शेप नाग से रस्सी का कार्य साधा गया। समुद्र मथ गया। समुद्र से चौदह रत्न प्राप्त हुये। वे चौदह अनुपम वस्तुये इस प्रकार है—(१) लक्ष्मी, (२) कौतुभ रत्न, (३) पारिजातक पुष्प, (४) सुरा, (५) धन्वतरि वैद्य, (६) चन्द्रमा, (७) कामधेनु, (८) ऐरावत हाथी, (९) रभा देवागना, (१०) सात मुख वाला उच्चैश्रवा अश्व, (११) काल-कूट [जहर], (१२) धनुष, (१३) पाचजन्य शख और (१४) अमृत।

स्व० श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने "कल्पवृक्ष" नामक पुस्तक मे इस रूपक का भाव इस प्रकार दिया है —समुद्र मथन का यह उपाख्यान आध्यात्मिक पक्ष मे मनुष्य की दैवी और आसुरी वृत्तियों के सघर्ष का विवेचन करता है। मनुष्य का मन उसकी सर्व श्रेष्ठ निधि है, मननात्मक अश ही मनुष्य मे दैवी अश है। शरीर का भाग पार्थिव और मन का भाग स्वर्गीय है। अथवा यो कहे कि शरीर मृत्यु और मन अमृत है। शरीर का सम्बन्ध नश्वर है, मन का कल्पान्त स्थायी। किसी भी क्षेत्र मे देखे, मन की शक्ति शरीर की अपेक्षा बहुत विशिष्ट है। (कल्पवृक्ष पृ० १०,११)

सतसंग विरह **५** **राग—रामगिरि**

क्यां रै मोनइ मिलस्यै संत सनेही।
संत सनेही सुरजन पाखै, राखै न धीरज देही ॥ क्यां०॥१॥
जरण जरण आगलि अंतरगतिनी, बातडी करियै केही।
"आनदघन" प्रभु वैद वियोगै, किम जीवै मधुमेही ॥ क्यां०॥२॥

पाठान्तर—मोनइ = मौनै (अ, इ, उ)। आगलि = आगल (इ, उ)। करियै = कीजै (अ), कहिये (उ),

शब्दार्थ—क्यांरे = कब, किस समय। सुरजन = सगा सम्बन्धी, स्वजन। पाखै = पक्ष मे, लगाव मे, बिना, विरह मे। देही = देह (शरीर) धारण करने वाला, आत्मा। जरण जरण आगलि = प्रत्येक के आगे। अन्तरगतिनी = मन की। बातडी = बात। मधु मेही = मधु प्रमेह वाला रोगी जिसके मूत्र मे शक्कर निकलती है।

अर्थ—सत पुरुषो से स्नेह करने वाला आत्मस्वरूप मुझे कब प्राप्त होगा। अर्थात् मुझे आत्म बोध कब होगा। सतजन से स्नेह रखने वाले स्वजन के लिये शरीर का धारण करने वाला देही (आत्मा) को अब जरा भी धैर्य नही है। अब विरह को सहन करने की शक्ति नही है। मिलन की उत्कट इच्छा बढती ही जाती है॥१॥

हरेक के सामने अपने हृदय की बात कैसे कहू ? कैसे बताऊँ ? आनदघन जी कहते है कि किस प्रकार मधु प्रमेह वाला व्यक्ति बिना वैद्य के जीवन यापन नही कर सकता है, अर्थात् नही जी सकता है, उसी प्रकार आनद के समूह (आत्म स्वरूप) के वियोग मे अब मै कैसे जी सकता हू, अर्थात् यह जीवन व्यर्थ है। मुझे तो आत्मस्वरूप प्राप्त करने की उत्कट इच्छा है॥२॥

इस पद का अर्थ इस प्रकार से भी हो सकता है—

सुमति अनुभव से कहती है कि सत पुरुषो का स्नेही मेरा आत्म स्वरुप मुझे कब प्राप्त होगा ? उसके विना सब सूना सूना है, मुझे कुछ अच्छा नही लगता है। उसके विना मै बेचैन हो रही हू। अत्यन्त ही दुख पा रही हू। सतो से स्नेह करने वाले मेरे स्वजन (सबधी) के लिये शरीर धारण करने वाले मरे प्राण धीरज नही रख पाते है अब वियोग सहन नही किया जाता है ॥१॥

हे अनुभव ! हर व्यक्ति के सामाने अपने मन के दुख को कैसे प्रकट किया। जिस प्रकार मधु प्रमेह से दुखित व्यक्ति वैद्य के बिना नही जी सकता है, उसी प्रकार आनद के समूह आत्मस्वरूप स्वामी के विना मै कैसे जीवन चला सकती हू। इस लिये मुझे बता कि मेरे आत्म रूप स्वामी मुझे कैसे प्राप्त होगे ॥२॥

कहते है कि श्री आनदघनजी से उक्त पद सुनकर जन समुदाय भक्ति विभोर होकर उनका परिचय जानने के लिये, उनकी परम्परा के विषय मे प्रश्न करता है। उत्तर मे योगीराज आगे का पद कहते मालूम होते है।

परिचय ६ राग–आसाउरी (रामगिरि)

जगत गुरु मेरा, मै जगत का चेला,

मिट गया वाद विवाद का घेरा ॥ ज०॥१॥

गुरु के रिधि सिधि सम्पति सारी,

चेरे के घर मे खपर अंधारी ॥ ज०॥२॥

गुरु कै घर सब जरित जरावा,
चेरे की मढिया मै छप्पर छावा ।। ज०।।३।।

गुरु मोहि मारै सबद की लाठी,
चेरे की मति अपराधनि काठी ।। ज०।।४।।

गुरु के घर का मरम न पावा,
अकथ कहाणी 'आनदघन' बावा ।। ज०।।५।।

पाठान्तर—चेला = चेरा (अ, इ) । मिट = मिटि (आ) । गया = गइ (उ) । घेरा = गेरा (इ), झेरा (उ) । रिधि सिधि = रिध सिध (इ), ऋद्धि सिद्धि (उ) । खपर = खधर (इ) । छावा = छाया (इ), "चेरे ' छावा" = चेरे के घर मे काया मे छपर छाया (उ) । खपर = निपट (वु, वि), न = मै (अ), मौ (उ) । बावा = पाया (वु), भाया (वि) ।

शब्दार्थ—वाद विवाद=तर्क, शास्त्रार्थ, कहा-सुनी । घेरा=सीमा । रिधि= ऋद्धि, समृद्धि, सफलता । खपर = मिट्टी का भिक्षा पात्र । मढिया = रहने का स्थान, झोपडी । जरित जरावा = जडाव जडे हुए । सबद = शब्द, वचन, शास्त्र वचन । काठी = कठिन, मजबूत । अकथ = जो कही नही जा सके ।

अर्थ—यह ससार सद्गुणो की शाला भूत है। इस ससार से मुझे कुछ न कुछ शिक्षा सदा मिलती रहती है। इसलिये सम्पूण ससार ही को मै अपना गुरु मानता हू और अपने को उसका शिष्य। इस प्रकार करने से तर्क वितर्क या वाद विवाद की सारी परिधि ही समाप्त हो जाती है ।।१।।

जगत रूपी गुरु के घर मे सब प्रकार की ऋद्धि सिद्धि और समृद्धि विद्यमान है। वह सद् गुणो व ज्ञान का भडार है, उसमे कोई कमी नही है। लेकिन मुझ शिष्य की कुटिया मे अ धकार (अज्ञान) छाया हुआ है तथा मेरे पास मिट्टी का भिक्षापात्र है ।।२।।

गुरु के घर मे (ससार मे) सब प्रकार के रत्न जटित आभूषण है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप आभूषण किन्तु मेरी (शिष्य का) कुटिया मे तो मात्र छप्पर ही छाया हुआ है। (मेरे तो कर्मों का आवरण ही आवरण है) ॥३॥

(इस पद मे कवि ने सामूहिक शक्ति—सघ शक्ति का वर्णन किया है एव व्यक्तिगत शक्ति का वर्णन कर निरभिमानता का पाठ पढाया है)

गुरू मुझे शब्द रूप (उपदेश) लाठी से ताडना करते है किन्तु मेरी बुद्धि तो घोर अपराधिनी है व कुण्ठित है। मुझ पर तो उन सद्उपदेशो का प्रभाव पडता ही नही है ॥४॥

आनन्दघन जी कहते है कि गुरू के घर का भेद पाना कठिन है अर्थात् उनके ज्ञान, उपदेश आदि का मर्म प्राप्त करना कठिन है उसकी तो कथा ही अकथनीय है ॥५॥

(इस पद को सुनकर जनता की उत्कण्ठा और बढती है और उनका विशेष परिचय (सम्प्रदाय आदि) जानने के लिये प्रश्न करती है। उसके उत्तर मे आगे का पद कहते विदित होते है)

७ राग आसावरी

(साधो भाई) अपना रूप जब देखा।
करता कौन करनी फुनि कैसी, कौन मागेगो लेखा ॥अपना॥१॥
साधु सगति और गुरु की, क्रिपा ते मिटि गइ कुल की रेखा।
'आनदघन' प्रभु परचो पायो, उतर गयो दिल भेखा ॥अपना०॥२॥

८ राग–धन्यासी (सारंग)

अब मेरे पति गति देव निरंजन ।
भटकूं कहां कहां सिर पटकूं, कहा करूं जन रंजन ॥अब०॥१॥
खंजन दृग दृग नाहि लगावुं, चाहुं न चित वित अंजन ।
संजन घट अंतर परमातम, सकल दुरित भय भंजन ॥अब०॥२॥
एहि काम-गवि, एहि काम घट, एहि सुधारस मंजन ।
'आनदघन' घटवन केहरि, काम मतगज गजन ॥अब०॥३॥

पाठान्तर—अब = अव (आ) । भटकूं = भटकौं (अ) । पटकूं = पटकौं (अ) । करूं = करौं (अ) । दृग दृग = दृगन दृग (इ, उ), दृग दिग (अ) । नाहि = न (ट) नहि (उ) । लगावु = लगावौं (अ) । चाहुं = चाहौं (अ), चाउ (उ) । चितवित = चितवन (व), चितवन (वि) । सजन

पाठान्तर—अपना = साधो भाई अपना (उ)। देखा = देख्या (अ, आ)। करणी फुनि कैसी = कौन फुनि करणी (आ)। क्रिपा = कृपा (अ, उ)। परचो = परचौ (अ, इ, उ)। उतर = उत्तर (इ, उ)।

शब्दार्थ—फुनि = पुन, फिर। लेखा = हिसाब। रेखा = लकीर, चिन्ह, मर्यादा। परचो = परिचय। उतर गयो = दूर हट गया। भेखा = वेष, रूप।

अर्थ—(हे सज्जनो!) जब मैने अपने आप का स्वरूप देखा, अपने को पहिचाना अर्थात् अपने चैतन्य स्वरूप को जाना तो प्रश्न हुआ, कर्त्ता कौन है? करणी (कर्म) क्या है? और इसका हिसाब (अच्छे बुरे कार्य का हिसाब) मागने वाला कौन है? मै स्वय ही कर्त्ता हू, मेरे कार्य ही करणी है, और इनका लेखा मागने वाला भी मै ही हू। जैसी करणी (कर्म) की है, उसका भोक्ता मै ही हू। कोई दूसरा मेरी करणी का हिसाब मागने वाला नही है वल्कि मै स्वय ही हू। उस मेरी करणी के अनुसार ही मुझे फल मिलता है। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है—परमार्थ से यह जीव (आत्मा) स्वभाव परिणति की अपेक्षा निज स्वरूप का कर्त्ता है, व्यवहार मे द्रव्य कर्म का कर्त्ता है और उपचार से घर नगर आदि का कर्त्ता है।

मन तो कभी निश्चल रहता नही है, कुछ न कुछ (सकल्प, विकल्प) करता ही रहता है किन्तु इन कार्यों मे जब तक राग-द्वेष है तब तक वन्ध है। राग-द्वेष रहित करणी इस जीव को वन्धन मे नही फँसा सकती। जिस प्रकार विप खाने से विप का फल और अमृत पीने से अमृत का फल मिलता है, इसमे हिसाव रखने वाले की आवश्यकता नही होती, उसी प्रकार शुभाशुभ करणी के हिसाव की आवश्यकता नही है ॥१॥

पाठान्तर—अपना = सावो भाई अपना (उ)। देखा = देख्या (अ, आ)। करणी फुनि कैसी = कौन फुनि करणी (आ)। क्रिपा = कृपा (अ, उ)। परचो = परची (अ, इ, उ)। उतर = उत्तर (इ, उ)।

शब्दार्थ—फुनि = पुन, फिर। लेखा = हिसाब। रेखा = लकीर, चिन्ह, मर्यादा। परचो = परिचय। उतर गयो = दूर हट गया। भेखा = वेप, रूप।

अर्थ—(हे सज्जनो!) जब मैने अपने आप का स्वरूप देखा, अपने को पहिचाना अर्थात् अपने चैतन्य स्वरूप को जाना तो प्रश्न हुआ, कर्त्ता कौन है? करणी (कर्म) क्या है? और इसका हिसाब (अच्छे बुरे कार्य का हिसाब) मागने वाला कौन है? मै स्वय ही कर्त्ता हू, मेरे कार्य ही करणी है, और इनका लेखा मागने वाला भी मै ही हू। जैसी करणी (कर्म) की है, उसका भोक्ता मै ही हू। कोई दूसरा मेरी करणी का हिसाब मागने वाला नही है वल्कि मै स्वय ही हू। उस मेरी करणी के अनुसार ही मुझे फल मिलता है। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है—परमार्थ से यह जीव (आत्मा) स्वभाव परिणति की अपेक्षा निज स्वरूप का कर्त्ता है, व्यवहार मे द्रव्य कर्म का कर्त्ता है और उपचार से घर नगर आदि का कर्त्ता है।

मन तो कभी निश्चल रहता नही है, कुछ न कुछ (सकल्प, विकल्प) करता ही रहता है किन्तु इन कार्यो मे जब तक राग-द्वेष है तब तक बन्ध है। राग-द्वेष रहित करणी इस जीव को बन्धन मे नही फँसा सकती। जिस प्रकार विष खाने से विष का फल और अमृत पीने से अमृत का फल मिलता है, इसमे हिसाब रखने वाले की आवश्यकता नही होती, उसी प्रकार शुभाशुभ करणी के हिसाब की आवश्यकता नही है॥१॥

शुद्ध साधुओ की सगति करने से, उनके वचनामृत पान करने से, अर्थात् उनके सदुपदेशो के अनुमार आचरण करने से और गुरू की कृपा से दीर्घ काल के जमे हुये सस्कार नष्ट हो गये। अर्थात् जाति, कुल (वश), वेष आदि का अभिमान नष्ट हो गया। आनन्द के समूह (आत्मा) से मेरा परिचय हो गया—जान-पहिचान हो गई,—आत्मा को जान लिया, अनुभव कर लिया तो मेरे हृदय से वाह्य रूप का मोह दूर हो गया।

'जाति वेषनो भेद नहि, कह्यो मार्ग जो होय।
साधे ते मुक्ती लहे, एमा भेद न कोय॥"

(श्रीमद् राजचन्द्र)

८ राग–धन्यासी (सारंग)

अब मेरे पति गति देव निरंजन।
भटकूं कहा कहा सिर पटकूं, कहा करू जन रजन ॥अब०॥१॥
खजन दृग दृग नाहि लगावु, चाहु न चित वित अ जन।
सजन घट अ तर परमातम, सकल दुरित भय भजन ॥अब०॥२॥
एहि काम-गवि, एहि काम घट, एहि सुधारस मंजन।
'आनदघन' घटवन केहरि, काम मतगज गजन ॥अब०॥३॥

पाठान्तर—अब = अबर (आ)। भटकू = भटकौं (अ)। पटकू = पटकौं (अ)। करू = करौं (अ)। दृग दृग = दृगन दृग (इ, उ), दृग ढिग (अ)। नाहिं = न (इ), नहि (उ)। लगावु = लगावौ (अ)। चाहुँ = चाहौं (अ), थाउ (उ)। चितवित = चितवन (व), चितवन (वि)। सजन

घट अन्तर = सजन अन्तर (आ)। एहि = एह (इ)। घट = घट घट (अ), प्रभु घट (इ), घटे (उ)।

शब्दार्थ—गति = अवलब, सहारा। निरजन = दोष रहित। रजन = प्रसन्न। दृग = नेत्र, दृष्टि। चितवित = चित्त (मन) का धन। सजन = सज्जित। घट अन्तर = अत करण, हृदय। दुरित = पाप। काम गवि = कामधेनु गाय। काम घट = काम कु भ। मजन = स्नान। केहरि = सिंह। मतगज = मस्त हाथी।

अपने शुद्ध स्वरूप को पहिचानने के पश्चात् कवि के उद्गार—

अर्थ—ज्ञान सारजी महाराज ने इस पद पर टब्बा लिखा है, उन्ही के आशय अनुसार इसका अर्थ किया जाता है कि कविराज लाभानन्द जी उपनाम आनन्दघन जी कहते है—निश्चय नय से कर्म मल रहित मेरा निरजन आत्मा ही मेरा आराध्यदेव है, यह आत्मा ही मेरा स्वामी है। इसका ही मुझे अवलबन है। इसलिये तीर्थादिक मे किस लिये भटकूं, कहाँ कहाँ मस्तक झुकाऊँ, किस किस व्यक्ति को प्रसन्न करता फिरूँ ॥१॥

वन्ध मोख नहि हमरै कबही, नहिं उत्पात बिनासा।
सुद्ध सरूपी हम सब कालै, ज्ञान सार पदवासा ॥
(ज्ञानसार जी)

परमात्म स्वरूप को प्रत्यक्ष करने के लिये (देखने के लिये) खजन पक्षी के नेत्र समान लम्बे सुन्दर नेत्र मुझे नही चाहिये और न मुझे उन नेत्रो को सुन्दर बनाने के लिये जो उनका धन है, ऐसे अ जन की आवश्यकता है क्योकि समस्त पापों व भयो को दूर

करने वाला परमात्मा तो मेरे घट मे (हृदय मे) ही सुशोभित है, बैठा है ॥२॥

यह परमात्पा ही मेरे लिये मनवच्छित फल देने वाली काम-धेनु है, यही मेरे लिये कामकुंभ है, यही अमृतरस का स्नान है। (मुझे अन्य वस्तुओ की इच्छा क्यो हो ? अर्थात् नही है।) आनन्द–धाम आत्मा मेरे शरीर रूपी वन के केसरी सिह है जो काम रूपी मदोन्मत्त हाथी का गजन (नाश) (चूर चूर) करने वाला है।

६ राग–कल्याण

मोकु कोऊ कैसइहु तको ।
मेरे काम इक प्रान जीवन सुं, और भावै सो बको ॥ ॥मोकुं॥१॥
हूँ आयो प्रभु शरण तुम्हारी, लागत नाहि धको ।
भुजनि उठाइ कहु ओरनिसो, करहो जुकरहि सकौ ॥मोकुं॥२॥
अपराधी चितठानि जगत जन, कोरिक भाति चकौ ।
'आनन्दघन' प्रभु निहचै मानो, यह जन रावरो थकौ ॥मोकु॥३॥

पाठान्तर - कैसइ = कैसे (अ इ), कैहमे (उ) । हु तको = हि तको (अ) । सो = सु (आ) । तुम्हारी = तुहारी (अ), तुम्हारे (इ), तिहारै (उ) ।

नोट—योगिराज जब सबसव परित्याग कर अकेले रहने लगे (विशेष साधना के लिये) तो इनके विषय मे लोग शका करने लगे और तरह तरह की बाते फैलाने लगे। यह समाचार इनके कानो तक भी पहुँचे। वे विचार करते है कि ससार की भी क्या विचित्र गति है ! उसे दूसरो की बाते धनाना (निन्दा करना) ही आता है। यह कुछ भी कहे, कुछ भी समझें, मुझे तो अपने आराध्य से काम है। मुझे आतरिक शांति चाहिये. वह समार

भुजनि = भुजन (इ), भुवजन (उ) । ओरनि = ओरन (अ), औरनि (इ उ) । सो = सु (आ) । करहोजु = करहुजु (अ), करहुज (आ)

शब्दार्थ—तको = देखो, समझो । भावै = जो दिल मे आवे, इच्छा-नुसार । वको = कहो । धको = धक्का । चको = देखो, आशका करो । रावरो = आपका । थको = हो चुका ।

अर्थ—मुझे कोई कैसी ही दृष्टि से देखो, मुझे तो मेरे जीवन प्राण प्रभु (आराध्य) से काम है, ससार के लोग भले ही मेरे लिये कुछ ही कहा करे ॥१॥

हे प्रभो ! हे स्वामी ! मै आपकी शरण मे आ गया हू । ससार की निन्दा–स्तुति मुझे धक्का नही दे सकती है । मुझे मेरे ध्येय से हटा नही सकती है । मै तो हाथ उठाकर (पुकार पुकार कर) और लोगो से कहता हू कि अपनी शक्ति भर जो कर सकते हो, करो ॥२॥

ससार के लोग मुझे अपराधी समझकर भले ही नाना प्रकार की दृष्टि से देखे, मन मे करोडो तरह की आशकाये करे, मुझे इसकी जरा भी चिन्ता नही है । हे आनन्दधाम प्रभो ! आप यह निश्चय मानो कि यह सेवक तो आपही का हो चुका है ॥३॥

इस पद का अर्थ सर्वस्व समर्पण करने वाले भक्त की उक्ति के ऊपर किया गया है । किन्तु यदि यह उक्ति सुमति अथवा चेतना की मानें तो भी अर्थ सगत ही रहता है ।

आत्म निवेदन — १० — राग–आशावरी

अवधू क्या मागु गुन हीना, वै तो गुन गगन प्रवीना ॥
गाइ न जानु बजाइ न जानू, नै जाणु सुर भेवारे ।
रींझ न जानु रीझाइ न जाणु, नै जाणु पद सेवा ॥ अ० ॥१॥

वेद न जाणु कतेब न जाणु, जाणु न लक्षण छन्दा।
तरकवाद विवाद न जाणु, न जाणु कवि फंदा ॥ अ० ॥२॥
जाप न जाणु जुआब न जाणु, न जाणु कथ वाता रे।
भाव न जाणु भगति न जाणु, जाणु न सीरा ताता ॥ अ० ॥३॥
ग्यान न जाणु विग्यान न जाणु, न जाणु भजनामा।
'आनंदघन' प्रभु के घरि द्वारै, रटन करू गुन धामा ॥ अ० ॥४॥

पाठान्तर— 'तो' 'इ' प्रति मे नही है। गुन गगन = गुन गनन (आ, का), गुग गगान (उ), गुन गनिन (ब), सुर = स्वर (इ उ)। भेवा = देवा (उ) रीझ = रीझ (आ), रीझाइ = रीभाइ (उ) रिझाइ (अ इ)। लक्षण = लछन (इ), लच्छन (उ) । जाप = आप (आ), जुआव = जुआप (आ) जवाव (इ), जवाप (उ)। कथवातारे = कथावातारे (आ), कथवात (इ), कथावतारे (उ)। सीरा = सीना (उ) । ग्यान = ज्ञान (अ)। विग्यान = विज्ञान (अ)। न = नइ (आ), नै (अ) भज = भजि (अ)। घरि = घर (इ. उ)।

शब्दार्थ—गगन = आकाश। प्रवीन = चतुर। भेवा = भेद। रीझ = प्रसन्नता। रीझाइ = प्रसन्न करना। पद सेवा = चरणसेवा, चारित्रसेवा, स्वरूप सेवा। तरकवाद = न्यायशास्त्र। विवाद = उत्तर प्रत्युत्तर करना, झगडना। कवि फन्दा = कवित्वकला, कविता बनाना। सीरा ताता = ठण्डा गरम। विग्यान = अनुभव जन्य ज्ञान। भजिनामा = भजन की रीति। गुणधामा = गुणो के घर।

अर्थ—इस पद मे कवि आत्म निवेदन मे अपनी लघुता दिखाते हुये, अपने अहभाव का निराकरण करते हुये कहते हैं—हे अवधू! मैं गुणहीन क्या मागू ? वे प्रभु तो आकाश के समान अनत गुण वाले चतुर हैं। मागने के लिये, मै न तो गायन जानता, न (प्रसन्न करने के लिये) अनेक वाद्यन्त्र बजाना जानता, न मै षडज, ऋषभ,

गाधार, मध्यम, पचम, धैवत और निपाद आदि स्वरो के भेदो को जानता, न अपनी प्रसन्नता प्रकट करना जानता, न प्रभु को हाव भाव व वचन चातुरी से प्रसन्न करना जानता और न प्रभु के चरणो की सेवा विधि ही जानता ।।१।।

चारो वेदो को--(ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) मै नही जानता, शास्त्र ज्ञान मुझे नही है। न पिंगल शास्त्रानुसार छदो के लक्षण जानता, न्याय शास्त्र व वादविवाद (शास्त्रार्थ) करना भी मै नही जानता, न कवियो जैसी वाक चातुरी मुझ मे है ।।२।।

न मै जाप करने के भेदो को जानता, (शव्द व मानस दो प्रकार के जाप है) । इनमे नदावर्त, शखावर्त, ऊँवृत्त, ह्री वृत्त आदि अनेक भेद है। योग की विधिये जानने वाले शरीर के विविध भागो मे कमलो की कल्पना कर, उन पर अनेक अक्षर व पद स्थापित कर जाप किया करते है। किसको किस भाति कहना चाहिये—जवाव देना चाहिये, यह विद्या भी मुझ मे नही है । न उत्तमोत्तम मनोरजक कथा-वार्ता कहना ही मुझे आता है। भावो को उल्लसित करने की शक्ति भी मुझे नही है। न मै भक्तिभाव करना ही जानता हू। क्या बात किसको शात कर देगी, कौनसा व्यवहार उत्तेजित कर देगा—यह भी मै नही जानता ।।३।।

न मुझे सामान्यज्ञान है, न विशेष ज्ञान है और न भजन कीर्तन की रीति ही का ज्ञान है। आनन्दघन जी कहते है—मै तो केवल मात्र आनन्द स्वरूप गुणो के निधान प्रभु के घर के दरवाजे

पर (राग-द्वेष रहित, इच्छा रहित होना ही प्रभु का घर द्वार है) उनके गुणो का स्मरण करता हू ॥४॥

साराश यह है कि मागने वाले मे भी योग्यता होनी चाहिये। कवि कहते है—उक्त प्रत्येक बात मे मुझसे अधिक सैकडो ही व्यक्ति है फिर मै मागने का कैसे साहस करु । वह प्रभु तो घट घट को जानने वाला है। योग्यता होने पर प्राप्ति मे देर नही लगती। इसलिए प्रभु से याचना क्या करु । उसका स्मरण करते हुये अपना कर्तव्य पालन करते रहना ही श्रेष्ठ साधन है। इस ही मे सिद्धि है। प्रभु से योग्यता के बल पर कुछ भी माग न करने से फलाशा बढती है और सफलता फल की आशा त्यागने मे है। योगीराज ने निस्वार्थ भाव से प्रभु का स्मरण करते हुये अपने आचरण द्वारा कार्य करने का मार्गदर्शन किया है।

आत्म निरूपण ११ **राग—आशावरी**

अवधू नाम हमारा राखै, सोइ परम महारस चाखै ॥

ना हम पुरुष ना हम नारी, बरनन भाति हमारी ।
जाति न पाति न साधु न साधक, ना हम लघु नहि भारी
॥ अव० ॥१॥

ना हम ताते ना हम सीरे, ना हम दीरघ ना छोटा ।
न हम भाई, न हम भगनी, ना हम बाप न धोटा ॥ अव० ॥२॥

ना हम मनसा ना हम सबदा, ना हम तन की धरणी ।
न हम भेष भेषधर नाहीं, ना हम करता करणी ॥ अव० ॥३॥

न हम दरसन ना हम फरसन, रस न गंध कछु नाहीं ।
'आनन्दघन' चेतन मय मूरति, सेवक जन बलि जाहीं ॥ अव० ॥४॥

व आनन्द स्वरूप यह आत्मा है। सेवक जन (साधक वर्ग) इस रूप पर वलिहार जाते है अर्थात् अपने आपको उत्सर्ग करते है ॥४॥

१२ राग—रामगिरि

माहरो मौनें कब मिलस्यै मन मेलू ।
मन मेलू बिन केलि न कलिये, वालै कवल कोइ वेलू ॥ मा० ॥१॥
आप मिल्या थी अन्तर राखै, मनुष नहीं ते लेलू ।
'आनदघन' प्रभु मन मिलिया विण, को नवि विलगै चेलू ॥मा०॥२॥

पाठान्तर—माहरो = मारो (अ, इ) । मौनें = मनें (इ), मुनें (उ) । कलिये = कलीइ (आ), करिये (अ, इ) । वालै = वाल (इ) । मनुष = सो मिनख (अ, इ) ।

शब्दार्थ—माहरो = मेरा । मौनें = मुझे । मन मेलू = मन मिलने वाला, जिससे मन मिले, प्रिय । केलि = खेल । कलिये = खेलना । कवल = ग्रास, कौर । वेलू = बालू, रेत । अन्तर = फर्क, परदा । लेलू = इसका अर्थ श्री बुद्धिसागर जी ने 'लवाडी' किया है, श्री कापडिया जी ने 'पत्थर का टुकडा' किया है, यह शब्द हिन्दी का नही ज्ञात होता है । इसका अर्थ हृदय-हीन, पशु से है । विलगै = पास मे आना । चेलू = चेला, शिष्य ।

अर्थ—मुझे मेरा मन मिलापी प्रिय (आत्मा) किस दिन मिलेगा । मेरे मन से जिसका मेल बैठता (मिलता) हो, वह प्रिय कब मिलेगा । मन मिलापी विना और तो क्या, खेल (क्रीडा) खेल कर मन बहलाव (मनोरजन) करने की भी इच्छा नही होती । विना मन मिले प्रीति करना तो बालू-रेत के ग्रास बनाना है ॥१॥

अपने मन मिलने वाले स्नेही मित्र से जो परदा रखता है, कपट करता है, वह मनुष्य नही है, वह तो हृदयहीन पशु है । श्री

आनन्दघन जी कहते है—हे प्रभो ! मन मिले विना तो कोई चेला-शिष्य भी पास नही आता है ॥२॥

विशेष—सम्भव है किसी के प्रश्न करने पर कि आप शिष्य करेगे या नही ? योगीराज को इस पद की स्फुरणा हुई हो। तात्पर्य यह है कि जब तक मन के अनुसार योग्यता वाला कोई न मिले, तब तक योगीराज उसे दीक्षित करने की इच्छा नही रखते। शिष्य बना कर उसे योग्य न बनाना तो बुरा है और शिष्य बन कर गुरु मे श्रद्धा भाव न रखना और भी बुरा है। परस्पर का सम्बन्ध ही फलदायक है।

यदि इस पद को चेतना या सुमति की उक्ति मानें तो चेतना कहती है कि जिससे मेरा मन मिल जावे ऐसा मन मिलापी प्रिय मुझे कब प्राप्त होगा अर्थात् मुझे शुद्ध स्वरूप आत्म दर्शन कब प्राप्त होगा ? (आगे पद का भी इसी प्रकार अर्थ होगा)

सिद्ध स्वरूप उनके ३१ गुण १३ राग—आशावरी

अनन्त अरूपी अविगत सासतो हो वासतो वस्तु विचार।
सहज विलासी हासी नवि करै, अविनाशी अविकार ॥अनत०।१॥
ज्ञानावरणी पच प्रकार नी, दरसण रा नव भेद।
वेदनी मोहनी दोइ दोइ जाणीइ रे, आउखो चार विछेद ॥अ०।२॥
शुभ अशुभ दोउ नाउँ वखाणीयै, ऊँच नीच दोय गोत।
विघन पचक निवारी आप थी, पंचम गति पति होत ॥अ०।३॥
जुग पद भावी गुण जगदीसना रे, एकत्रीस मति आणि।
अवर अनन्ता परमागम थकी, अविरोधी गुण जाणि ॥अ०।४॥

सुन्दर सरूपी सुभग सिरोमणी, सुणि मुझ आतम राम।
तनमय तल्लय तसु भजनै करी, 'आनन्दघन' पद पाम ॥अ० ।५॥

पाठान्तर—वस्तु = वसत (आ)। दरसण रा = दरसण ना (इ)। जाणीइ रे = जाणियै रे (अ, इ)। विछेद = विच्छेद (अ)। दोउ नाउ = दोऊ नाव (इ), दोऊ नाम (उ)। ऊँच = उँच (आ)। दोइ = दोय (इ)। निवारी = निरवारी (आ), निरवार्‍या (उ)। आप थी = आपथी रे (इ, उ)। जुग पद = युग पद (अ, उ)। मति = मनि (आ), मन (इ, उ)। आणि = आण (अ)। अविरोधी=अहिरोधी (अ)। सिरोमणि- सिरोमणि रे (अ), सिरोमणी रे (इ, उ)। सुणि = सण (इ, उ)। भजनै = भजनइ (अ), भक्ते (ब वि)।

शब्दार्थ—अरूपी = रूप रग रहित, जो इन्द्रियो द्वारा न जाना न देखा जा सके। अविगत = अनिर्वचनीय, जिसका वर्णन न हो सके। सासतो = शाश्वत, नित्य, अविनाशी। वासतो = निवास करते है, रहते है। सहज विलासी = स्वभाव सुख मे रमण करते है। अविनाशी = विनाश रहित। अविकार = विकार रहित। आउखो = आयुष्य कम। विछेद = भेद प्रकार। विघन = अन्तराय कम। पचम गति = मोक्ष। जुग पद = एक ही क्षण मे उत्पन्न ज्ञान, दर्शन। सरूपी = स्वरूप वाला। सुभग = सुन्दर, सुखद। तन्मय = तदाकार, एकाग्र। तल्लय = तल्लीन, निमग्न।

अर्थ—योगीराज आनन्दघन जी कहते है—सिद्ध परमात्मा अनन्त हे, अरूपी है—इन्द्रियो द्वारा जाने नही जा सकते, इनके स्वरूप का पूरा वर्णन नही किया जा सकता। वह शाश्वत है। सिद्ध शिला पर निवास करते है। सम्पूर्ण वस्तुओ के तथा उनके भावो के ज्ञाता है। सहज सुख मे विलास करते है। किन्तु कभी किसी से हँसो नही करते अर्थात् गम्भीर है क्योकि विकार रहित और अविनाशी है ॥१॥

मति, श्रुति, अवधि, मनपर्यव तथा केवल—इन पाँच प्रकार

के ज्ञान पर आवरण करने वाले कर्म को ज्ञानवरणी कर्म कहते है। दर्शनावरणी के नौ भेद है—चक्षु दर्शनावरणी, अचक्षु दर्शनावरणी, अवधि दर्शनावरणी, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि। साता, असाता वेदनी से, वेदनी कर्म के दो प्रकार, दर्शन मोह और चारित्र मोह—ये मोहनी कर्म के दो भेद हैं। आयुष्य कर्म चार प्रकार का है—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु ॥२॥

शुभाशुभ प्रकार मे नाम कर्म के दो भेद, उच्च गोत्र और नीच गोत्र—ये गोत्र कर्म के दो भेद है। दान, भोग, उपभोग, लाभ व वीर्य मे विघ्न पहुँचाने वाले पाँचो अन्तराय कर्मो को अपने से दूर कर, हटा कर पचम गति मोक्ष के स्वामी होते हैं ॥३॥

जगत के स्वामी सिद्ध भगवान् मे एकसाथ एक ही समय मे इकतीस गुण होते ह। सिद्ध परमात्मा मे और भी अनन्त अविरोधी गुण है जिन्हे परमागम से जानना चाहिये। (१) ज्ञानावरण के नाश से अनन्त ज्ञान प्रगट होता है, (२) दर्शनावरण के नाश से अनन्त दर्शन, (३) वेदनीय कर्म के नाश से अव्यावाध सुख-अनन्त सुख, (४) दर्शन मोह कर्म के नाश से क्षायिक सम्यकत्व तथा चारित्र मोह के नाश से स्वरूप रमणता रूप क्षायिक चारित्र प्रकट होता है, (५) नाम कर्म के नाश से अरूपीपन, (६) गोत्रकर्म के नाश से अगुरु लघु गुण प्रकट होता है, (७) अन्तराय कर्म के नाश से अनन्तवीर्य शक्ति प्रकट होती है, (८) आयु कर्म के नाश से अक्षय स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार ये इकतीस गुण सिद्धो मे प्रकट होते हैं ॥४॥

हे सुन्दर व सुखद वस्तुओ के सिरताज ! शिरोमणी ! मेरे आतम राम सुन, तू भी एकाग्र भाव और तल्लीनता से सिद्ध भगवान् के गुणगान कर जिससे आनन्ददायक परमानन्द प्राप्त हो, तदाकार वृत्ति से सिद्ध भगवान् मे तल्लीन होकर भजन कर, जिससे परमानद दायक परमपद प्राप्त होवे ॥५॥

प्रिया प्रलाप **१४** **राग—तोडी (टोड़ी)**

तेरी हूँ तेरी हूँ एती कहूँ री ।
इन बातन कू दरेग तू जानै, तो करवत कासी जाय गहूँ री ॥
॥ तेरी० ॥ १ ॥

वेद पुराण कतेब कुरान मै, आगम निगम कछु न लहूँ री ।
चाचरि फोरि सिखाइ सब निकी, मै तेरे रस रग रहूँ री ॥
॥ तेरी० ॥ २ ॥

मेरे तो तू राजी चहीयै, और के बोल मै लाख सहूँ री ।
'आनन्दघन' प्रभु बेगि मिलो प्यारे, नहि तो गग तरग बहूँ री ॥
॥ तेरी० ॥ ३ ॥

पाठान्तर—तेरी हूँ तेरी हूँ एती कहूँ री = तेरी हूँ एती कहूँ री (आ), तेरी हूँ तेरी हूँ तेरी हूँ तेरी हूँ तेरी हूँ तेरी हूँ (अ, उ) । कू = मैं (अ, इ) । दरेग = दगो (अ, इ) । जानै = ज्यनै (अ, इ) । कतेव = कितेब (उ) । चाचरि = वाचरि (इ), चाचर (उ) । फोरि = कोरी (उ) । सिखाइ = सिखाय (उ) । सब निकी = सबन की (इ, उ), सेवन की (क, व) । नहि = नाही (अ, आ) ।

शब्दार्थ—दरेग = कमी फर्क, । कतेब = किताव, धर्मग्रथ । आगम = जैन धर्म शास्त्र । निगम = अर्थ निर्धारण करने वाले ग्रथ, वेद । चाचरि =

फाल्गुन मे गाया जाने वाला गीत, एक राग । सब निकी = सबने भली भाँति । रस रग = प्रेम के रग मे, ग्रानन्द मे ।

ग्रर्थ—सद्‌बुद्धि कहती है—हे चेतन ! तू निश्चयपूर्वक जान कि मैं तेरी ही हू । मै अनेक वार कह चुकी हू कि मै तेरी हू, मै तेरी ही हू, अब फिर कहती हू कि मै तेरी हू । इस मेरी बात मे कुछ कमी या फर्क समझता हो तो मै काशी जाकर करवत ले सकती हू ॥१॥

हे चेतन ! चारो वेदो, अठारह पुराणो, कुरान, जैनागमो, उपनिपदो मे तेरे वर्णन के अतिरिक्त और कुछ नही पाती हू । वाणी के हेर-फेर से, भाषा परिवर्तन से, वचन चातुरी से गा गा कर इन सब ने भले प्रकार से तेरी ही सेवा के विषय मे कहा है । हे चेतन ! मैं तो तेरे ही रस-रग (प्रेम) मे रहती हू ॥२॥

मुझे तो तेरी प्रसन्नता चाहिये (तू मेरे उन्मुख रहे) फिर तो मै लोगो के लाख लाख ताने, अपशब्द भी सहलूँगी । हे प्रिय आनन्दधाम प्रभो ! तुम्हारा विरह अब सहा नही जाता है अत आप शीघ्र आकर मिलो । देखो, मै विचार रूपी गगा के प्रवाह मे वही जा रही हू ॥३॥

प्रिया प्रलाप   १५   राग—तोड़ी (टोड़ी)

परम नरम मति ग्रौर न भावै ।
मोहन गुन रोहन गति सोहन, मेरी वेर ग्रैसे निठुर लखावै ॥
॥ परम० ॥ १ ॥

चेतन गात मनात न एते, मूल वशात जगात बढावै।
कोऊ न दूती दलाल बसीठी, पारखी पेम खरीद बणावै॥
॥ परम० ॥ २ ॥
जाँघि उघारि अपनी कहो एती, विरह जार निसि मोहि सतावै।
एती सुन 'आनन्दघन' नावत, और कहा कोऊ डूड बजावै॥
॥ परम० ॥ ३ ॥

पाठान्तर—और = अउर (अ)। भावै = आवै (इ)। वेर = वैरन (इ), विरयाँ (उ)। जगात = लगान (उ)। पेम = प्रेम (इ, उ)। खरीद = खरादि (आ), खरीदि (अ)। जाघ उघार अपनी कही एती = जाँघ उघारि प्रणत कहै ऐती (उ), जाघ उघार आपनी कहो एती (इ)। डूड = डूडि (इ, उ)।

शब्दार्थ—और = अन्य, माया ममता आदि। गुन रोहन = गुणो मे पर्वत के समान। गति = चाल। सोहन = शोभायमान, सुन्दर। वेर = समय, बार, दफा, मरतबा। लखावै = देखने मे आता है। गात = गायन कर। मूल वशात = मूल वस्तु से जगात—महसूल (कर, टैक्स) बढा लेता है। बसीठी = सन्देश वाहक। विरह जार = वियोग की ज्वाला। नावत = नहीं आता है। डूड = डोडी ढोल।

अर्थ—हे गुणधाम! सुन्दर गति वाले मनमोहन चेतन! माया, ममता, विभाव, धन, वैभव, कुटुम्ब परिवार आदि सासारिक भोगो का प्रसग जब उपस्थित होता है तब तो अत्यन्त नम्रता से उन सब मे रस लेने लगते हो—रच-पच जाते हो और मेरी बार—सम, दम, सन्तोप, समता आदि के समय आप ऐसे निष्ठुर बन जाते हो कि मेरे से आपका कोई सम्बन्ध ही नही है॥१॥

समुति श्रद्धा से कहती है—हे सखि! मै चेतन देव को अत्यन्त मधुर शब्दो मे विनती करती हू, गा-गा कर प्रसन्न करने की चेष्टा करती हू कि आप मूल वस्तु से हासिल (टैक्स) क्यो बढाते हो।

कोई ऐमा दूत नही है, न कोई ऐसा दलाल है, न कोई ऐमा सन्देश वाहक है जो उन्हे समझा कर परीक्षा पूर्वक प्रेम का सौदा वना देवे ॥२॥

जघा उघाड कर, लज्जा त्याग कर, वेपर्दा होकर अपनी कथा इसलिये कह रही हू कि मुझे आत्म-विरह की ज्वाला रातो सताती रहती है। इतना सुनकर, समझ कर भी आनन्ददायक, स्वरूपानन्द के स्वामी (चेतन) मेरे पास नही आवें तो क्या डोडी पिटाऊँ ? ॥३॥

विरह दशा १६ राग–तोड़ी (टोड़ी)

पिया विरण निस दिन झूरूँ खरीरी।
लहुडी वडी की कानि मिटाई, द्वार ते आँखै कब न टरी री॥
॥ पिया० ॥ १ ॥

पट भूषरण तन भौकन उठैं, भावै न चोकी जराव जरी री।
सिव कमला आली सुख न उपावत, कौन गिनत नारी अमरी री॥
॥ पिया० ॥ २ ॥

सास विसास उसास न राखै, नरणद निगोरी भोरै लरी री।
और तवीव न तपति वुझावै, 'आनन्दघन' पीयूष झरी री॥
॥ पिया० ॥ ३ ॥

पाठान्तर—पिया = प्रिय (अ)। लहुडी = लहुरी (इ)। द्वार = द्वारि कब न = कवहु न (उ)। उठैं = उठई (अ), औढै (इ), उढइ (उ)। भावै = भावइ (आ)। सुख न उपावत = सुभ उपावत (अ)। भोरै = भोर (इ)। पीयूप = पीऊप (इ)।

शब्दार्थ—भू रू = अत्यन्त सन्तप्त। लहुडी = छोटी। कानि = मर्यादा। टरी = हटना, टलना। पट = वस्त्र। भूषण = गहने, आभूषण, जेवर। भौकन = भभका। भावै न = अच्छी नही लगती। जरी = जडी हुई। सिव कमला = मोक्ष लक्ष्मी। उपावत = पैदा करती है। अमरी = देवागना, अप्सरा, सुरवाला। विसास = विश्वास। उसास = श्वासोश्वास जितना। निगोरी = निगोडी, दुष्ट। भोर = सवेरे। तवीब = हकीम, वैद्य। तपति = दाह, जलन। पीयूष = अमृत। झरी = झडी, वर्षा।

अर्थ—सुमति कह रही है—प्राण प्यारे चेतन के बिना दिन-रात मै सतप्त रहती हू। छोटी बडी सबकी मर्यादा त्याग कर मेरी आखे द्वार से कभी हटती ही नही। प्रीतम की (चेतन की) प्रतीक्षा मे द्वार की ओर टकटकी लगाये रहती हू। अपने स्वामी का इन्तजार कर रही हू। कव मेरे स्वामी मेरे घर आवे ॥१॥

(इस वियोगावस्था मे) वस्त्र आभूषणो और शरीर से भभका उठता है। बहुमूल्य जडाऊ चौकी भी अच्छी नही लगती है। चेतना कहती है कि हे सखि श्रद्धा! मोक्ष लक्ष्मी से भी मुझे सुख नही है। जब मोक्ष लक्ष्मी से ही मुझे सुख नही हो सका तो स्वर्ग की देवागनाये तो किस गिनती मे है। उसकी इच्छा कौन करेगा? चेतना कहती है कि मुझे न स्वर्ग चाहिये, न मोक्ष सुख चाहिये, मुझे तो अपने स्वामी शुद्धात्मा चेतन्य देव से मिलना है ॥२॥

सासू एक क्षण का भी विश्वास नही करती है और निगोडी ननद सवेरे से ही लडना आरम्भ कर देती है। अर्थात् ज्ञानी गुरुजन कहते है कि हे सुमते! आयु का एक पल का भी विश्वास नही है। तू पूर्ण प्रयत्न कर चेतन से मिल क्यो नही लेती? बरावर वाली भी प्रभात मे यही स्मरण कराती है कि प्रत्येक प्रभात के सग जीवन

का एक दिन कम होता है। इस दुर्लभ मनुष्य भव मे ही तू नही मिल मकी तो फिर चेतन से कहा मिलाप होगा। अतिशय आनन्द-मय मेरे स्वामी चेतन देव के मिलने से ही मेरे तन की तपत दूर हो सकेगी क्योकि मेरे तन का ताप तो उनके मिलाप रूप अमृत झरणे (वर्षा) के अतिरिक्त किसी भी हकीम-वैद्य की औषधि से जाने वाला नही है ॥४॥

प्रिया प्रलाप, ललकार १७ राग-तोड़ी (टोड़ी)

ठगोरी, भगोरी, लगोरी, जगोरी।

ममता माया आतम लै मति, अनुभव मेरी ओर दगोरी ॥ १ ॥

भ्रात न मात न तात न गात न, जात न बात न लागत गौरी।

मेरे सब दिन दरसन परसन, तान सुधारस पान पगोरी ॥ २ ॥

प्राननाथ बिछुरे की वेदन, पार न पावुँ पावुँ थगोरी।

'आनन्दघन' प्रभु दरसन औघट, घाट उतारन नाव मगौरी ॥ ३ ॥

पाठान्तर—गात न जात न = जात न गात न (इ, उ)। मेरे = मेरइ (अ)। तान = तात (इ)। पार न पावु पावु = पांउ न पावु न पावु (अ, इ)। पार न पाऊ अथाग (वि)। मगोरी = न गोरी (अ), मरोरी (उ)।

शब्दार्थ—ठगोरी = ठगने वाली। भगोरी = भाग जावो। लगोरी = पीछे लगी हुई। जगोरी – जागृत हो। ओर = तरफ, पक्ष। दगोरी = दगा, धोखा। जात = सजातीय। गात = शरीर, सगोत्रिय। परसण = स्पर्श, चरण छूना, वदना, नमस्कार। तान = मधुर स्वर। पगोरी = मस्त, तन्मय रहना। थगोरी = शिथिल, थकना। औघट = विषम, ऊबड़-खाबड़। मगोरी – मँगाती हूँ।

अर्थ—आत्मा के पीछे अनादि काल से लगे हुये माया, ममता, विभाव रूप परिणामो! हे धोखा देने वालो! अब भाग जावो, दूर

हटो। हे ठगो! तुम्हारी शिक्षा से अब तक यह चेतन (मेरे स्वामी) मेरे (सुमति के) और अनुभव के सग दगा—धोखा करते आये है किन्तु अब मैने तुम्हारे सब प्रपचो को जान लिया है। अब तुम्हारी दाल यहा नही गलेगी, इसलिये तुम सब यहा से चलते बनो ॥१॥

भाई, मा-बाप, पुत्र तथा अपने शरीर की भी बात अच्छी नही लगती है। अब तो निशि-दिन चेतन पति के दर्शन और उसके स्पर्श की धुन लग रही है। मुझे तो उसी अनुभव—अमृत रस के पान मे (पीने मे) मग्न रहना है ॥२॥

प्रियतम चेतन के वियोग की वेदना का कोई पार नही है। वह वेदना थका देने वाली है। योगीराज कहते है कि हे आनन्दघन प्रभु! आपकी प्राप्ति का मार्ग बडा विषम है, इसलिए पार उतरने के लिये ध्यान रूप नौका मागती हू। अर्थात् सतत नाम स्मरण की योग्यता प्राप्त हो, जिससे गुण स्मरण सदैव बना रहे ॥३॥

प्रिया प्रलाप–विरह वेदना १८ राग–मालवी गौडी (काफी)

वारी हुं बोलडे मीठडे।
तुझ बाजू मुझ ना सरै, सुरिजन, लागत और अनीठडे। वा०॥१॥

मेरे जीय कु कल न परत है, बिन तेरे मुख दीठडे।
पेम पीयाला पीवत पीवत, लालन सब दिन नीठडे॥वा०॥२॥

पूछूं कौन कहां घु ढूंढू, किसकू भेजूं चीठडे।
'आनन्दघन' प्रभु सेजडी पावु, भागे आन वसीठडे ॥वा०॥३॥❀

पाठान्तर—तुझ वाजू मुझ ना सरै = तुझ वाजू मुझ ना सरइ (अ), तुझ वोजे नहि वीसरै (इ), तुझ वातु मुझ ना सरे (उ I), तुझ वोले नहि वीसरे रे (उ II), तुअ विन मज नहि सरे रे (व)। मेरे जीय कु कल = मेरे कु जीय जक (उ I), मेरे मन कु जक (व), मेर मनवा जक (वि)। दीठडे = मीठडे (आ)। 'पीवत' आ प्रति मे एक ही वार। 'लालन' उ II मे यह शब्द नही है। कहां घु = कहा लू (इ, उII), कही (उ I)। पावु = पायो (उ II), पयै (इ)। भागे = भागइ (आ), भागे (उ I)।

शब्दार्थ वोलडे = वोल, वचन। मीठडे = मीठे। वाजू = प्रत्येक कार्य मे सहायक, वाहु, भुजा। सरै = पार पाना, जिसके विना कार्य न चले। सुरिजन = साधु आचार्य, सम्बन्धी। अनीठडे = अनिच्छित, खराव, अनिष्ट। कल = चैन, आराम। दीठडे = देखें। नीठडे = कठिनाई से, मुश्किल से। कहां घु = कहा तक। चीठडे = पत्र, चिट्ठी। सेजडी = शय्या। आन = आने वाले, अन्य। वसीठडे = दूत।

अर्थ—सुमति कहती है—हे मिष्ठ भाषी ! मैं तेरे पर व तेरे मीठे वचनो पर वलिहारी हू। हे ज्ञानघन ! तू ज्ञान स्वरूप है, इस लिये तेरा प्रत्येक वचन अत्यन्त मीठा होता है। तेरा यथार्थ स्वरूप जानने के पश्चात्, उसे पूर्णतया अनावरण किये विना चैन नही पडता। हे स्वजन ! तेरी सहायता के विना मेरा कार्य नही चल सकता। तेरे वीतराग भाव के अतिरिक्त अन्य रागादि भाव मुझे अनिष्टकारक लगते है ॥१॥

❀'उ' प्रति मे यह पद दो स्थानो पर लिखा हुआ है। प्रथम पत्र पाच पर २६वा पद है, फिर पत्र १५ पर ७६वा पद है। यहा दोनों ही पदो के पाठ दिये गये हैं। २६वां पद (उ I), और ७६वा पद (उ II) है।

हे आत्म स्वामिन् ! तेरा मुख देखे विना मन को चैन नही पडता है। तेरे प्रेम का प्याला पी-पीकर ही वडी कठिनाई से विरह वे सब दिन निकलते है, अर्थात् तेरे मिलन की आशा ही आशा मे विरह के दिन बिताये है ॥२॥

सुमति फिर कहती है—वहुतो से पूछ-पूछ कर थक चुकी हू, अब कहा तक पूछती (प्रश्न करती) रहू, किस ठिकाने (स्थान पर) तलाश करू , किसके द्वारा पत्र भेजकर खोज करू ? हे आनन्द के धन स्वामी आत्म प्रभु ! आपकी असख्यात प्रदेश रूप शय्या प्राप्त हो जावे तो अन्य दूतो की आवश्यकता ही नही रहेगी ॥३॥

विशेष—योगीराज ने इस पद मे वहुत बडे रहस्य का उद्-घाटन कर दिया है। उनका कहना है कि शुद्धात्म स्वरूप प्रकट करने के लिए शुद्ध स्वरूप के प्रति अथवा जिसने शुद्ध स्वरूप प्रकट कर लिया है उससे अत्यन्त प्रेम (लगाव) होना चाहिए। इस उत्कृष्ट प्रेम द्वारा ही निज स्वरूप प्रकट होता है। जैन परिभाषा मे इसे प्रशस्त राग कहते है। इस मार्ग पर चलने वाले विरले ही हुए है। जैन साधु सस्था के नियम बहुत कठोर है। वे पतन की ओर जाते हुए व्यक्ति को वचा लेते है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने इसीलिए आनन्दघनजी की साधना को कवीर प्रभृति सहजवादी मरमियो की साधना कहा है। वे नवम्वर सन् १९३८ की वीणा मासिक के पृष्ठ १० मे आनन्दघन के अनेक भाव कवीर और उनके अनुरागी दादु रज्जव प्रभृति के भावो से मिलते है। प्रियतम कह कर प्रेम के जोर से उन पर अपना अधिकार वताना, यति और सन्यासी की वात तो नही है। यह सव मरमी सन्तो की वात है

इसी लेख मे वे फिर लिखते है—"३८वे पद मे लोक-लाज छोड कर वे नटनागर के साथ मिलना चाहते है। यह भाव भी मरमिया भक्तो का है। ४६वे पद मे जो वीर रस की खड्ग-हस्त साधना का रूपक है वह कवीर, दादू आदि के सुरातम (Heroic) अङ्ग के पदो की साधना के साथ खूव मिलता जुलता है। ये वाते अहिंसा परायण जैन साधुओ की नही है," इत्यादि वहुत से विचार उन्होने व्यक्त किये है।

इस मार्ग का सर्वप्रथम दर्शन गणधर गौतम के चरित्र से होता है। उन्हे सहजात्म-स्वरूप परम गुरु भगवान् महावीर के शरीर पर अत्यन्त मोह था। भगवान् उन्हे वार वार चेतावनी देते थे, देह के प्रेम से विलग रहने का उपदेश करते थे। गौतम उस प्रम के आगे मुक्ति की भी अवगणना करते थे। सारे जैन वाङ्मय मे यह प्रसग अद्भुत व अद्वितीय है। भागवतकार ने गोपी प्रेम को खूव विस्तृत किया पर जैन वाङ्मय मे यह गौतम स्वामी के अद्भुत प्रेम की चेष्टा दिखाई नही पडती। जैन साधु सस्था के नियम अत्यन्त कठोर है। मनुष्य का पतन होते देर नही लगती, इसी दृष्टि को मुख्य रख कर सव नियम वनाये जाने की कल्पना वहुत से करते हैं। जैन साधु सस्था मे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अधिक स्थान नही मिला है। इसी कारण सन्त परम्परा अधिक पनप न सकी। आनन्दघन जी, चिदानन्द जी आदि सन्त साधु सस्था से प्राय दूर ही रहे। जैनियो मे अनेक सम्प्रदाय हो चुके। सन्त-मानस वाडे वन्दी के घेरे मे न रहकर लोक कल्याण ही की भावना भाते हैं। इसलिए साम्प्रदायिक लोगो का सहयोग उन्हे

नही मिलता या कम मिलता है। आजकल जैन जनता या तो बाह्य क्रिया काण्डो मे लगी हुई है या कुछ व्यक्ति शुष्क ज्ञान मे लीन है। महान् तत्त्ववेत्ता श्री देवचन्द्र जी लिखते है —

"द्रव्य क्रिया रुचि जीव डारे, भाव धर्म रुचि हीन।
उपदेशक पण तेहवारे, स्यूँ करे जीव नवीन ॥"

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम लक्षणा भक्ति जैनियो मे विरल हो गई है। योगीराज आनन्दघन जी ने सब पदो मे उसी प्रेम लक्षणा भक्ति का गुणगान किया है।

प्रिया प्रलाप (विरह व्याकुलता) १६ राग—केदारो

भोरे लोगा झूरू हु तुम भल हासा।
सलुणे साहब बिन कैसा घर बासा ॥भो०। १॥
सेज सुहाली चादणी राता, फूलडी बाडी सीतल वाता।
सयल सहेली करै सुख हाता, मेरा मन ताता मुआ विरहा माता॥
॥ भो० ॥ २॥
फिरि फिरि जोवो धरणी अगासा, तेरा छिपना प्यारे लोक तमासा।
उचले तन तइ लोहू मासा, साइडा न आवे, धण छोडी निसासा॥
॥ भो०। ३॥
विरह कु भावै सो मुझ कीया, खबर न पावू धिग मेरा जीया।
हदीया देवू बतावै कोइ पीया, आवै 'आनन्दघन' करू घर दीया॥

पाठान्तर—भोरे लोगा = भोरि लगा (उ)। तुम = तुम्ह (आ)। सलूणे = सलुने (अ, इ)। साजन = साजण (आ)। बिन = बिण (आ)। कैसा = केहा (इ)। सेज = सेझ (इ)। सुहाली = सु हाली (इ, उ)। फूलडी= फूलनी (अ, इ), फूलरे (उ)। सयल = सयली (आ)। सुखहाता = सुहाता इ), सुखहीता (उ)। ताता = ताता (आ)। मुआ = मुया (उ)। जोवो = जोवु (इ, उ)। तेरा = तेरे (अ)। छिपना = छिपणी (इ)। उचले = नवले

(इ, उ)। तड = ने (अ), ते (इ उ)। लोहू = लोही न (इ, उ)। अावै = आवो (अ)। छोडी = तजी (अ)। निसासा = निरासा (अ)।

नोट - 'उ' प्रति मे तीसरे पद का अन्तिम चरण इस प्रकार है— (i) साई नावे धण छोडि निरासा, (ii) साईंटा न आवै घरणी छोटी निरासा। विरह = विरहा (अ)। खबर = खबरि (आ)। पावू = पावो (आ), पावो (अ) पावाँ (इ)। मेरा = मोरा (उ)। हदीया = दहीवा (इ), देवो (आ)। नोट—'उ' प्रति मे 'घर' शब्द नही है।

शब्दार्थ—झूरू = दुख से व्याकुल होना, सूखना। हासा = हँसो। घरवासा = गृह वास, गृहस्थी। सुहाली = सुहावनी। फूलडी = फूलो की। वाडी = बगीचा, बाग। सयल = सब। सुख हाता = सुख हाथ मे करना। तता = तप्त गरम। मुआ = मुर्दा, एक गाली। माता = मतवाला, मोटा। जोवो = देखती हूँ। धरणी = धरती। उचले = उबलते हैं, औटते हैं। साइटा = स्वामी। धण = स्त्री। धिग = धिक्कार है। जीया = जी, मन, हृदय। हृदया देवू = हृदय से लगाऊ, छाती से चिपकाऊ। घर दीया = घर मे दीपक जलाऊ, खुशी मनाऊ।

अर्थ-शुद्ध चेतन स्वरूप आत्मा के विरह मे सुमति कहती है हे भोले लोगो! स्वजन स्नेहीओ! तुम भले ही मेरी हसी (मजाक) करो मैं तो दुख से व्याकुल हू। सलोने साजन (चेतन) बिना घर मे रहना किस काम का? मेरी गृहस्थी किस काम की? बिना स्वामी के भी गृहस्थी होती है क्या? ॥१॥

उद्दीपन साधन सब मौजूद है—चादनी रात है, पुष्प वाटिका है, मद-मद शीतल पवन बह रही है, सुन्दर सुहावनी शय्या बिछी हुई है, सब सखियें मन बहलाव (मनोरजन) तथा स्वस्थ करने का प्रयास कर रही हैं। चेतनजी के आने के लिए सब आकर्षक सामग्री है। लेकिन उनके न आने से उनके विरह मे मतवाला मेरा मन तप्त हो रहा है, जल रहा है ॥२॥

वारवार पृथ्वी और आकाश को देख रही हू। हे प्रिय स्वामी ! तेरा नेत्रो से ओझल रहना मेरे लिए दुखदाई हो गया है तथा लोक मे मै हँसी मजाक का कारण वन गई हू। स्वामी के न आने से लोग यह कहकर हँसी उडाते हैं कि इस स्त्री को पति ने छोड दी है, इससे शरीर मे रक्त, मास उत्रलता है और निश्वासा उठती है ॥३॥

विरह को जो अच्छा लागा, वैसी दशा उसने मेरी करदी। मेरी इस अवस्था की आपको खबर भी न पहुँचे तो मेरे जीवन को धिक्कार है। मेरे प्रियतम का कोई पता ठिकाना बता देवे तो मै उसे छाती से लगा लूँ। अत्यन्त आनन्द के समूह रूप मेरे स्वामी (चेतन) आवे ता घर मे दीपावली जगाऊँ ॥४॥

प्रिया प्रलाप–विरह व्याकुलता २० राग–केदारो

मेरे माझी मजीठी सुण इक बाता, मीठडे लालन विन न रहु रलियाता ॥ मेरे० ॥ १ ॥

रगत चूनडी दुलडी चीडा, काथ सुपारीरु पान का बीडा।
माग सिंदूर सदल करै पीडा, तन कठडा कोरे विरहा कीडा ॥मेरे०॥ ॥२॥

जहा तहा ढू ढू ढोलन मीता, पण भोगी भवर विन सब जग रीता।
रयण बिहाणी दीहाडा बीता, अजहु न आये मुझे छेहा दीता ॥मेरे०॥ ॥ ३ ॥

नवरगी फू दे भमरली खाटा, चुन चुन कलिया बिछावो वाटा।
रग रगोली पहिनु गी नाठा, आवै 'आनन्द घन' रहै घर घाटा ॥मेर०॥ ॥ ४ ॥

पाठान्तर– मेरे = मारी (इ), मेरो (उ)। माझी मजीठी = माझीठी (आ) माझ मजैठी (इ), माझ मझीती (उ)। इक वाता = ए वाता (अ), इक वात (इ), एक वाता (उ)। रलियाता = रलियात (इ)। रगत = रगित (आ)। चीडा = वीडा (अ)। काय = काथा (उ)। सुपारी = सोपारी (इ उ)। रु =

अरु (इ उ) । माग = माग (आ), मागि (अ इ)। सदल = सदल (अ इ)। करै = करइ (आ) । विरहा = विरह का (उ) । जहाँ तहाँ = जिहाँ तिहाँ (उ) । ढू ढू = ढु ढु (आ), ढू ढ ढढोलन (अ), ढू ढु ढोलन (उ)। पण = पाणि(आ), पिण (इ,उ) । भवर = भमर (इ उ) । जग रीता = जु ग वरीता (आ) । रयण विहाणी = रयनी विहानी (अ इ) । दिहाडा = दिहाटी (उ) । आये = आवइ (आ), आए (अ), आवै (इ) । मुझ = मुहि (इ) । नवरगी = नवरग (इ उ) फू दे = फू दे(आ) । भमरली = भमरीली (आ) । खाटा = खाट (इ) । विछावो = विछावु (इ), विछाउ (उ) । वाटा = वाट (इ), वाटा (उ) । पहिनु गी = पहिनु चु गी (अ), हूँ पहिरु गी (उ) । नाठा = वाटा (अ), वाट - (इ) नाटा (आ) । आवै = आवइ (आ), आवे (अ) । रहै = रहइ (आ), रहे (उ) । घाटा = घाट (इ), थाट (उ।) खाटा (उ।।) ।

शब्दार्थ– माझी = केवट, नाव खेने वाला, मध्यस्थ । मजीठी = मजीठ के समान पक्का लाल रग, परिपक्व । रलियाता = प्रसन्नता पूर्वक । चीडा = रगत विशेष । काथ = कत्था । सदल = चदन । काठडा = काष्ठ, कठहरा । कोरे = कुरेदत है, छेदता है । पण = पर, परन्तु । भवर = पौत्र का प्यार का नाम यहाँ पति के अर्थ मे प्रयुक्त है । रयण = रैन, रात्री । रीता = शून्य, खाली । विहाणी = बीत गई, समाप्त हो गई । दिहाडा = दिन । बीता = व्यतीत हो गये, समाप्त हो गये । छेहा = वियोग । दीना = देने वाले । नवरगी = नौ रग की । फू दे = फू दे लगी हुई । भमरली = खाट की बनावट विशेष । वाटा = आगन, मार्ग । नाठा = कठिनता मे प्राप्त । घर घाटा = ठोर ठिकाना ।

अर्थ—समता अनुभव से कहती है—मेरी जीवन नौका को खेने वाले, पक्के सुन्दर लाल वर्ण वाले अनुभव मित्र ! यह बात अच्छी तरह से सुनले, मै अत्यन्त प्रिय प्रीतम (चेतन) के बिना प्रसन्न नही रह सकती ॥ १ ॥

यह चूनडी व दुलटी रगत के वस्त्र, कत्था, सुपारी और पान का बीटा, माग की सिंदूर और चन्दन का लेप—ये सब मुझे पीडा (दुख), देते है क्योकि शरीर रूपी काठ को विरह रूपी कीडा कुरेदता है । (चेतन के वियोग मे सब दुखदाई है) ॥ २ ॥

मित्र की खोज मे इधर उधर जाती हू किंतु आनन्द भोगने वाले स्वामी के बिना सब ससार सूना लगता है। अनेक रात्रियें बीत गई और दिन पर दिन बीत गये किन्तु मुझे छेह देने वाले–वियोग देने वाले आत्म-भरतार अभी नही आये है। (अभी तक चेतन से मेरा मिलाप नही हो रहा है) ।। ३ ।।

नोरगी फू दे लगी हुई भरमली खाट बिछी हुई है। फूल की कलिये चुन चुन कर आगन व मार्ग मे बिछा रखी है। यदि मेरे अनन्दघन स्वामी आ जावे और अपने स्थान पर रहे तो मै रग बिरगे वस्त्र पहिरू गी अर्थात आनन्द मे रहूगी ।। ४ ।।

विशेष—इस पद मे योगीराज आनन्दघन जी ने यह प्रतिपादन किया है कि जीव बहिरात्म भाव व अन्तरात्म भाव को समझ कर अपनी कषाय परिणती से सावधान रहते हुए कभी कभी अन्तरात्म भाव भावे तो वह सुधर सकता है। यह स्थिति भी कोई निराशाजनक नही है।

प्रिया प्रलाप, सखि के प्रति — २१ — राग–गौडी

देखौ आली नटनागर के साग।
औरही और रग खेलत ताते फीकी लागत माग ।।दे०।। १।।
उरहानौ कहा दीजै बहुत करि, जीवत है इहि ढाग।
मोहि और बिच अन्तर एतो, जेतो रूपै राग ।।दे०।। ।२।।
तन सुधि खोइ घूमत मन ऐसे, मानु कछु खाई भाग।
ऐते पर "आनन्दघन" नावत, कहा और दीजै बाग ।।दे०।।३।।

पाठान्तर—के माग = को मग (इ), को रग (उ)। और ही = अे रही (आ) ओरही ओर ही (इ), ओरही ओर (उ)। 'इ' प्रति मे रग शब्द नही है। ताते = ताते इ (आ), तात (उ)। माग = अग (इ), साग (उ)। उरहानौ = ओरहनो (इ), उरहानो (उ)। जीवत = जीजत (आ), जीते (अ), जीयत (उ)। ढाग = ढग (इ)। मोहि = मोरे (इ)। बिच = बिचि (आ) चित (अ)।

रुपै – रुपइ (उ) राग = रग (आ,इ, उ)। सुधि = सुध (इ, उ)। खोइ = खोय (इ) घूमत – घुमत (आ)। अैसे = अइसै (अ)। मानु = मानुक (उ)। नावत = राचत (उ)। कहा ' वाग = कहा और दीजइ वाग (आ), और कहा कोउ दीजै वाग (इ), कहो ओर दीजै वाग (उ)।

शब्दार्थ—नट = गा वजाकर और नाना प्रकार के भेप वनाकर खेल तमाशा दिखाने वाला। नागर = नागरिक, शहरी, चतुर। साग = स्वाँग, वेशभूपा, भेप। माग = इच्छा, स्त्री के मस्तक मे केशो के बीच का स्थान। उरहानो = उपालम्भ। ढाग = ढग। रुपै = चादी। राग = कलई, रागा। वाँग = पुकार।

अर्थ—सुमति अपनी सखि (श्रद्धा) से कहती है–हे सखि! मेरे स्वामी चेतन की नागरिक वेशभूपा तो देखो, उस चतुर नट ने नगर निवासी का भेप वनाकर और ही और रग (विभाव दशा) मे वह रम रहा है, अपने स्वरूप की ओर नही देखता, इसलिये इसकी (चेतन की) सब माँगे-इच्छाये फीकी लगती है अर्थात खराब है ॥१॥

यह मेरा स्वामी सवका मालिक होकर भी इच्छाओ का दास वना हुआ है। इसको वार-वार कहा तक उपालम्भ देती रहू—कहा तक मावधान–सचेत करती रहू। यह इसी भाँति जीवन यापन करता है। इसने तो इच्छाओ के ढेर लगा रखे है, जो कैसे पूर्ण होगे? इसीलिये तो मै कहती हू कि मेरे और अन्य (माया) के मध्य इतना अन्तर है जितना चादी और रागा मे है ॥२॥

मुझको किसी सासारिक भोग की आवश्यकता नही, मै तो चेतन को कामना रहित निज स्थान की ओर लेजाने वाली हू किंतु यह (चेतन) माया के चक्कर मे शरीर की सुध-बुध खोकर घूमता है–

मस्त होकर फिरता है मानो भाग पीकर मतवाला (पागल) बन गया हो। (जीवात्मा ने अनादि काल से मोह रूपी भाग पी रखी है जिससे चारो ओर ससार मे भटक रहा है) इतना समझाने पर भी यह नटनागर (चेतन) अपने स्वभाव मे नही आता है तो फिर इसे जागृत करने के लिए किस प्रकार से बाग दी जावे —किस प्रकार पुरजोर सचेत किया जावे।

प्रिया प्रलाप, मिलनोत्कठा ॥ २२ ॥ राग–सोरठ

मौने मिलावोरे कोइ कचन वरणो नाह।
अ जन रेख न आखडी भावै, मजन सिर पडो दाह ॥मौ०॥१॥
कोरण सयरण जाणे पर मननी वेदन विरह अथाह।
थर थर देहडी धूजै म्हारी, जिम वानर भरमाह ॥मौ०॥२॥
कोइ देह न गेह न नेह न रेह न, भावै न दुहड़ा गाह।
'आनन्दघन' वाल्हा बाहडी साहवा निस दिन धरू उमाह ॥मौ०॥३॥

पाठान्तर—मौने = मोनइ (आ), मुने (उ)। 'इ', 'उ', प्रतियो मे 'मिलाओ' के आगे 'रे' नही है। अन्तिम शब्द नाह के आगे 'रे' है। कोइ = कोई (अ), 'इ', 'उ' प्रतियो मे इस स्थान पर 'कोई' शब्द नही है। बल्कि 'मौने' शब्द के आगे 'कोय' शब्द है। रेख = रेखा (इ,उ)। 'न' शब्द 'अ' प्रति मे नही है। आँखडी = आख न (इ), आखडी न (उ)। 'भावै' शब्द के आगे 'आ' प्रति मे 'मोनइ' और है। दाह = थाह (अ), दाह रे (इ), वाहरे। सयरण=सजन (अ), सैन (इ), सेरण (उ)। जाणे = जाणइ (आ)। थरथर' " म्हारी = थरथर थरथर देहडी धूजइ माहरी (आ)। थरथर धूजै देहडी मारी। (इ) भरमाह = भरमाह रे(इ, उ)। कोइ रेह न = देह न नेह न गेह न रेह न(इ), कोइ देह न गेह न, रेह न नेह न (अ उ)। भावै = भावइ (आ)। दुहडा गाह = दूहा गाह (इ), ही यह माहि (उ)। वाल्हा=वाला (अ), वालो (इ), वाहलो

(उ)। बाहडी = बाहिडी (अ), बाम्डी (इ, उ), साहवा = साहिवा (ज)। झालै (ट)। उमाह = उच्छाह (अ), उछाह (ट), उमाहि रे (उ)।

शब्दार्थ—कञ्चन = सोना, स्वर्ण। वरणो = रग वाला। मजन = स्नान। दाह = जलन। भर माह = माघ मास मे, खूब ठड मे। गेह = घर। दूहडा = दोहा छद। वाल्हा = प्रिय। बाहडी = हाथ। साहवा = पकडना, सम्भालना।

अर्थ—अपने प्यारे (चेतन) के विरह से व्याकुल सुमति कहती है कि कुन्दन (सबसे बढिया स्वर्ण का रूप) के समान सुन्दर वर्ण वाले मेरे स्वामी से मुझे कोई मिला देवे तो मै उसका अत्यन्त आभार मानूगी। स्वामी (चेतन) के विरह मे आखो मे काजल की रेखा नही सुहाती है। (काजल) आखो मे आसुओ से ठहरना ही नही है। स्नान के सिर तो आग लगे, अर्थात् स्नान जलन पैदा करता है ॥१॥

विरह की पीडा (दुख) अगाध होती है। कोई सज्जन ही (भुक्त भोगी) दूसरे के दिल की व्यथा को समझ सकता है। जिस प्रकार माघ मास के शीत मे बन्दर कापते है उसी प्रकार मै भी कापती हू ॥२॥

मुझे अपनी देह की, घर की, स्नेही जनो की कुछ भी सुध-बुध नही है और न मुझे दोहे और गाथा आदि काव्य ही अच्छे लगते है। अति आनन्द के समूह प्राण प्रिय प्रभु मेरा हाथ सम्भाल ले—पकड ले तो मेरी सब व्यथा जाती रहे और उत्साह व आनन्दपूर्वक मेरे रात दिन व्यतीत होवे और मन मे अत्यन्त उल्लास बना रहे ॥३॥

मिलन अभिलाषा **२३** **राग–सोरठ**

मोने माहरा माधविया नै मिलवानो कोड ॥
मोने माहरा नाहलिया नै मिलवानो कोड ॥
हूँ राखु माडी कोई बीजो मोने विलगो झोड ॥ मो० ॥ १ ॥
मोहनिया नाहलिया पाखै माहरे, जग सवि उजड जोड ।
मीठा बोला मनगमता नाहज विण, तन मन थाऔ चोड ॥
मो० ॥२॥
काई ढौलियो खाट पछेडी तुलाई, भावै न रेसम सौड ।
अवर सबै माहरे भला भलेरा, माहरे 'आनंदघन' सिर मोड ॥
मो० ॥ ३ ॥

पाठान्तर—मोने = माहरा नाहरा (उ)। माधविया = नाहलिया (अ उ)। 'उ' प्रति मे 'राखु' शब्द नही है। बीजो = बीज ओ (आ) बीजू (अ), 'उ' प्रति मे यह शब्द नही है। मोने = मोनई (आ), मौनो (इ), मुने (उ)। विलगो वलगो (आ), विलगै (इ)। नाहलीया = नाहली (अ)। माहरे = माहरइ (आ) मारे (इ)। नाहज=नाहजी (अ) नाहूजी (उ)। विणु=वीणु (अ,इ) विण=(इ), वणु (उ)। थाऔ=थाअ (इ), थाये (उ, व, वि)। ढोलियो=ढोलाओ (अ)। पछेडी = पसेडी)अ), पछेवडी (उ)। माहरै = माहरइ (आ), म्हारे (अ)। भला = भलारे (अ उ), 'इ' प्रति मे यह शब्द नही है। माहरे = म्हारे (अ), 'इ' प्रति मे यह शब्द नही है।

शब्दार्थ—नाहलियानै = नाथ से, स्वामी से। कोड = चाव, उत्साह। माडी = लिखकर, बनाकर। बीजो = दूसरा। विलगो = पृथक होना, अलग होना। झोड = झगडा। नाहज = स्वामी। पाखै = पास। उजड जोड = उजाड तुल्य, सूनमान समान। चोड = पीडा। ढोलियो = पलग। पछेडी = पछेवडी, ओढने का वस्त्र, पीछे का पर्दा। तलाई = नीचे बिछाने की गद्दी।

मोंड = ओढने की रुई भरी हुई मोटी रजाई। अवर = अन्य, और, दूसरा। भला भलेरा = भले ही भले हैं। सिरमोड = सिरमोर, सिर का मुकुट।

अर्थ—विरह अवस्था मे विरहणी को कुछ भी अच्छा नही लगता है। विरहणी सुमती कहती है—मुझे मेरे स्वामी से मिलने का बड़ा चाव है। 'उत्कट अभिलाषा है'। मैंने अपने द्वार पर लिख रखा है कि कोई भी दूसरा झमट डालने वाला मेरे से दूर रहे, अर्थात् आत्मस्वरूप सिवा मैं दूसरी बातो से अलग हूँ—अन्य सब बातें मुझे झंझट भरी लगती हैं। अत विभाव की बाते करने वाले मेरे से अलग रहें ॥१॥

मनमोहन पतिदेव के मेरे पास न होने पर सब ससार उजाड (सूनसान) जगल के समान लगता है। मिष्टभाषी मन भावन (चेतन) के बिना मेरे तन-मन दोनो को चोट लगती है—पीडा होती है ॥२॥

पलग, खाट, पछेवडी, बिछावनी (शय्या) तथा रेशम की मोड कुछ भी (उपभोग सामग्री) अच्छे नही लगते हैं। मेरे लिये सब ही वस्तुये, सब ही जीव सब ही मनुष्य भले ही भले हैं किन्तु आनदघन चेतन ही मेरे सिरमोर हैं अर्थात् सर्वोपरि है ॥३॥

प्रिया प्रलाप विरहवेदन २४ राग—कान्हरो

दरसन प्रान जीवन मोहि दीजें।
बिन दरसन मोहि कल न परत है, तलफि तलफि तन छीजें॥
दर० ॥१॥

कहा कहु कछु कहत न आवत, बिन सइया क्यु जीजें।
सोहु खाइ सखि काहु मनावो आपही आप पतीजे ॥दर०॥ २॥

धीर धीरानी सास जिठानी, यु ही सबै मिल खीजें।
"आनंदघन' बिन प्रान न रहे छिन, कोरि जतन जो कीजे ॥दर०॥

पाठान्तर—मोहि = मुहि (इ)। तल्फि = तलफ (इ उ)। जीजै = जीजइ (अ), कीजै (उ)। सोहु=मौहु (आ), सोहूँ (उ)। सौहु मनावो = सम खावो सखि जाय मनावो (इ), सोहु खाइ सखि काहि मनाऊ (अ), सोहूँ खाइ सखि काहू मनावे (इ)। पतीजै = पतीजइ (अ)। यु ही सबै = यु सबहि (इ), यु हि सब ही (उ)। मिल खीजै = मिलि खीजइ (अ)। रहै = रहइ (आ) कोरि = कोर (इ उ), कोडी (ब), कोड (वि)। जो कीजै = जो कीजइ (अ), कर लीजै (इ)।

शब्दार्थ—कल = चैन, आराम। सइया = पति, स्वामी। सोहु = सौगन्ध, शपथ। पतीजै = विश्वास करना। खीजै=क्रोध करना, झुञ्झलाना। छिन = क्षणभर। कोरि = कोटि, करोड।

अर्थ– हे जीवनधन ! मुझे शीघ्र दर्शन दीजिये। आपके दर्शन बिना (देखेविना) मुझे तनिक भी चैन नही पडता है। तडफ तडफ कर मेरा शरीर क्षीण होता जा रहा है ॥१॥

पति के विना स्त्री किस तरह जी सकती है, यह भेद मै किससे कहू। मै तो समभाव मे रहने वाली हू, मुझे कहने का ढग–बात बनाने की चतुराई भी नही है। हे सखि (श्रद्धा) अब मै सौगध खाकर किसे मनावु ! वे (मेरे स्वामी चेतन) मेरे पास कभी आते ही नहीं। पहिले अनेक बार सौगन्ध खाकर मना चुकी हू, बार बार कह चुकी कि आपके बिना मेरा जीवन दूभर (कठिन) है। पर मेरे कहने से उन्हे विश्वास ही नही होता, उन्हे तो स्वय अपने आप ही पर विश्वास होता दिखाई पडता है ॥२॥

समता की यह हालत देखकर मैत्री भावनारूपी सासु, वैराग्य-रूपी देवर, ऋजुता रूपी देवरानी और प्रमोद भावना रूपी जिठानी सब मिलकर समझाती है, समझाने का कुछ प्रभाव न होने पर कुछ नाराज (क्रोधित) भी होती है। इनका नाराज होना व्यर्थ है। ये

लोग चाहे करोडो उपाय करे मेरे प्राण तो स्वामीनाथ आनदघन के बिना अब नही रह सकते ॥३॥

विशेष—कवि ने यहाँ बहुत महत्वपूर्ण बात कही है। कवि की चेतना शक्ति आत्म-दर्शन के लिये अत्यन्त व्याकुल है। वह मैत्री प्रमोद आदि भावनाये भाते हैं अर्थात् भावनाओ मे लीन रहते है, नाना प्रकार की समस्याओ से शरीर को सुखा डाला है, ससार से विरक्त है। रात दिन अनेक उपाय करने पर भी चैतन्यदेव से साक्षात्कार नही होता है। तब कवि प्रतिज्ञा करते हैं चाहे प्राण रहे या न रहे मुझे निरजन देव का साक्षात्कार करना ही है।

कवि योगीराज ने इस पद मे इस महान तत्व को व्यक्त किया है—त्याग, वैराग्य, व मैत्री प्रमोद आदि भावनाये आत्म-दर्शन के साधन अवश्य है परन्तु इन्ही मे अटक जानेवाला आत्म साक्षात्कार नही कर सकता। श्रीमद राजचन्दजी ने इसी तत्व को इस प्रकार कहा है—

"वैराग्यादि सफल तो, जो सह आतम ज्ञान।
तेमज आतम ज्ञान नी, प्राप्ति तणा निदान॥ ६ ॥

त्याग विराग न चित्तमा, थाय न तेने ज्ञान।
अटके त्याग विरागमा तो भूले निज भान॥ ७ ॥

ज्या ज्या जे जे योग्य छै, तहा समझवु, नेह।
त्या त्या ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह॥८॥ (आत्मसिद्धि)

प्रिय प्रलाप विरह व्यथा २५ राग—कानडो

करेजा रेजा रेजा रेजा।
साजि सिगार बणाइ आभूषण, गई तब सूनी सेजा॥करे०॥१॥

विरह व्यथा कुछ अैसी व्यापत, मानु कोई मारत नेजा।
अंतक अंत कहालु लैगो, चाहै जीव तो लेजा ॥ करे० ॥ २ ॥
कोकिल काम चद्र चतादिक, दैन ममत है जेजा।
नावल नागर "आनदघन' प्यारे, आइ अमित सुख देजा ॥ करे०
॥ ३ ॥

पाठान्तर—रेजा शब्द 'आ' प्रति मे दो बार ही है। अन्य प्रतियो मे पाठ है-करे जारे जारे जारे जारे जा। वणाइ = वणाई (अ), वनाये (इ)। आभूषण = अभूषण (अ), भूषण (इ)। सेजा = सेज्या (इ) लैगो = लेखो (उ)। चाहे = जाहि (उ)। तो = तु (इ)। चूतादिक = आगदिक (उ) भूतादिक (उ॥)। दैन ' अैजा = वे तन मत है अैजा (इ), दैन मतन है ले गा (उ) प्यारे = प्यारो (उ)। आइ = आय (इ) आई (उ)।

शब्दार्थ—रेजा रेजा = टुकडे टुकडे। साजि = सज कर, धारण कर। सेजा = शय्या। नेजा = भाला। अतक = यमराज। चूतादिक = आम्रफलादि। अैजा = जो जो। नवल = नवीन, सुन्दर, युवा,। अमित = अपार।

अर्थ—समता सब शृगार कर और आभूषणो से सज कर (वाह्याडवर क्रिया रूप शृगार कर) चेतनराज के पास गई। उन्हे सम भाव रूप शय्या पर नही देखा और ममता के पास गया जानकर उसका कलेजा टुकडे टुकडे हो गया ॥१॥

इससे उसको (समता को) चेतनराज के विरह का दुख इस प्रकार हुआ मानो कोई भाला मार रहा हो। अपने स्वामी चेतन की अनुपस्थिति मे भी समता उन्हे उद्देश्य कर कहती है—हे स्वामी! मेरे तो आदि, मध्य और अत सब आप ही हो, इसलिये हे यमराज! मेरा कहाँ तक अन्त लोगे, भले ही तुम मेरे प्राण ले लो किन्तु मुझे दर्शन दो ॥२॥

तुम्हे सुख देने वाली कोयल की कूक, कामदेव, चन्द्रमा की चादनी आम्र मजरी तथा अन्य जो भी वस्तुये आपको आनदप्रद है

खाक = खाख (इ-उ)। महल=महिले (अ)। विराज=वराज (आ)। ह्वैजै=ह्वैजै (आ), रेजा हो (उ) (ज्ञानसार जी महाराज टव्वाकार)। ह्वैजै=हैजा (उ)। 'इ' प्रति मे अतिम पक्तिया नही है।

शब्दार्थ—हँसती=मजाक करती थी। विरानिया=अन्य स्त्रिये, सौते छीज्यो हो=क्षीण हो गया। प्राणपवन=प्राण वायु। भुअगनी=सर्पणी। कुमकुमा=गुलावजल आदि सुगधित जल से भरापात्र। अनल=अग्नि। विरहाग्नि =जुदाई की आग। चाचरि=चाचर नाम गायन गाने वाले।

अर्थ—(विरहावस्था मे होने वाली दशा का वर्णन) समता कहती है-हे श्रद्धे! चेतन पति बिना अपनी सुध बुध भूल गई हू। अपनी सार सभाल रखना भी भूल गई हू। पति वियोग से दुखित मै अपने दुख रूपी महल से अपने स्वामी को देखने के लिये दृष्टि लगाये हू परन्तु वे दिखाई नही देते है इसलिये झरोखे (बरामदे) मे जाकर देखती हू अर्थात् पति वियोग रूपी दुःख महल के झरोखे से टकटकी लगाये भूल रही हू ॥१॥

श्री ज्ञान सारजी महाराज ने इस पद पर टव्वा (टीका) लिखा है, उसके अनुसार अर्थ साराश मे इस प्रकार है—

सुमती अपनी सखी श्रद्धा से कहती है—'हे सखी' चेतनराम मेरे स्वामी अशुद्धोपयोगी आत्मा से मुझे मिलना उचित है या नही? इस धार्मिक विचार से मै रहित हो गई। यहा पर यह प्रश्न होता है कि जिसका नाम ही 'समता' है अथवा जो सुमति है वह अपने को कैसे भूल गई? जब वही भूल जाती है तो उसका नाम 'समता' युक्ति युक्त नही कहा जा सकता? इसका स्पष्टीकरण करते हुये वे कहते है—अशुद्धोपयोगी आत्मा के सयोग से मैं सुबुद्धि की कुबुद्धि हो गई। पति के विदेश गमन रूप वियोग दु ख के झरोखे मे अश्रुपात करके उसमे स्नान कर लिया। विदेश गमन यहाँ पर परपरिणति रमण, चिन्तवन समझना चाहिये। अशुद्धोपयोग मे प्रवर्तन

को अश्रुपात समझना चाहिये। अश्रुपात मे मै झूल गई अर्थात् इतने अश्रु गिरे कि आँसुओ से मै झूलसी पड़ी अन्यथा सुबुद्धि को रोने से क्या वास्ता ? किन्तु शुद्धोपयोगी आत्मा के वियोग मे मै अपनी सुध बुध भूल गई।

टव्वाकार का यह अर्थ विचार ने जैसा है। यहा सुमति पति के साथ एकाकार होकरअपनी सुध बुध खो बैठती है। पति पर परि-णति मे रमण करते है। अशुद्ध उपयोग मे प्रवर्तन करते है इससे सुमति दु ख महल के झरोखे मे झूलकर अपने आपको भूल जाती है ॥१॥

हे श्रद्धे ! पहिले जब मुझे शुद्ध चेतन रूप पति का वियोग नही था, उस समय मै यह नही जानती थी कि वियोग का दु ख कितना होता है। इसलिये पति वियोग से दुखित अन्य स्त्रियो को तन से क्षीण (दुबली) तथा मन से दुखित होती देखकर मै उनकी हसी (मजाक) करती थी किन्तु अब शुद्धात्मा के वियोग-दु ख को समझी तो इतना हो वचन मुख से निकला—"कोई कभी भी प्रेम न करो ॥२॥

सुमति कहती है कि मेरे प्राणपति शुद्ध चेतन के विना मै कैसे जी सकती हू। आर्जव माजव आदि दस यति धर्म रूपी प्राणवायु को विरहावस्था रूपी सर्पणी पीती है। ऐसी अवस्था मे शुद्ध चेतन के वियोग मे सुमति के प्राण कैसे रह सकते ? क्योकि सुमति शुद्ध चेतन विना कहा से आ सकती है ॥३॥

हे सखी ! शीत गोपचार, खस का पखा, सुगन्धित गुलाव—केवडा जल, बावना चदन आदि क्यो लगाती है। अरे भोली, यह दाह ज्वर नही है। यह तो मदन ज्वर है। ये पखे आदि सुगन्धित शीतल पदार्थ तो प्रीतम की याद दिलाने वाले है। इसलिये ये तो काम ज्वर की वृद्धि के हेतु है। इसलिये हे सखि इनका प्रयोग न कर ॥४॥

योगीराज ने इस पद मे अद्भुत प्रकार से व्यवहार दृष्टि द्वारा निश्चयका पोषण किया है। श्री ज्ञानसार जी महाराज ने इस पद के

टव्बे (टीका) मे शीतलोपचार को यथाप्रवृत्तिकरण मे गिना है और ये उपचार चालू रहे तो अपूर्वकरण भी आवेगा। तात्पर्य यह है कि अन्तिम यथाप्रवृत्तिकरण तक विरह काल है उसके पीछे नियम से अपूर्वकरण आता है जिसमे राग द्वेष की ग्रथी का भेद हो जाता है और अनवृत्तिकरण मे आत्मा का मिलाप हो जाता है। आत्मा का मिलाप ही सम्यक्त्व प्राप्ति है। फिर चारित्रका विरह होता है ॥४॥

फाल्गुन के मस्त महीने मे चाचर गाने वाले एक रात्रि मे होली जलाते है किन्तु मेरे मन मे तो प्रतिदिन होली जलती रहती है और शरीर की राख (खाक) उडती रहती है ॥५॥

श्री ज्ञानसारजी महाराज अपने टव्बे मे कहते है—सुमति कहती है—हे चाचर गाने वालो! तुम्हारे तो होली जलाने का दिखावा मात्र है, पर पति विरह मे मेरे तो रातदिन होली सुलगती है। इसलिये शुद्ध स्वरूप चितवन रूप मेरा शरीर जलकरराख हो गया है और वह राख भी उड गई, रही नही, अर्थात् सुमति की कुमति हो गई।

टव्वाकारने 'राख भी नही रही' यह अर्थ करके रूपक को सागोपाग बना दिया है।

सुमति कह रही है-हे आनदघन प्रभु आप ऐसे निष्ठुर मत होवो, मेरे महल मे विराजकर-बैठकर अपनी वाणी का रस तो देवो' अर्थात् मुझ से बातचीत तो कीजिये। मै आप की बलिहारी जाती हू—मै अपने आपको समर्पण करती हू ॥६॥

छठे पद का अर्थ श्रीज्ञानसारजी महाराज ने इस प्रकार किया है—"सुमति कहती है- 'हे श्रद्धा मुझ मति के महल मे शुद्धोपयोगी आत्माराम आकर विराजेंगे तब मै मति की सुमति हो जाऊ गी। जब तक मै मति थी मेरा चतुर्गति रूप महल था और जब

मे मति से सुमति हुई तब शुद्ध स्यादवाद मतानुनायी चरित्र द्वार प्रवेश मुक्ति महल विराजमान एक अरिहन, दूसरे सिद्ध, उनमे यहा केवल अरिहत का कथन है। उन अरिहत की वाणी रस के रेजा अर्थात् तरग ऐसे आनद के समूह प्रभु की मै बलइया लेती हू। अब आप पहले जैसा वर्णन किया वैसे अशुद्धोपयोगी मत होना॥*

अत्यन्त विरह, तथा प्रिय मिलन की पृच्छा व ज्योतिषी का धैर्यदान

साखी-- २७ राग-गोडी-जंकडी

राशि शशि ताराकला, जोसी जोइन जोस।
रमता समता कब मिलै, भागै विरहा सोस॥

पिय विरण कोन मिटावेरे, विरह व्यथा असराल॥

नींद निमाणी आंखतेरे, नाठी मुझ दुख देख।
दीपक सिर डोले खडो प्यारे, तन थिर धरै न निमेष॥पिया०॥१॥

ससि संराण तारा जगीरे, विनंगी दामिनि तेग।
रयनी दयन मतै दगो, मयरण सयरण विणु वेग॥पिया०॥२॥

तन पजर झूरइ परयोरे, उडि न सके जिउ हस।
विरहानल जाला जलो प्यारे पख मूल निरवश॥पिया०॥३॥

उसास सासै वढाउ कौरे, वाद वदै निसि रांड।
न मिटे उसासा मनी प्यारे, हटकै न रयणी माड॥पिया०॥४॥

---

* टव्वाकार श्री ज्ञानसार जी महाराज का यह टव्वा श्री अगरचद जी नाहटा द्वारा सपादित 'ज्ञानसार पदावली' के पृष्ठ स २३६ मे है। उनका यह टव्वा श्री आनदघन जी के केवल चोदह ही पदो पर मिलता है। क्या ही अच्छा होता यदि अधिक पर मिलता।

इह विधि छै जे घर धणीरे, उससू रहै उदास।
हर विधि आइ पूरी करै, 'आनन्दघन" प्रभु
आस ।।पिया०।।५।।

पाठान्तर—जोइन = जोय नै (इ) रमता=आतम (उ)। कव=किम (उ)। मिलै = मिलइ (अ)। भागै=भागइ (आ-अ)। विरहा = विरही (उ) कोन=कुण (उ)।मिटावैरे = मिटावइरे (अ-आ)। आखितैरे = आखितइरे (आ), आख तेरे (इ), आखि ते रे (उ)। देख = देखि (अ,उ)। डोले = डोलइ (आ)। खडो = खडउ (अ)। प्यारे = प्यारो (आ)। ससि = सखि (बु)। सराण = सिराण (अ), सरिण (क बु वि)। जगी = जगइ (अ)। विनगी = चिनगी (अ वि)। दामिनि तेग = दामन तेग (आ,बु)। दामनि तेज (अ)। दामनी तेग (इ)। रयनी दयन = रयन दयन (उ), झूरइ=झूरै (इ उ)। सकै=सकइ (आ)। जाला=झाला (इ)। पख = पखी (इ)। वढाउ = वटाउ (इ उ)। वाद = याद (बु) वदै = वादै (अ), वेदे (बु)। निसि राड = जो राम (उ)। मनी = ए महि (उ)। हटकै = हटकइ (अ)। इहि उदास = इह विधि इ छे जे घर धणीरे, उस तइ रहइ उदास (अ), इह विध छै जे घर धणीरे, उस सू रहे न उदास (इ)। एह विधि इछै से जे घर धणी रे, ऊससू रहै न उदास (उ) इह विधि इछइ धणीरे उससु रहे उदास (आ)। आइ = आय (इ), आऊँ (उ)। पूरी पूर (उ)। करै = करइ (अ)।

शब्दार्थ—राशि = बारह राशिये मीन, मेष आदि। शशि = चन्द्रमा। कला = अंग। जोन = ज्योतिष शास्त्र। सोस = शोषण। असराल = भयकर। निमाणी = लाडली। नाठी = भाग गई। सराण = मद होना, छिपना। विनगी = विनाग्रहण की हुई। रयनी = रात्रि। दयन = देना। मतै दगो= धोखा (दगा) देने का विचार है। मयण=मयन, कामदेव। मयण = मज्जन, स्वजन, पति। पजर = पिंजडा। जाला = ज्वाला। मूल निरवग=मूल (जड) मे ही नष्ट हो गई है।

समता, श्रद्धा, अनुभव आदि से अपनी व्यथा कह-कह थक गई और चेतन के वियोग से अत्यन्त दुखी हो गई तब विशिष्ट ज्ञानी पुरुष

(ज्योतिषी) से अपने स्वामी चेतन से मिलाप की बात पूछती है कि चेतन से मेरा कैसे और कब मिलाप होगा।

अर्थ—समता कहती है—हे ज्योतिषी ! तुम अपनी पोथी, पचाग द्वारा राशिबल, चद्रबल, व अन्य ग्रहो का अ श बल देखकर बताओ कि मेरे रमता राम चेतन जी मुझे कब मिलेगे जिससे मेरा यह विरह शोषण दूर हो ।।साखी।।

मेरे प्रिय पति चेतन बिना अथाह एव बिकराल विरह व्यथा को कौन दूर कर सकता है। प्राणी मात्र को प्रिय ऐसी लाडली निद्रा भी मेरा दुख देख कर आखो से जाती रही। दीपक की शिखा के समान मेरा मस्तक इधर उधर भटक रहा है। मेरा शरीर एक क्षण मात्र के लिये भी स्थिर नही रहता। इसलिये हे ज्योतिषी जी ! अपना ज्योतिष देखकर बताओ कि पतिदेव (चेतन) का मुझ से कब मिलाप होगा ।।१।।

विशेष—बहुत से ऐसे भी जीव देखने मे आते है जिनको अध्यात्म रुचि तनिक भी नही होती पर वे बहुत गभीर व समभावी होते है, पर जब तक आत्मा का आश्रय नही मिलता उन्हे वास्तविक समता नही कही जा सकती। व्यक्ति समता युक्त हो, अध्यात्म भी हो, किन्तु आत्मानुभवका आश्रय न मिला हो तो उसमे स्थिरता नही आ सकती है।वह दीपक की शिखा समान अस्थिर रहता है।

चन्द्रमा अस्तगत है, तारे टिमटिमा रहे है। बिजली तलवार की भाति चमक रही है। अपने स्वजन के बिना रात्रि और कामदेव मिलकर, हे प्यारे चेतन स्वामी ! मुझे वेग पूर्वक दगा देने को उद्यत हो रहे है अर्थात् ऐसी कामोद्दीपक सामग्री मुझे प्रियतम की बहुत याद दिला रही है ।।२।।

श्री ज्ञानसार जी महाराज ने इसका इस प्रकार अर्थ किया है—"चद्रमा छिप रहा है, तारे जगमगा रहे है और बिजली बिना ग्रहण की हुई तलवार से मुझे दगा देने का विचार कर रही है क्योंकि

जो मै अशुद्ध चेतना हू तो कामोद्दीपन के कारण कामदेव मेरा सज्जन है किन्तु मै तो शुद्ध चेतना हू इसलिये कामदेव मेरा सज्जन नही है। अन्धेरी रात, तारा दामिनी तलवार धारण किये हुये मुझे कामोद्दीपन रूप दगा देना चाहते है।"

यह हँस रूपी जीव उड नही सकता क्योकि तन रूपी पिंजरे मे कैद है। इसलिये इसमे पडा पडा कष्ट भोग रहा है। विरह रूपी अग्नि की ज्वाला वेग से जल रही है। इस ज्वाला मे पख तो सर्वथा मूल से ही जल गये है। इसलिये हे प्यारे चेतन! मै तो उड के भी आपके पास नही आ सकती हू ॥३॥

इस पद के अर्थ का साराश श्री ज्ञानसारजी महाराज के अनुसार यह है—' हे सखि! मै शुद्धात्मा से मिलना चाहती हू किन्तु मिलाप होता न दिखने से शरीर रूप पीजरे मे पडा यह जीव अत्यन्त कष्ट पा रहा है।"

श्वासोश्वास वढे हुये है। ज्यो ज्यो रात वढती है त्यो त्यो श्वास-प्रश्वास की गति भी वढती है। मानो रात और श्वास मे परस्पर होड लग रही है। हे प्यारे चेतन! मनाने पर भी श्वास की तीव्रता नही मिटती और लडाई ठाने हुये रात पीछे नही हटती है ॥४॥

श्री ज्ञान सारजी महाराज के अर्थ का साराश यह है—

उनका पाठ है–'उसासा से वटाऊ कोरे, वाद वदे निसि राड।
न मने ऊमा सामनी, हटके न रयणी माड ॥'

श्वासोश्वास रूप वटाऊ तेज गति से चलने वाले घुमक्कड मे व रात्री मे वाद चलता है। आत्मा सोपक्रमी आयुष्यवाली है उसकी सातो ही प्रकार से आयु स्थिति टूटने वाली है। चेतना विचारती है कि अन्त समय मे शुभ परिणाम होय तो आत्मा से मिलन हो सकता

है परन्तु आत्मा की अशुभ आयु स्थिति पहले ही बंध हो चुकी है, अत मरण समय अशुभ ही परिणाम आवेगे। अशुभ परिणामी आत्मा से शुद्ध चेतना का मिलाप असभव ही है। सात प्रकार के उपक्रम मे से कोई भी एक उपक्रम लगा कि आयु स्थिति टूटी। इसलिये श्वासो-श्वास को मनाती है किन्तु हठग्राही पन से श्वासोश्वास ने रात्रि मे आत्मा को उस गति मे नहीं रहने दिया ॥

इस प्रकार जिस का गृह स्वामी अशुद्धोपयोग मे रमण करता है, उस स्त्री के भाग्य मे सुख कहा ? वह तो पति की स्थिति मे उदास रहती है। (फिर भी आशा करती है) आनद के घन परमानदी प्रभु (चेतन) स्वभाव रूप निज घर मे आकर हर प्रकार से मेरी गुण-स्थानारोहण रूप आशा पूरी करेगे ॥५॥

उपालम्ब **२८** **राग-सारंग**

साखी— आतम अनुभव फूलकी, नवली कोऊ रीति।
नाक न पकरै वासना, कान गहै परतीति ॥

अनुभौ नाथ कुं क्युं न जगावै।
ममता सग सुचाइ अजागल थनतै दूध दुहावै ॥अनु०॥१॥
मेरे कहे तै खीज न कीजै, तु ही अैसी सिखावै।
बहुत कहे ते लागत ऐसी, आंगुली सरप दिखावै ॥
अनु०॥२॥
औरन के रग राते चेतन, माते आप बतावै।
"आनदघन" की समता आनदघन वाके न कहावै ॥
अनु०॥३॥

पाठान्तर—रीति = रीत (इ उ)। परतीत = परतीत (इ उ)। सुचाई = सुवाइ (आ), सुपाइ (इ), सुहाई (उ), सोपाय (क बु वि)। कीजै = कीजइ (आ)। अैसी = इसी (अ), येसी (उ)। ऐसी = अैसी सी (आ), इसी सी (अ),

एसी (उ)। आगुलि = अगुली (क बु), अँगुली (वि)। सरग = सरग (आ उ)। औरन ' "बतावै = औरन रगि राते चेतन, माते आप बतावै (इ), जो औरन के रग राते चेतन, माने आप बतावै (उ), औरन के सग राचे चेतन, चेतन आय बतावै (क बु वि)। माते '' बतावै = 'माटे आख बतावै', एसा पाठ भी एक प्रति मे मिलता है। समता = सुमता। (उ), सुमति (क बु वि)। आनदघन' कहावै=आनन्दघन की सुमति आनन्दा, सिद्ध सरूप कहावै (इ क बु वि)।

शब्दार्थ—नवली = नई, नवीन। वासना = गध। परतीति = प्रतीत, दृढ विश्वास। सुचाइ = इच्छा पूर्वक, भली प्रकार। अजागल थन तै = बकरी के गले के स्तन से। खीज = क्रोध। माते = मतवाला।

अर्थ- आत्मानुभव रूप पुष्प की कुछ नवीन ही रीति है। पुष्प की सुगन्ध नाक को आती है, परन्तु कान को नही आती। फिर भी कान अनहत नाद सुनकर प्रतीति करने लगता है कि आत्मानुभव पुष्प खिला है।।साखी।।

कितनी प्रतियो मे "कान न गहै परतीत" पाठ है। उसका अर्थ होता है-न कानो को शब्द सुनने से उसकी प्रतीति होती है क्यो कि आत्मा को आखे देख नही सकती, न त्वचा स्पर्श कर सकती अर्थात आत्मा किसी भी इन्द्रिय द्वारा जाना नही जा सकता। यह इन्द्रियातीत है। यह स्वय के द्वारा जाना जाता है। जैन दार्शनिको ने इन्द्रिय द्वारा होने वाले ज्ञान को इन्द्रिय-प्रत्यक्ष ज्ञान कहा है।

जैन विचारको (दार्शनिको) ने "सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष मार्ग" कहा है। यह सूत्र श्री उमास्वाती के तत्वाथ सूत्रका पहला सूत्र है, जिस का अर्थ है - सम्यक् दशन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चरित्र-ये तीनो मिलकर मोक्ष के साधन है। कही कही ज्ञान क्रिया को मोक्ष का साधन कहा है। उसका भी तात्पर्य यही है क्यो कि सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन का अन्योन्याश्रित सबध है।

जहाँ एक होगा वहा दूसरा अवश्य होगा ये एक दूसरे को छोडकर नही रह सकते, परन्तु सम्यक् चारित्र के साथ उनका साहचर्य नितात आवश्यक नही है। इसलिये सक्षेप मे ज्ञान-क्रिया (चारित्र) को मोक्ष का साधन कहा है। तप को भी मुक्ति का साधन माना है। इसलिये नवपद मे उसे भी स्थान मिला है।

जिस प्रकार दर्शन का समावेश ज्ञान मे हो जाता है, उसी प्रकार तप का समावेश चारित्र मे हो जाता है। इसलिये सक्षेप मे ज्ञान व क्रिया को ही मोक्ष का साधन कहा है। जीव को ससार मे फँसाने वाली भी दो ही वस्तुये है, व तारनेवाले भी दो ही वस्तुये है। दर्शनमोह और चरित्रमोह-ये दो जीव को ससार मे परिभ्रमण कराते हैं एव ज्ञान व क्रिया ये दो तारते है। दर्शनमोह दृष्टि को विगाडता है व चारित्रमोह आचार को। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, यह कहावत प्रसिद्ध है। दृष्टि विगडती है तो सृष्टि-आचरण अवश्य विगडजाता है। उसी प्रकार दृष्टि सुधरती है तो सृष्टि भी सुधर जाती है, चाहे उसमे विलम्ब लगे, पर सुधरती अवश्य है। इसलिये मोह दृष्टि ससार का हेतु है व ज्ञान दृष्टि मुक्ति का हेतु है ज्ञान दृष्टि प्राप्त होने पर क्रिया की शुद्धि आवश्यक है उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ज्ञान ही मुक्ति का प्रधान हेतु है।

इसलिए सुमति कहती है-हे मित्र अनुभव! आप नाथ को सचेत क्यो नही करते। उन्हे ममता का साथ वहुत ही सुहावना लगता है किन्तु उसका साथ वकरी के गले मे लटकते हुए स्तनो से दूध निकालने के समान है।

आपके परम मित्र चेतन के लिए मै जो वार-वार यह कहती हू इससे आप नाराज मत होना, क्योकि आपने ही यह शिक्षा दी थी कि चेतन के लिए ममता के सग मे कुछ सार नही है। मै तो

चेतनजी (स्वामी) को अनेक बार कह चुकी हू तो सर्प को अ गुली दिखाने तुल्य, उन्हे अत्यन्त अप्रीतिकर लगता है ॥२॥

अन्य विजातीय पदार्थो मे चेतन रस ले रहा है यह उसकी उन्मत्त दशा अपने आप ही वता रही। ('माते' के स्थान पर चेतन पाठ भी है-इसका अर्थ होगा कि सासरिक भोगो मे अचेत होकर भी अपने को चेतन कहता है, कैसी विडवना है)

कवि कहते है–आनद के स्वरूप चेतन की वास्तविक परिणति तो आनन्द देने वाली सुमति ही है फिर आनदघन (आनद स्वरूप चेतन) उसके (ममता के) कैसे हो सकते है ? अर्थात् नही हो सकते है। (जहा "आनदघन की आनदा, सिद्ध स्वरूप कहावै" पाठ है उसका अर्थ यह होगा–'आनदघन चेतन का आनद तो सुमति ही है। जो चेतन को सिद्धत्व प्राप्त कराती है इसलिये सिद्धस्वरूप कही जाती है ॥३॥

प्रिय मिलन कठिनाई, २६ राग–धन्याश्री
खीज व उपालम्ब

अनुभौ पीतम कैसे मनासी।
छिन निरधन सधन छिन, निरमल समल रूप बनासी ॥ अनु० ॥१॥
छिन में शक्र तक्र फुनि छिन में देखु कहत अनासी।
विरहजन चीज आप हितकारी, निज धन झूठ खतासी ॥ अनु० ॥२॥
तु हितू मेरो मै हितू तेरी अ तर काहे जतासी।
"आनदघन" प्रभु आनि मिलावो, नहिं तर करो धनासी ॥ अनु० ॥३॥

पाठान्तर—अनुभौ = अनुभव (अ इ उ)।पीतम = प्रीतम (अ इ उ)। सधन = मन (आ) । बनामी = वतासी (अ इ उ व)। तक्र = वक्र (अ), चक्र (उ)। देखु कहत=देखौ कहति (ट)। विरहजन=विरजन (अ इ), विरहजव (उ) विरज न (उ), विरचन (क,वि)। चीज=वीज (ट) छीज (उ), विच्च (व वि)।

वीचत्र (क)। निज धन = निधन (आ), निरधन (इ उ क), निर्धन (वु), निरचन (वि)। खतामी = खनासी (आ वि)। वतासी (उ)। हितू = हित (आ)। धनामी = धन्यामी (इ उ)।

शब्दार्थ—मनासी = मनावेगा, प्रसन्न करेगा। सधन = धन सहित। समल = विकार युक्त। वनामी = वनावेगा। अनासी = अविनाशी। शक्र = इन्द्र। धनामी = विदा होवो। गायन करनेवाले को जव विदा देनी होती है तो 'धन्याश्रीकरो' कहा जाता है। राग रागनियो मे भी अतिम स्थान 'धनाश्री' राग का है।

अर्थ—श्री ज्ञानसारजी ने इस पद का अर्थ किया है उसका साराश यह है—"आत्मा को पुद्गल मे लोलीभूत अशुद्धोपयोगी देखकर अनुभव से शुद्ध चेतना कहती है।

हे अनुभव! पतिदेव (चेतन) किस प्रकार प्रसन्न होगे? अपना कहना कैसे मानेगे? मन के वस वर्तते हुये क्षण मे ज्ञानदर्शन रहित निर्धन, उसी भाति क्षण मे ज्ञानदर्शन सहित धनवान, फिर क्षणमे ही निर्मल स्वरूपी ज्ञानी और क्षण मे अनतानुवधी के उदय से से महा मैला रूप दिखाते है। ऐसे वहुरगी चेतन को हे अनुभव! कैसे मनाया जाय॥"॥

क्षण मे यह आत्मा अपने को इन्द्र जैसा समर्थवान मानने लगता है, अर्थात षट् द्रव्य मे मेरे जैसा कौन है? यह महानता धारण करता है और क्षण मे तक्र जैसा-छाछ जैसा निसत्व वन जाता है।

यहाँ श्रीज्ञानसारजी महाराज लिखते है—"आगे के पद का किंचित अर्थ भासता तो है पर रहस्यार्थ सहित पूर्णरूप से नही भासता। इसलिए नही लिखा। 'शतवद एको मा लिख,' कोई वात लिखने के पहले वहुत विचार करना चाहिये। फिर इन कविराज आनन्दघन जी का आशय अत्यन्त गभीर होता है परन्तु इन पदो के

शुद्धाशुद्ध अक्षरो के समझे विना अर्थ किसका किया जावे। जव ऐसे महान पुरुष ही आशय को नही जान सके तो मेरे जैसे अल्पज्ञ की क्या विसात है। पर जो कुछ समझा है वह लिख देना ही उचित समझता हूँ। विचारक लोग ठीक समझे तो ग्रहण कर सकते है।

चेतना कहती है कि चेतन अपने को क्षण मे इन्द्र जैसा महान समझने लगता है तो क्षण मे तक्र जैसा निसत्व वन जाता है, अथवा तक्र के स्थान पर वक्र पाठ रखे तो अर्थ–टेढा व कुटिल हो जाता है। इस भान्ति क्षण क्षण मे यह अनेक भाव पलटता दिखाई पडता है। पर ससार से विरक्त ज्ञानियो ने इसे अविनाशी, नित्य व वासना से मुक्त रहने वाला कहा है जो सर्वदा स्वभाव से अपना हित ही करता है किन्तु विभाव परिणामी होने पर यह अपनी ज्ञानादि सम्पति को विपरीत परिणमन करके खोटे खाते खतगता है अर्थात अज्ञानवश ससार बधन का खाता खताता रहता है। 'विरचन' पाठ का इस प्रकार अर्थ किया जा सकता है। 'अपने भावो का विरचन-निर्माण करने के बीज इसी मे है, अपना हित आप स्वय ही करने वाला है और विभाव दशा मे अपने आत्मिक धन को पौद्गलिक खाते मे लगा कर अपने अक्षय सुख से विमुख भी स्वय ही होता है' ॥२॥

समता अनुभव से कहती है - हे अनुभव! तू मेरा हित (भलाई) चाहने वाला है और मै तेरा हित करने वाली हूँ। तुझ मे और मुझमें क्या अन्तर है - क्या भेद है, मुझे वता। जहा सुमति, सद्‌बुद्धि, ममता, शुद्ध चेतना, ज्ञान चेतना होती है, वहा अनुभव होता ही है। हे अनुभव तेरा मेरा इतना घनिष्ट सवध है फिर भी तू विलम्ब कर रहा है। अव कृपा कर आनद के घन (समूह) सामर्थवान आत्माराम को मुझमे शीघ्र मिलाओ अन्यथा यहा से विदा हो। मै और कुछ नही चाहती हू। (समता ने निराशा व खीज मे यह

वाक्य कहा है -"विदाहो"। दुखी अर्थीजन आवेश मे उचित अनुचित का विचार नही करते।

विरहोद्रेक व अनुभव धैर्यदान ३० राग–गौडी

मिलापी आन मिलावो रे मेरे अनुभव मीठडे मीन ।।
चातिक पिउ पिउ करै रे, पीउ मिलावे न आन ।
जीव पीवन पीउं पीउं करै प्यारे, जीउ निउ आन अयान ।।मि०।।१।।

दुखियारी निस दिन रहूं रे, फिरूं सब सुधि बुधि खोइ ।
तनकी मनकी कवन लहै प्यारे, किसहि दिखावुं रोइ ।।मि०।।२।।

निसि अंधियारी मोहि हसैरे, तारे दात दिखाय ।
भादु कादु मइ कीयउ प्यारे, असुअन धार बहाय ।।मि०।।३।।

चित चाकी चिहू दिसि फिरैरे, प्रान मैडो करै पीस ।
अवला सइ जोरावरी प्यारे, एतो न कीजै ईस ।।मि०४।।

आतुरता नही चातुरी रे, सुनि समता टुक बात ।
"आनन्दघन" प्रभू आइ मिलेंगे आज घरे हर भात ।।मि०।।५।।

पाठान्तर—चातिक = चातक (इ उ)। पिउ पिउ करैरे = पिउ पिउ पिउ करहरे (अ), पीऊ पींऊ करैरे (इ), पीउ पीउ करेरे (उ)। मिलावै = मिळाव (:)। करै = करइ (आ), करे (उ)। आन अयान = आन अपान (अ), आतए आन (इ), आग, अजाए (उ) दुखिआरी = दुखी आरी (अ)। सुधि बुधि = सुद्धि बुद्धि (आ)। खोइ = खोय (इ, उ)। कवन = कवहुन (इ), कवन (उ)। लहै = ल्हइ (अ) लहु (इ)। प्यारे = वारे (उ)। किसहि रोइ = कैसे दिखाउ रोय (इ उ)। मोहि हसैरे = मोहि हसइरे (अ उ), मुहि हसैरे (इ)। तारे = तारइ (आ) मइ = मे (इ उ)। कीयउ = कियो (इ), कीयो (उ)। बहाय = बहाइ (अ आ)। चाकी = वाको (इ उ)। फिरैरे = फिरइरे (अ आ)। प्रान = मान (अ)। करै पीस = करइ पीसी (आ), करपीस (इ) करे पीन (उ) मइ = सू (इ), से (उ)। कीजै = कीजइ (आ), ईस = रीस (इ उ)।

प्रान ''पीस = प्रण मे दो करे पीस (क), प्रण मे दो कर पीस (ग्रु)। आतुरता ...... ''चातुरीरे = आतुर चातुरता नही रे (इ)। मिलेगे = मिलेगे प्यारे (इ उ) घरे = घरि (ग्रा), घरी अ उ), घरे (क)। हर = हरि (अ)।

शब्दार्थ—=मिलापी = मिलाने वाला। मीठडे मीत = स्नेही मित्र। आन = आकर। पीवन = पीने के लिये। जीउ निउ = प्राणधन (जीउ = प्राण, निउ = नीव)। कवन = कौन। कादू = कीचड।

अर्थ—सुमति कहती है-हे मेरे परम हित चिन्तक मिलापी मित्र अनुभव ! कृपा कर मेरे प्रियतम (चेतन) को लाकर मुझसे मिलावो।

यह पपीहा पिउ पिउ कर रहा है किन्तु पिउ (पति) को लाकर मिलता नही। यह तो मेरे प्राण पीने के लिये ही पिउ पिउ करता है और मेरे जीवन धन को ला नही सकता।

प्रियतम विना मै दिन रात दुखी रहती हू। अपनी सब सुध बुध खोकर इधर उधर भटक रही हू। मेरे तन मन की पीडा (दुख) को कौन समझ सकता है फिर रोकर भी किसको अपनी दशा दिखाऊ ॥२॥

अधेरी रात मे तारे चमक रहे है वह ऐसे लगते है मानो रात दात दिखलाकर मेरी हसी (मजाक) कर रही है। (विरह व्यथा से दुखित) मै आँसूओ की धारा वहाकर अपने समीप भाद्रपदमास के समान कीचड कर लिया है ॥३॥

मेरी चित्त रूपी चक्की चारो तरफ घूम रही है जिसने मेरे प्राणो को पीस कर मैदा (वारीक आटा) वना दिया है। इसलिये हे प्रियतम ! हे प्रभो ! मुझ अवला से इतनी जवरदस्ती मत करो—ऐसी ज्यादती मत करो ॥४॥

समता को इस प्रकार अत्यन्त खेद खिन्न देखकर अनुभव उसे आश्वासन देता है–हे सुमते ! जरा मेरी बात सुन, धैर्य रख। इस तरह व्यथित होने और घबडाने मे बुद्धिमानी नही है। जल्द बाजी से काम नही बनता है। आनद घन प्रभु शीघ्र ही अपने घर आकर हर प्रकार से तुझ से मिलेगे ॥५॥

विरह मे प्रतीक्षा व अनुभव का आश्वासन ३१ राग–केदारो

निसि दिन जोवु बाटडी, घरि आवरे ढोला।
मुझ सरीखे तुझलाख हैं, मेरे तु ही ममोला ॥नि०॥ १
जोहरि मोल करे लाल का, मेरा लाल अमोला।
जिसके पटन्तर को नही, उसका क्या मोला ॥नि०॥२॥
पथ निहारत लोअनै, टग लागी अडोला।
जोगी सुरति समाधि मे, मानो ध्यान झकोला ॥नि०॥३॥
कौन सुणै किसकु कहूँ, किसै मांडु खोला।
तेरे मुख दीठै टलै, मेरे मनका झोला ॥नि०॥४॥
मीत विवेक कहै हितूं, समता सुनि बोला।
"आनदघन" प्रभू आवसी, सेजडी रंग रोला ॥नि०॥५॥

पाठान्तर—जोवु = जोवु थारी (इ उ)। घरि = घर, (इ)घेर (उ)। आवरे = आवोरे (इ), आवोजी (उ)। सरीखे = सरिखा (इ उ)। तुझ = तोरे (उ)। ममोला = मामोल्या (अ), अमोला (उ)। जोहरि = जौहरी (अ), जौंहरी (इ), जुहरी (उ)। मेरा = मेरे (उ)। लाल = मोल (आ)। अमोला = अमूला (उ)। जिसके = जिसकइ (आ) निहारत लोगने = निहारी लाअनै (अ), निहारत लोयनै (इ) निहालनि लोयणे (उ)। टग = द्दग (उ)। सुरति = सूरति (उ)। मैं = रो (उ)। मानो = मुनि (उ)। कौन = कौण (ग)। किसै = केम (इ)। मनका = मनकी (उ)। झोला = चोला (इ)। समता = सुमता (उ)। आवसी = आवसे (इ उ)।

शब्दार्थ—जोवु = देखना। वाटडी = वाट, रास्ता, राह। ढोला = प्रियतम, पति। सरीखे = समान। ममोला = ममत्व के स्थान, प्रिय। पटतर= वरावर। लोअनै = नेत्र। झकोला = मस्ती। माडु खोला = आचल पसार-फैलाऊ। झोला = गोटाला, चचलता। रगरोला = रगरेलिया, चहल पहल।

अर्थ—सुमति कहती है-हे प्रियतम चेतन ! मै आपकी रात दिन राह देखती रहती हू। हे स्वामी ! अव तो आप अपने घर पधारिये। (विभाव दशा को छोडकर स्वभाव दशा मे आइये) मेरे जैसी तो आपके लाखो है अर्थात् माया ममता, रति अरति कुटिलता व्रकता आदि लाखो विभाव दशाये है किन्तु मेरे तो आप अकेले ही प्रिय भाजन है-प्रेम के स्थान है ॥१॥

जौहरी अपने लाल का-माणिक आदि रत्नो का मूल्य आकता है-करता है किन्तु मेरा लाल तो अमोलख है जिसका कोई पारखी मूल्य नही कर सकता। मेरा ज्ञान दर्शन चारित्र रूप लाल चेतन स्वामी तो अमूल्य है। उसका कोई मूल्य नही लगा सकता वह तो अमोल है। उसके वराबर कोई भी वस्तु नही है फिर उसकी क्या कीमत हो ॥२॥

अडोल-अनिमेष आख से-दृष्टि से-टकटकी लगाकर मै उसकी खोज मे मार्ग को इस प्रकार देखती रहती हू जिय प्रकार योगी ध्यान की मस्ती से समाधि मे एकाग्र-लीन हो गया हो। मैं आप ही के ध्यान मे स्थिर चित्त रहती हू ॥३॥

सुमति चेतनदेव से कहती है-हे स्वामी ! आपके सिवा मैं अपना दुख किससे कहू मेरी व्यथा कौन सुनने वाला है, मै किसके आगे अपना अचल फैलाऊ। हे स्वामी ! आपके मुख देखने से ही मेरे मन की चचलता दूर होगी। अर्थात आप मेरे पास रहेगे तो मै शात रहूगी-आनद मे रहूगी ॥४॥

सुमति की ये विरह व्यथा युक्त बातें सुनकर उसका परम हितैषी मित्र (अनुभव) उसे आश्वासन देते हुये बोला–हे सुमते ! मेरी बात ध्यान से सुन, तेरे भरतार आनदघन चेतन स्वामी अवश्य आवेंगे और स्वभाव रूपी शय्या पर आनद रूप रगरेलियाँ करेंगे। मेरी बात का विश्वास रख ॥५॥

विरह व्यथा-उद्‌गार और अनुभव का आश्वासन — ३२ — राग–मारू

पिया बिन सुधि बुधि मूंदी हो।
विरह भुयग निसा समै, मेरी से जडी खूंदी हो ॥पिया०॥१॥
भोयन पान कथा मिटी, किसकूं कहूं सूधी हो।
आज काल्ह घर आवन की, जीउ आस विलूंधी हो ॥पिया०॥२॥
वेदन विरद अथाह है, पाणी नव नेजा हो।
कोन हवीव तवीव है टारै करक करेजा हो ॥पिया०॥३॥
गाल हथेली लगाइ कै, सुर सिंधु समेली हो।
अँसुवन नीर वहाय कै, सीचूं कर बेली हो ॥पिया०॥४॥
श्रावण-भादू घन घटा, बिच बीज झबूका हो।
सरिता सरवर सब भरै, मेरा घट सर सूका हो ॥पिया०॥५॥
अनुभव बात बनाइकै, कहै जैसी भावै हो।
समता टुक धीरज धरो, 'आनदघन' आवै हो ॥पिया०॥६॥

पाठान्तर—पिया = पीया (आ)। बिन = विनु (आ)। सुधिबुधि सुनबुध (अ) शुद्धिबुद्धि (इ)। मूदी = मुंदी (आ)। समै=पमइ (अ), समे (उ)। खुंदी = खुंदी (आ, उ)। भोयन = भोअन (अ), भोअन (इ), भोजन (उ)। मिटी = मिटे (उ)। सूधी = सधा (आ) आज = आजि (अ)। काल्ह = कालि (अ)। काल (इ उ)। आवनकी = आनकी (इ)। जीउ = जीय (इ) विल धी

= विलू धा (उ)। अथाह है = अथाह हे (उ)। हवीव तवीव = तवीव हवीव (इ), हवीव तवीज (उ)। सुर = सर (इ) सिर (उ)। समेली = सुमेली (उ)। वहाय = वहाइ (अ)। सीचू = सीचौ (आ) सीच्यौ (उ) श्रावण भादु = सावण भादू (इ), श्रावण मास (उ) बिच = विचि (अ), विच (इ) वीच (उ) सरिता भरै = सलिता सरस वहैं भरे (आ), सलिता सरवर सब लहै (उ), पपही पिउ पिउ लवइ, जाणे अमी लबूका हो (अ) सर = रस (उ)। वनाइ = वनाय (इ उ) कहै = कहइ (अ), कहे (इ)। धरौ = धरउ (आ)।

शब्दार्थ - मूंदी हो = मंद हो गई, ढक गई है। सुधि बुधि = होश हवास, चेतना। भुयग = भुजग, सर्प। समै = समय। सेजडी = शय्या। खूंदी हो = पैरो से रोदना, पैरो से दवा दवा कर अस्तव्यस्त करना। भोयन = भोजन कथा = वात। सूधी = सीधी, सच्ची। जीउ = जीव, प्राण। आस = आशा। विलूधी = नष्ट हो गई, लुप्त हो गई। नवनेजा = नौ खडे भाले की लम्बाइ जितना गहरा, नौ रस्से की लम्बाई जितना गहरा। हवीव = मित्र। तवीव = हकीम, वैद्य, चिकित्सक। करक = कसक, रुक रुक कर होने वाली पीडा। सुर सिन्धु = दुख स्वर का समुद्र, शोक समुद्र। समेली हो = मिल गई, डूब गई। कर वेली = हाथ रूपी वेल। वीज = विजली। झबुका हो = चमकती है। सरिता = नदी। सर = तलाव।

अर्थ—सुमति कहती है—पति देव (चेतन स्वामी) विना मेरी सुधि-बुधि अच्छादित हो गई है अर्थात् मेरे होश हवास गुम हो गये हैं—खो गये है। मेरा सुमतिपना मद हो गया है। रात्रि के समय विरह रूपी सर्प ने मेरी शय्या को रोद करअस्त व्यस्त कर दिया है। चेतन की विभाव दशा ने यह भयकर दशा उत्पन्न करदी ॥१॥

खाने पीने की वात ही जाती रही। किसे खाना पीना अच्छा लगता है? अपनी व्यथा की सीधी सच्ची वात किस पर प्रगट करू? आजकल मे ही घर आने की वात थी, वह सव आशा मेरे मन मे लुप्त हो गई। अर्थात् चेतन देव स्वामी के आजकल मे ही

अपने घर (निज स्वभाव मे) आने की बात थी किन्तु उनके निजभाव मे न आने से वह सब आशा विलुप्त हो गई ।।२।।

नौ नेजा गहराई के समान मेरी विरह वेदना अथाह है। ऐसा कौनसा मित्र वैद्य है जो मेरे हृदय की कसक (पीडा) को दूर करे ।।३।।

इस पद के द्वारा योगीराज ने सद्गुरु की दुर्लभता बताई है।

गाल पर हाथ लगाकर (विचार मग्न होकर) शोक समुद्र मे गोते खा रही हू, डूब रही हू। नेत्रो से आसूओ को बहाकर गाल पर लगे हुए हाथ रूपी बेल को सीच रही हू। अर्थात् अत्यन्त दुखी हो रही हू ।।४।।

श्रावण-भाद्रपद की घनघोर घटा के बीच कभी कभी बिजली चमक जाती है। (श्रावण-भाद्रपद की घनघोर घटा रूपी विरह दशा मे चेतन की विभाव दशा मे कभी कभी मेरी ओर उन्मुख होने रूपी बिजली चमक जाती है)। ऐसे श्रावण भाद्र पद मास मे सब नदियें व सरोवर (तलाव) भर गये है किन्तु मेरा हृदय रूपी तलाव सूखा ही है। (चेतन की विभाव दशा मे अशुभ कर्म रूपी नदियें तालाब आदि तो भर गये किन्तु मेरा समभाव रूप तलाव तो सूखा ही रहा) ।।५।।

सुमति को इतनी दुखित देखकर उसका परम हितकारी मित्र अनुभव सुमति की इस विरह दशा के दुख की बात चेतनराज से उसकी रुचि अनुसार अनुकूल भाव से, अवसर देखकर कहता है और उसे समझाता है। समझाने के पश्चात् अनुभव को आशा होती है और वह सुमति के पास आकर कहता है—हे सुमते! तनिक धैर्य रखो, आनन्दघन प्रभु अब (तेरे पास) आने वाले ही है।।६।।

विरह मे प्रेमदशा व अनुभव का आश्वासन 33 राग-काफी

हठीली आख्या टेक न मिटै, फिरि फिरि देखन चाहुं ॥
छैल छबीली पिय सबी, निरखत तृपति न होइ ।
हठकरि टुक हटकै कभी, देत निगोरी रोइ ॥ह०॥१॥
मागर ज्यु टगाइ कै रही, पिय सबी कै द्वारि ।
लाज डाग मन मै नही, कानि पछेवडा डारि ॥ह०॥२॥
अटक तनक नही काहू की, हटकै न इक तिल कोर ।
हाथी आप मतै अरइ पावै न महावत जोर ॥ह०॥३॥
सुनि अनुभव प्रीतम बिना, प्रान जात इहि ठाहि ।
हैज न आतुर चातुरी, दूर 'आनदघन' नाहि ॥ह०॥४॥

पाठान्तर—आख्या = आखै (अ) । टेकन = टेकनि (अ) मिटै = मेटै (इ उ) । चाहु = जाहु (अ), जाई (इ), जाय (उ) । छैल = छयल (इ उ) । छवीली = छवीला (आ) । सवी = छबी (इ) तुपति = तृपत (अ)। हठ = हट । (आ) हटकै = हठकै (अ इ उ) । 'कभी' यह शब्द 'इ, प्रति मे नही है । मागर = मारग (आ) । टगाइ = टगाइ (अ), टुगाय (इ उ) । डाग = डाग (आ) मन मैं = मानै । पछेवडा = पचछेरा (अ), पिछेडा (इ) पिछेवडा (उ) । डारि = टारि (आ) । डार (इ) । टार (उ) । तनक = तटक (आ), तनेक (उ) । इक तिल = नहि तिल । मतै = मतइ (अ) । अरइ = अरै (इ), यरे (उ) । पावै = पावइ (आ) । महावत = मावत (इ उ) । इहि = इन (आ), नवि (इ) । ठाहि = ठावहि (आ), आहि (इ) । हैज न = हजीन (इ उ)। आतुर चातुरी = चातुर आतरी (इ) । दूर = दूरि (अ उ) ।

शब्दार्थ—टेक = जिद, हठ । सवी = तसवीर । हटकै = हटाना मना करना । मागर = मकर, मछली । डाग = लकडी, डडा । कानि = मर्यादा । पछेवडा = ओढने का चादरा । ठाहि = स्थान ।

अर्थ—सुमति की हठीली आखे अपनी हठ (जिद) न छोड रही है, वार वार प्रियतम को देखना चाहती है।

अपने मौजी प्रियतम की सुन्दर छवि को देखते हुये तृप्ति नही होनी है। यदि जवग्दस्ती से रोका जाता है तो ये निगोडी आखे रो देनी है ॥१॥

जल वियोग होने पर (काँटे मे फसी हुई) मच्छलो की दृष्टि जिस प्रकार पानी की ओर लगी रहती है, उसी प्रकार मेरी दृष्टि प्रियतम के द्वार की ओर लगी रहती है। मुझे प्रियतम की छवि की ओर देखने मे किसी की लज्जा रूप डडे का मन मे भय नही है। और मैंने मर्यादा रूप चादर को उतार कर अलग डाल दिया है ॥२॥

अव किसी की जरा भी रोक नही है इसलिये ये हठीली आखें एक तिल भर तो क्या, निल के अग्रभाग जितना भी हटना नही चाहती है। हाथी जव अपन मते (मन माना) हो जाता है तव महावत के अ कुश का जरा भी वश नही चलता है ॥३॥

हे अनुभव मित्र ! मेरी स्पष्ट वात सुनलो, प्यारे प्रियत म के विना मेरे प्राण इस ही स्थान पर यह देह छोड देंगे। यह सुनकर अनुभव राज कहते है—हे सुमते ! जल्द वाजी करना बुद्धिमानी नही है। तू धैर्य रख—विश्वास रख कि आनदघन चेतन तेरे से दूर कहा है ? अर्थात् दूर नही है ॥४॥

इस सम्पूर्ण पद मे आध्यात्म अर्थ भरा पडा है। चित्त वृत्ति रुपी हठीली आखें शुद्ध चैतन्य स्वरूप प्रियतम की ओर लगरही है।

विरहोद्रेक व अनुभव का धैर्यवान **३४** **राग—वसंत***

भादु की राति काती सी वहइ, छातीय छिन छिन छीन ॥

---

*अलग अलग प्रतियो मे अलग अलग राग है। 'अ' प्रति मे 'नटमलार' 'आ' प्रति मे 'वसत,' 'इ,उ' और मुद्रित प्रतियो मे 'धमाल' है।

प्रीतम सवी छबि निरख कइ, पिउ पिउ पिउ पिउ कीन ।
वाही चवी चातिक करै, प्राण हरण परवीन ।।भा०।।१।।
इक निसि प्रीतम, नाउकी, विसरि गई सुधि नीउ ।
चातक चतुर चिता रही, पिउ पिउ पिउ पीउ ।।भ०।।२।।
एक समइ आलाप कै, कीन्हइ अडानै गाव ।
सुघर पपीहा सुर धरइ, देत है पीउ पीउ तान ।।भा०।।३।।
रात विभाव विलात ही, उदित सुभाव सुभानु ।
समता साच मतइ मिलै, आए 'आनदघन मानु ।।भा०।।४।।

पाठान्तर—छातीय = छाय (अ), आ छातीय (आ) छिन = छिन्न (उ)। सवी छवि = छवि सवि (इ) छवि सव (उ)। निरख कइ = निरखि के हो (इ), निरखि कहै (उ)। 'पिउ' शब्द 'अ' प्रति मे तीन बार ही है। चवी=वाची (अ), वची (*) विच (बु वि)। चातिक=चातक (इ)। करै=करइ (अ), करैहो (इ उ)। हरण = हरै (उ)। परवीन = परचीन (उ)। चिता = विना (बु वि)। पिउ पीउ = पिउ२ पीउ (अ)। समइ = सामो (इ), समै (उ)। कै = कइ (अ), कै हो (इ), के है (उ)। कीन्हइ = कीन्हे (अ), कीनै (इ उ)। पपीहा = बपीहा (अ आ)। धरइ = धर हो (इ उ)। देत है = देत हइ (अ), देत हे (इ), देत हो (उ) पीउ पीउ = पिउ पिउ (अ) पीऊ पीऊ (इ)। रात = राति (आ)। ही = है (आ), ही हो (इ उ)। मतइ मिलै = मतइ मिलइ (अ), मतै मिलै हो (इ उ)। आए = आइ (अ)।

शब्दार्थ—काती = कटार, करोत, आरा। वहई = वहती है, लगती है। छातीय = सीना, छाती। छिन छिन = क्षण क्षण मे। छीन = क्षीण करती है, छील डालती है। चवी = कथन, वोली, शब्द। नाउकी = नाम की। विसरि गई=भूल गई। सुधि = स्मृति। नीउ = नीव से ही, मूल से ही, विल कुल ही। आलापकै = आलापलागा कर। अडाने = आडे समय पर, बेवक्त, दुख के समय पर। (यह मराठी शब्द है)। रात विभाव विलात ही = विभाव

रुपी रात्रि के विलीन होने पर। उदित सुभाव सुभानु = स्वभाव रुपी सूर्य का उदय होगा। साच मतइ = सच्चे हृदय से, सचमुच, सत्य ही, सम्यक् ज्ञान पूर्वक। मानु = मानो, जानो।

अर्थ—सुमति कहती है कि प्रिय चेतन स्वामी की विभाव दशा रूप भाद्रपद की घनघोर अधेरी रात्रि मेरी छाती को क्षण-क्षण मे करोत के समान छेद रही है—विदीर्ण कर रही है।

प्रिय चेतन की छटा (शोभा) देखकर हृदय प्रेम से विभोर हो उठता है और मुख से "पिया, पिया" शब्द निकल पडता है। पपीहा भी 'पिउ पिउ' शब्द ही बोला करता है। इससे विरहणी को पति की स्मृति ताजा हो जाती है। इसलिए कवियो ने उसे (पपीहे को) वियोगनियो के प्राण हरण करने मे चतुर कहा है ॥१॥

एक रात्रि को प्रियतम के ध्यान मे मै ऐसी तल्लीन हुई कि प्रियतम के नाम की स्मृति ही खो बैठी। हे चातक! पिउ पिउ पिउ की ध्वनि मे क्या चेतावनी दे रहा है? मेरे हृदय मे तो पिउ (पति) ही बस रहा था, मुझे तो पति ही का ध्यान था और पति ही का विचार था, केवल मुख मे पति का नाम नही था ॥२॥

ध्यान मे बहुत बार ऐसी समाधि लग जाती है और दीर्घ अभ्यास मे इस ही भांति ध्येय और ध्यान की एकता सिद्ध होती है, फिर ध्याता, ध्यान और ध्येय ये तीनो एक रूप हो जाते है।

ऐसे आडे (दुःख) के समय किसी ने अलाप लगाकर गायन किया। जब ध्यान टूटा तो मालूम हुआ कि चतुर पपीहा मुझे ध्यान मग्न देखकर 'पिउ पिउ' की तान लगा रहा है ॥३॥

सुमति के साथ यह तान पूरने वाला मन के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? मन और बुद्धि जब एक दिशा मे कार्यरत होते है तो सफलता निश्चित है।

सुमति को-मन के इस परिवर्तन से—अनुमान होता है कि विभाव दशा रूपी सूर्य उदय होने वाला है जिससे आनद के समह चेतन सचमुच स्वेच्छा से आकर मुझमे आ मिलेगे ।।४।।

आत्मानुभव रस, विरहोद्रेक, ३५ वसंत-धमार
व सखि का धैर्यदान

साखी—आतम अनुभव रस कथा, प्याला पिया न जाइ ।
मतवाला तो ढहि परै निमता परै पचाइ ।।*

छबीले लालन नरम कहै, आली गरम करत कहा बात ।।
मांके आगइ मामू को, कोइ वरन न करत गवारि ।
अजहू कपट के कोथरा, कहा कहै सरधा नारि ।।छबी०।।१।।
चौगति माहेल न छारहीं, कैसे आए भरतार ।
खानो न पीनो वात मै हसत भानत कहा हार ।।छबी०।।२।।
ममता खाट परै रमै, ओनीदे दिन रात ।
लैनो न दैनो इन कथा, भोरे ही आवत जात ।।छबी०।।३।।
कहै सरधा सुनि सामिनी, एतो न कीजै खेद ।
हेरइ हेरइ प्रभु आवही, वढे 'आनन्दघन' मेद ।।छबी०।।४।।

---

*श्री ज्ञानसारजी ने इस साखी को अलग रखा है । यह आनन्दघनजी के मर्म को समझने मे एक ही है । इन्होने 'आनन्दतघ' चौबीसी पर बडा ही मार्मिक टव्वा लिखा है । इन्होने 'आनन्दघन बहुत्तरी' पर भी टव्वा लिखा है । केवल १४ ही पदो पर टव्वा मिलता है । या तो इन्होने १४ कठिन पदो पर ही टव्वा लिखा है या और पदो का टव्वा नष्ट हो गया हो । लोग इन्हे लघु आनन्दघनजी कहते थे ।

पाठान्तर—ढहि = ढाई (आ)। परै = परेइ (आ)। निमता परै पचाइ = निमिता परिचाइ (आ), निमता परे पचाय (इ उ)। आली = आलीरी (इ उ)। कहा वात = अहवान (उ)। गवारि = गवार (अ), गिवार (इ), गमार (उ)। कोथरा = कोथेरा (उ)। नारि = नार (इ,उ)। चौगति = चउगति (अ), 'इ' प्रति मे पद सख्या दो नही है। 'पीनो शब्द' के आगे वु वि प्रतियो मे 'इन' शब्द और है। श्री ज्ञानसारजी महाराज के टव्वे मे भी 'इन' शब्द है। रमै = रमैहो (आ)। ओनीदे = दिन दिन (आ), ओनीदे (अ), ओनीदै (इ) ऊनीदे (उI) उलीमदे (उII), और निदे (वि वु, क)। कथा=जथा (उ)। कहै = कहइ (आ)। सामिनी = स्यामिनी (अ), सामिनी (इ)। हेरइ हेरइ = हेरै२ (इ,उ क,वु), हरै हरै (वि)। वढै = वढइ (अ), वदे (वु क)। (पद दूसरे मे)—हार = हाड (वु,क वि)।

शब्दार्थ—रस कथा = सरस कथा। मतवाला = मस्त, मताग्रही। ढरि परै = लुढक पडता है। निमता = निर्ममत्वी, मस्त न होने वाला। छबीले = शोभायमान। लालन = पति, आत्मा। गरम करत कहा वात = किस लिये मुझे गरम करती है, क्रोध दिलाती है। कोथरा = थैला। न छारही = नही छोडती है। हसत = हँसी करके। भानत कहा = किस लिये तोडता है। हार = हाड, हड्डी।

अर्थ—आत्मानुभव रूप रस कथा का प्याला पिया नही जा सकता, इसे पीना अत्यन्त दुष्कर है। जो मताग्रही लोग है जिन्हे अपने-अपने मत का महत्व है, जो सत्य को न पकडकर अपने मत का दुराग्रह रखते हैं अथवा सासारिक मोह माया मे पडे हुए है, वे तो इस प्याले को पी नही सकते, अथवा पीकर लुढक जाते है और जो मताग्रह से रहित है—सासारिक वातो से जिन्हे प्रीति नही है, जो मेरा, वह सच्चा, यह न समझकर, सच्चा जो मेरा, ऐसा समझते हैं, वह इस आत्मानुभव रस कथा का प्याला पीकर पचा लेते है—जीवन मे उतार लेते है और अपनी आत्मा मे तल्लीन हो जाते है। कोई इस

रस का इच्छुक आता है तो उसे भी पान करा देते है वरन् अधिकतर आत्मानद मे ही मग्न रहते है। ऐसी अवस्था मे जनसाधारण को आत्मानुभव रूप रस वार्ता का पान दुर्लभ ही है ।।साखी ।।

सुमति और श्रद्धा मे वार्ता हो रही है। सुमति कहती है—हे श्रद्धे ! तू छबीले लाल को–मेरे पति चेतन को नरम कहती है और शास्त्र की साक्षी भी देती है कि आत्मा महा समरसी है पर यह तो सब निश्चय नय की बात है, किन्तु जहाँ तक विभाव दशा है वहाँ तक तो यह कषायो से तप्त है–गरम है। हे सखि ! बता, छबीले आत्माराम का मोह-ताप रूप गरम बात करने का अन्य क्या कारण है ? हे सखि ! मा के सामने मामा का–मा के भाई का गुण-दोष वर्णन कोई गँवार (मूर्ख) ही किया करता है क्योकि भानजे की अपेक्षा उसकी बहिन उसे अधिक जानती है। इसी ही भाति हे श्रद्धे ! मै तेरी अपेक्षा अपने पति के गुण अधिक जानती हू। तेरा तो प्रत्येक बात पर विश्वास करने का स्वभाव सा हो गया है पर मै गुण-दोष का भली भाति परीक्षण करती हू। वह नरम-गरम जैसे भी है, मै अच्छी तरह जानती हू। अरे भोली ! वह अब भी कपट का थैला है। तू उसका सर्व विरति रूप देखकर उन्हे नरम कह रही है, यह तेरी भूल है। वे अब भी कपट (कषाय आदि) की गठरी बाधे हुए है। इसलिये हे श्रद्धे ! तू अपने स्त्री सुलभ स्वभाव वश ही मुझे बार-बार यह कह रही है कि छबीले लाल नरम है। मुझसे उनके लक्षण कहा छिपे है। तू तो विश्वास करना जानती है। परीक्षा करना तूने सीखा ही नही, इसलिये तू मेरे बिना अन्धी है। ससार मे मेरे अभाव मे तू अन्धश्रद्धा कहलाती है। यह बात सुन, श्रद्धा अब क्या कहे ।।१।।

हे श्रद्धे ! मेरे भरतार—छबीले लाल चतुर्गतिरूप महल को छोड नही रहे है फिर मेरे पास कैसे आ सकते है। इन विरह की

वातो मे मुझे खाना पीना कुछ अच्छा नही लगता है। हे सखि! 'लाल नरम है' इस तरह हँसी करना मेरी हड्डियो को चकनाचूर करना है। पति वियोग मे रुधिर मास तो पहिले ही जाता रहा, तेरी इस हँसी से अव हाडो का नाश हो रहा है ॥२॥

सुमति कहती है—मेरे लाल (पति) रात दिन ममता की सेज (शय्या) पर क्रीडा करते हुए सुख मना रहे है फिर भी उनीदें ही रहते है अर्थात् रात दिन माया मे लिप्त रहने से कभी तृप्त नही होते, हमेशा अतृप्त ही बने रहते है।

कई प्रतियो मे 'औरनिंदे दिन रात' पाठ है, जिसका अर्थ है—ममता की सेज मे अत्यन्त लुब्ध है, दिन रात उसी मोह निद्रा मे पडे रहते है।

इन बातो मे कुछ लेना देना नही है अर्थात् ये सब बातें व्यर्थ है। प्रात काल होता है और चला जाता है अर्थात् काल (समय) यो ही बीता जा रहा है ॥३॥

श्री ज्ञानसारजी ने इस तीसरे पद का रहस्यार्थ किया है उस का सार यह है—विभाव रूप रात्री के जाने पर स्वभाव रूप सूर्य के उदय होने से ही चेतन देव आवेंगे। हे सखि श्रद्धे! तेरा यह कहना कि 'लाल' नरम है, अभी आवेंगे, इस बात मे कुछ सार नही है—कुछ लेने देने जैसी बात नही है ॥३॥

सुमति को इतनी अधीर देखकर श्रद्धा उसे आश्वस्त करती है कि हे स्वामिनी! तनिक मेरी बात सुनो, आप इतना खेद न करो। आनन्दधाम आत्माराम उद्यम करने से अवश्य आवेंगे। आप यो शोक करके बैठी रहोगी तो कुछ नही होगा। आप ममता की अनुपस्थिति (मदता) में चेतनजी के पास जावो, उधर की निस्सारता दिखाओ। इस प्रकार प्रमाद त्यागकर सर्वदा पुरुषार्थ करती रहोगी

तो शनैं शनैं (धीरे धीरे) चेतन निजस्वरूप मे अवश्य आजावेगे। आपकी सफलता धीरे धीरे उद्यम मे ही है। इस प्रकार स्वरूपानन्द रूप-मेद (मोटापन) की वृद्धि होगी अर्थात् आपसे (सुमति से) प्रेम बढता जावेगा ॥४॥

मनुहार व प्रिय मिलन ३६ राग--गौडी

रिसानी आप मनावोरे, बीच बसीठ न फेर ॥
सौदा अगम प्रेम का रे, परिख न बुझै कोइ।
लै दै वाही गम पडै प्यारे, और दलाल न होय ॥ रि०॥१॥
दोइ बातां जियकी करउ रे, मेटोन मनकी आट।
तन की तपत बुझाइयै प्यारे, वचन सुधारस छांट ॥रि०॥२॥
नेक कुनजर निहारियै रे. उजर न कीजै नाथ।
नेक निजर मुजरइ मिलै, अजर अमर सुख साथ ॥रि०॥३॥
निसि अंधियारी घन घटारे, पाउं न वाट के फंद।
करूणा कर तो निरवहु रे देखु तुझ मुख चंद ॥रि०४॥
प्रेम जहा दुविधा नही रे, नहि ठकुराइत रेज।
"आनन्दघन" प्रभु आइ विराजै, आप ही समता सेज ॥रि०॥५॥

पाठान्तर—आप = आय (उ)। मनावोरे = मनावउरे (अ)। वसीठ = वसीढि (उ)। फेर = फेरु (अ)। फेरा (इ)। अगम = आगम (अ)। परिख = परीख (अ), पारख (इ)। कोइ = कोय (इ उ)। लै ''प्यारे = लै दै या ही गम पडइ प्यारे (आ), ले दे वाही गम पडेरे (इ उ)। और = और (आ)। होइ = होय (इ उ)। दोई = दो (इ) दोय (उ)। वाता=वात (आ), वतइ (अ), वाता (इ उ)। जिय = जियै (आ), जी (इ), जीय (उ)। करउरे=करोरे (उ)। मेटोन = मेटउन (अ), मेटो मनकी (इ उ)। तपत = तपति (आ)। बुझाइयै

= वुझाइयइ (अ), वुझाइ (इ) (इ), वुझाइएरे (उ)। नेक कुनजर = नेकु कुन। जरि (आ), नेकुसुनजर (अ), गेक नजर (इ), नेक निजर (उ)। निहारियै रे = निहारीयइरे (अ, आ), निहारिएरे (उ)। कीजै = कीजइ (अ, आ)। मुजरइ मिलै = मुजरा न लै प्यारे (इ), मुजरो मिलेरे प्यारे (उ)। निसि = निस (अ) निशि (उ) अ धियारी = अंधिआरी (अ)। अधारी (उ)। फद = फदा (आ) फाद (अ)। निरवहु रे = निरवहो (व, इ)। चद = चाद (अ)। प्रेम = पेम (अ.इ) जिहा = तिहा (उ)। नही = न (आ)। नहि""रेज मेट कुराही तरेज (इ), नही ठकुराइ तेज (उ)। समता = सुमता (इ)

शब्दार्थ—रिसानी = क्रोधित, रूसी हुई रुष्ट हुई। मनावो = राजी करो, प्रसन्न करो। वसीठ=दूत, दलाल, मध्यस्थ। न फेर=न फिर, फेरना नही, लाना नही। अगम = अगम्य। वुझै = जानता हैं परिख = परीक्षा। वाही = उसको ही। गम = खवर। आट = आटी, उलजन, गाठ। छाट = छिडक कर, डालकर। नेक = तनिक, थोडी सी। उजरे = उष्ण, विरोध। मुजरइ=अभिवादन करते हुये। वाट = मार्ग, राह। निरवहु = निर्वाह करलू, पालन करू।ठकुराइत = वडप्पन। रेज = जरा भी रजमात्र भी।

अर्थ—माया के फेर मे पडे हुये चेतन को अपनी गलती का कुछ भान होता है। वह श्रद्धा से समता को प्रसन्न करने को कहता है। श्रद्धा उसको वहुत ही सुन्दर उत्तर देती हैं। वास्तविकता यह है कि चेतन जव स्वय राग-द्वेष विषम भाव छोडेगा तव ही उसे समत्व प्राप्त होगा। राग द्वेष छोडने से ही आत्म साम्राज्य मिलता है। श्रद्धा होने पर भी जव तक ये विषम भाव छोडे नही जाते तव तक मात्र यह विश्वास रखने से कार्य सिद्धि नही हो सकती। जीव को पुरुषार्थ करके रागादि भाव न्यून करते हुये समत्व प्राप्त करने का प्रवल पुरुषार्थ करना चाहिये। योगीराज ने श्रद्धा के मुख से स्वय पुरुषार्थ करने का उपदेश दिया है। ममता वश वह अपनी समता को स्वय भूला है। अव उसे स्वय ही प्रसन्न करना होगा।

श्रद्धा कहती है—हे चेतनराज ! रुष्ट हुई समता को आप ही मनावो–प्रसन्न करो। पति को अपनी पत्नी के व अपने प्रेम के बीच किसी विशिष्ठ (मध्यस्थ) पुरुष को भी नही लाना चाहिये क्यो कि यह प्रेम का सौदा (व्यापार) बडा ही अगम्य है—बडा गहन है। इसे कोई विरला ही पुरुष परीक्षा पूर्वक समझ पाता है। जो हृदय लेता है व देता है। वही इसके मर्म को जानता है। अहो चेतनराज ! क्याअपनी पत्नी के पास कोई दूती या दलाल भेजे जाते है ? अतः आपइस फेर–चक्कर मे न पडे, अपनी पत्नी के लिये किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नही है। दूती व दलाल तो उप-पत्नियो के लिये होते हं ॥१॥

श्रद्धा फिर कहती है—हे चेतनराज ! आप यह न समझो कि सुदीर्घ काल से समता से अलग रहे हो, वह कैसे प्रसन्न होगी ? आपको ध्यान रखना चाहिये कि समता महान पतिव्रता है, वह पति का कभी तिरस्कार नही कर सकती है, न कभी उसको निराश कर सकती है। चेतन फिर प्रश्न करता है कि मुझे क्या करना चाहिये। उत्तर मे श्रद्धा सक्षेप मे कहती है कि हे चेतनराज ! आप अपने मन की आट–ग्रथी को क्यो नही मिटा कर समता से अपने हृदय की दो दो बाते कर लेते ? अथवा आप अपने जीव के सवध मे दो बाते करिये। प्रथम तो यह कि आप अपने मन की परभाव रमण रूप ग्रंथी को खोल डालिये और दूसरी यह कि विषय काषाय जन्य शारीरिक तपत को (अग्नि को) स्वरूप ज्ञान रूपी अमृत रस की बु दे छिडकर बुझा डालिए–शात कर दीजिये ॥२॥

चेतन फिर श्रद्धा से प्रश्न करता है—इन पचेन्द्रिय के विषयो को कैसे छोडा जाय। परभाव रमणता कैसे दूर हो, यह कपाय जन्य मानसिक ताप कैसे शात हो ?

उत्तर मे श्रद्धा कहती है—हे चेतनराज ! आप अनन्त शक्तिशाली है। इस परभाव रमणता व विपय वासना की ओर थोडी भी

टेढी दृष्टि रखोगे तो हे स्वामी ! ये कुछ भी विरोध न करके अलग हो जावेंगी अथवा हे नाथ ! इन विषय वासनाओ को कुदृष्टि से देखिए, इसमे आप कुछ भी उज्र न करे, ये सब पलायन कर जावेंगी। आपकी शक्ति के आगे कौन ठहर सकता है। फिर आपकी तनिक दृष्टि मात्र से ही समता अक्षय व एक रस रहने वाले अव्याबाध सुख के साथ आपका अभिवादन करती हुई, आमिलेगी ॥३॥

श्रद्धा द्वारा यह सवाद पाकर समता कहती है-हे सखि ! स्वामीनाथ ने स्मर्ण किया है तो मैं तैयार ही हू किन्तु अंधेरी रात है और घनघोर घटा छाई हुई है, ऐसे समय मे मैं मार्ग कैसे प्राप्त करू हे स्वामी ! यदि आप ही दया करें तो मेरा निर्वाह हो जावे और आपके चन्द्र मुख का दर्शन हो जावे ॥४॥

योगीराज ने यहा अत्यन्त गम्भीर व मार्मिक बात कही है। उक्त पद का तात्पर्य यह है कि चेतन के पुरुषार्थ से ही सम भाव प्राप्त हो सकता है। अविरति रूप रात्रि प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यान कषयो की घनघोर घटा मे अप्रमत्त मार्ग कैसे जाना जा सकता है। चेतन जब तक अविरति परिणाम, प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यान कषायो को न त्यागे तो समता कैसे प्राप्त हो सकती है।

समता का यह सदेश चेतन को तनिक भी नही अखरता है। मेरे बुलाने पर आप न आकर मुझे ही वहा बुलाती है ऐसी द्विधा चेतन को थोडी सी भी नही होती है। जहा प्रेम होता है वहा जरा भी द्वैत भाव नही होता। बडप्पन का तनिक भी अभिमान नही होता। आनन्द के समूह चैतन्य प्रभु स्वय ही समता की सेज (शय्या) पर आ विराजे अर्थात् अविरति परिणामो को त्याग कर अप्रमत्त भाव ग्रहण कर लिया ॥५॥

प्रियतम का समाचार व मिलन ३७ राग--बसंत, धमाल

पूछीइ ी खबरि नई, आए विवेक वधाई ॥
महानद सुखकी वरनिका, तुम्ह आवत हम ।
प्रान जीवन आधार कुं, खेम कुशल कहो बात ॥पू०॥१॥
अचल अबाधित देव कुं, खेम सरीर लखत।
विवहारी घट बढ़ि कथा, निहचै शरम अनत ॥पू०॥२॥
बध मोख निहचै नहीं, विवहारी लखि दोइ।
कु खेम अनादि ही, नित्य अबाधित होइ ॥पू०॥३॥
सुनि विवेक मुखते नई, वानी अमृत समान।
सरधा समता दोइ मिली, लाई " " तान ॥पू०॥४॥*

पाठान्तर—पूछीइ = पूछीयइ (अ), पूछीये (इ)। खबरि = खबर (इ उ)। वधाई = वधाय (इ) वरनिका = वरनिकारे (उ)। नोट—उ प्रति मे सब ही पक्तियो मे प्रथम विराम मे 'रे' है। आधार कु = आधार की ही (इ)। देवकु = देवकु हो (इ)। बढि = वढ (इ)। वध (क बु वि) कथा = कला (उ)। निहचै = निहचइ (इ) शरम = सरम (इ) परम (उ)। मोख = मोक्ष (उ)। निहचै = निहचइ (अ)। विवहारी = विवहारै (इ) लखि = लखी (अ) लख (इ)। मुख = सुख (आ)। दोइ = दुइ (अ), दो (इ), दोय (उ)। मिली= मिलि (अ इ), मिलैरे (उ)। तान = तान (इ) ताम (उ)।

शब्दार्थ—महानद = पूर्णानद। वरनिका = वर्णन। गात = गाती हैं, शरीर। अचल = जो चलायमान न हो, स्थिर। अवाधित = जिसे कोई वाधा (रुकावट) न हो—पीडा न हो। खेम = क्षेम कुशल। विवहारी = व्यवहार नय से। घट वढि कथा = घटने वढने की वात। निहचै = निश्चय से। शरम = शाति, समभावी। श्री ज्ञानसारजी ने शरम के स्थान पर समर पाठ रखा है और उसका अर्थ शात किया है।

---

*श्री ज्ञानसारजी ने इस पद पर टब्बा लिखा है।

अर्थ—श्रद्धा कहती है—हे सखि समता ! विवेक महोदय पधारे है। उनको वधाले—स्वागत करले और कोई नये समाचार हो ता पूछले।

विवेक के पास जाकर कहती है कि आपके आगमन से हमे व हमारे मन व शरीर को जो महा आनद प्राप्त होता है, उस महान सुख का वणन नही किया जा सकता है। आप प्राणनाथ, प्राणधार के कुशल समाचार वताइये ॥१॥

समता का प्रश्न सुनकर विवेक महोदय उत्तर देते है—अचल व अवाधित देव के तो सर्वदा ही कुशल-क्षेम देखी जाती है। वास्तव मे तो उनका असख्य प्रदेशात्मक शरीर तो वाधा रहित निश्चल है। व्यवहार से घटाव वढाव की, सुख-दुख की, लाभ अलाभ की वात है किन्तु स्वरूप से तो अनन्त शाति विद्यमान है ॥२॥

निश्चय से तो वध मोक्ष नही है, व्यवहार से ही वध और मोक्ष-इन दोनो का विचार देखा जाता है—कहा जाता है। जव निश्चय से वध-मोक्ष है ही नही, तव अनादि से आनन्द ही आनन्द है—क्षेम कुशल है, अवाधितपन है। यह आत्मदेव शाश्वत है, वाधा रहित है, फिर वधन कैसा ? दुख कैसा ? सकट कैसा ? पीडा कैसी ? अपने आपको—अपने आत्मा को भूले हुवो के लिए ही यह सव विघ्न है। श्रीमद्राज चन्द्र जी ने कहा है—

छूटेदेहा ध्यासतो, नहि कर्ता तु कर्म।
नहि भोक्ता तु तेहनो, श्रेज धर्म नो मर्म ॥११५॥
श्रेज धर्मथी मोक्ष छे, तु छे मोक्ष स्वरूप।
अनत दर्शन ज्ञान तु, अव्यावाध्य स्वरूप ॥११६॥

(आत्मसिद्धि)

देह को ही सब कुछ समझनेवाले विभाव परिणामियो को ही ससार बधन है। आत्मा की ओर लक्ष देने वाले तो साता -असाता से परे (दूर) रह कर अव्याबाध सुख के अधिकारी होते है ॥३॥

इस प्रकार विवेकके मुख से यह अमृत समान नवीन वाणी सुन कर श्रद्धा और समता दोनो ने मिलकर आनद स्वरूप अपन स्वामी आत्मदेव को निज स्वरूप की ओर खेच कर ले आई ॥४॥

प्रिय आगमन पृच्छा, व परिवार सम्मेलन **३८** **राग—वसंत,धमाल**

सलूने साहिब आवैंगे, मेरे वीर विवेक कहौन सांच ॥
मोसू साच कहो मेरी सु, सुख पायौ कै नाहि ।
कहानी कहा कहु उहा की डोलै चतुरगति माहि ॥स० ॥१॥
भली भई इत आवही, पचम गति की प्रीति ।
सिद्धि सिद्धि रस पाक की, देखै अपूरब रीति ॥स० ॥२॥
वीर कहै एतो कहा, आए आए, तुम्ह पास ।
कहै सुमत परिवार सौ, हम है अनुभवदास ॥स० ॥३॥
सरधा सुमता चेतना चेतन अनुभव वाहि ।
सकति फौरि निज रूप की, लीनै 'आनन्दघन' मांहि ॥स० ॥४॥

पाठान्तर—मेरे = मेरे आलीरी (इ उ)। सु = सौ (अ)। उहा की = वहा की (आ), कहा कहूं कहानी ऊही की (उ)। आवही = आवही हो (इ), आवही हूं (उ)। सिद्धि पाक की — सिद्धि सिधत रस पाक की हो (इ), सिद्ध सिद्ध रस पाक की ही (उ)। कहा = कहो (इ), कहा हौ (उ)। आए आए = ममता आए (उ)। पास = पासि (आ)। सुमता = समता (अ इ)।

सौ = सु (अ), सौहो (इ), सु हो (उ)। चेतन = चेतना हो (इ उ), चेत (आ)। वाहि = आहि (इ उ)। सकति = सगत (इ)। रूप की = रूप की हो (इ उ)। लीनै = लीजै (उ)।

शब्दार्थ –सलूने = सुन्दर। मेरी सु = मेरी शपथ है। उहा की = वहा की। चतुरगति = चारगति (नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव) पचमगति = मोक्ष। सिद्धि सिद्धि रसपाक की = पारे (पारद) के रस की सिद्धि, चन्द्रोदय, मकरध्वज आदि रस को ६४ प्रहरी अग्नि देकर जो सिद्ध किया जाता है उसे रसपाक की सिद्धि कहते हैं। सोना (स्वर्ण) पारा व गधक का एक-एक अपूर्व ही रूप वन जाता है। यह योग बहुत प्रभावशाली होता है। मृत्यु के मुख मे पडे हुए को भी थोडे समय के लिये मृत्यु मुख से बचा लेना है। कहा = कथा। वाहि=वही पर। सकति = शक्ति। फोरि = फोडकर, उपयोग कर, लगाकर।

अर्थ—सुमति अपने भाई विवेक से पूछती है—मेरे सलोने साजन (प्रियतम) आत्माराम यहाँ आवेंगे या नही ? हेभाई विवेक! सच-सच बताओ आपको मेरी शपथ है, मुझसे सत्य कहो कि वहाँ, उन्हें कुछ प्राप्त हुआ क्या ?

सुमति के वचन सुनकर प्रत्युत्तर मे विवेक कहता है—हे सुमते! वहाँ की कहानी तुम्हें क्या कहू कहने जैसी नही है। वहाँ वे (चेतन) माया के वश होकर चारो गतियो मे भटक रहे है ॥५॥

विवेक फिर कहता है कि यह अच्छा हुआ कि अब आत्मराम इधर तेरे सयम रूप महल मे आवेंगे। उधर जाना-चारो गतियो मे भटकना है औरइधर आना मोक्षरूप पचम गति की प्रीति है। हे सुमते! तुम्हारी प्रीति स्वरूपानुभव रूप परम सिद्धि रस के परिपाक की सिद्धि है। जो समता को धारण करताहै—इसको वरण करता है वह तदाकार वृत्ति रूप अपूर्व परिपक्व अवस्था को प्राप्त करता है।

श्री ज्ञानसार जी महाराज के टब्बे मे सिद्धि सिद्धात पाठ है। उसका अर्थ किया है—सिद्धान्त से जो सिद्ध हुआ है ऐसे स्वरूपा-

नुभव सबधी जो परम रस है उसके परिपाक की पूर्णता प्राप्ता करता है अर्थात आत्म स्वभाव के अनुभव से आत्म स्वरूप की तदाकार वृत्ति की परिपाक अवस्था को अपूर्व रीति से प्रत्यक्ष करता है ॥२॥

विवेक सुमति से कहता है— मैं तुम को केवल इतना ही कहता हू कि तुम्हारे भरतार चेतन तुम्हारे पास आ गये है। अरी भोली! इधर उधर क्या देखती है वह तेरे ही है। जब तू सुमति से मति होकर नाना प्रकार की कल्पना जल्पना मे रहती है, वह तेरे से दूर प्रतीत होते है अन्यथा वह तेरे पास ही है। विवेक से ऐसे मर्म की बात सुनकर सुमति अपने परिवार—श्रद्धा, क्षमा, मार्दव आदि से कहती है कि अपन सब वास्तव मे अनुभव के दास है ॥३॥

श्रद्धा,सुमति और चेतना वही होती है जहाँ चेतन अनुभव होता है। अपनी स्वरूप सबधिनी शक्ति लगाकर यह सारा परिवार ज्ञानानद की सघनता मे लीन हो गया अर्थात आनदघन रूप हो गया ॥५॥

जब तक चेतन को अपनी शुद्ध शक्तियो का वियोग है उसे परमानद प्राप्ति नही हो सकती।

उपालम्ब व प्रीतम प्राप्ति ३९ राग—बसंत-धमाल

विवेकी वीरा सह्यो न परैं वरजो न आपके मीत॥
कहा निगोरी मोहनी मोहक लाल गँवार।
वाके घर मिथ्या सुता, रीझ परे तुम्हे यार ॥ वि० ॥१॥
क्रोध मान बेटा भए, देत चपेटा लोक।
लोभ जमाई माया सुता, एह बढ्यो परिमोक ॥वि० ॥२॥
गई तिथ कौ कहा बाभण पूछे समता भाव।
घर को सुत तेरे मतै, कहा लु करू वढाव ॥वि० ॥३॥

तब समता उदिम-कियो, मेट्यो पूरब साज।
प्रीति परम सुं जोरिकैं, दीन्हो 'आनदघन' राज ॥वि० ॥४॥

पाठान्तर—विवेकी = विवेक (आ)। सह्यो = सहनो (उ)। परै = परि (आ), परैआलीरी (इ उ)। आपके = सबके (उ)। मोहनी = मोहनीहो (इ उ)। मोहक = मोह कलाल (आ)। गँवार = गिमार (इ)। घर = पर (इ) सुता = सुताहो (इ उ)। तुम्ह = कहा (इ)। भये = भयेहो (इ उ)। जमाई = जवाई (आ) सुता = सुताहो (इ उ)। परिमोक = परिकोक (इ), परिफोक (उ)। तियकी = तिथिको (अ), तिथकू (उ), तिथ (इ)। वाभणैं = वाभणाहो (इ), वाभणाहो (उ)। मतै = मतैहो (इ-उ)। कहालु = कहालों (इ)। करू = करत (इ)। कियो = कियोहो (इ उ)। प्रीति = प्रीतम (उ)। जोरिकै = जोरिकैहो (इ उ)। दीन्हो = दीनो (अ), लीनो (इ)।

शब्दार्थ—वीरा = भाई। सह्यो न परै = सहन नही होता है, बरदाश्त नही होता है। वरजो = रोको। मोहनी = मोहनीय कर्म प्रकृति। मोहक = मोहित करने वाला गुण, लुभावना। लाल = चेतन रूप। मिथ्यासुता = मिथ्यात्व मोहनी नामक कन्या। यार = मित्र। चपेटा = तमाचा, थप्पड। परिमोक = परिवार, (टव्वेकार श्री ज्ञानसारजी के अनुसार) विस्तार, परमपद, मोक्ष। गई तिथ = गये हुये मुहूर्त को। वाभणैं = ब्राह्मण, ज्योतिषी। घर को सुत = स्वरूप घर का पुत्र, ज्ञान गुण। करू वढाव = इससे अधिक वढाकर क्या कहूं।

अर्थ—सुमति विवेक से कहती है—हे विवेक भाई! मुझे अब सहन नही होता है। स्त्री को सौत का दुख मृत्यु से भी अधिक होता है। इसलिये आप अपने मित्र को रोकते क्यो नही हो?

निगोडी मोहनी का क्या माजना है—साहस है? उसमें कौन सा ऐसा मोहक गुण है? हे भाई विवेक! तुम अपने मित्र

चेतन को समझाते क्यो नही कि गवार-बुद्धहीन ही ‾स मोहनी के चक्कर मे फँसते हैं। उसका परिवार भी कोई, अच्छा नही है। इस मोहनी के मिथ्यात्व मोहनी नामक कन्या है। क्या देखकर उस पर तुम्हारे मित्र चेतन मोहित हो गये है ॥१॥

इस मोहनी के क्रोध और मान दो पुत्र है। ये दोनो ही पुत्र ससार के लोगो को प्रिय नही हैं। ये जहाँ जाते हैं, लोगो से तिरस्कृत होते है, लोग इन के थप्पडे लगाते हैं। इस मोहनी ने अपनी मिथ्यात्व परिणति रूपी कन्या का लोभ के साथ पाणिग्रहण कर दिया है। लोभ जवाई (जामाता) तथा मिथ्यात्व मोहनी के सयोग से माया नामक कन्या उत्पन्न हुई है। इस प्रकार इस मोहनी के परिवार का विस्तार फैला हुआ है। (यह बढ्यो परिमोक के स्थान पर 'यह चढ्यो परिमोक' पाठ रखा जावे तो यह अर्थ होगा— स मोहनी ने परम पद मोक्ष के अभिलाषियो पर अपने परिवार सहित चढाई कर रखी है। हे विवेक बन्धु ! मोहनी के परिवार पर तुम्हारे मित्र रीझे हुये है और व्यर्थ ही जजाल बढा रहे है। यह मुझे सहन नही होता ॥२॥

योगीराज ने इस पदमे बडे सुन्दर ढग से जीव की विभाव दशा का वर्णन किया है। कषायो का यथार्थ स्वरूप दिखाकर जिज्ञासु को चिन्तन के लिये तथा अपने सुधारके लिये सरल शब्दो मे प्रेरक सामग्री दी है।

सुमति के यह वाक्य सुनकर विवेक कहता है—हे सुमते ! विगत तिथि का मुहूर्त ब्राह्मण से क्या पूछती है अर्थात बीते हुये समय का वर्णन ज्योतिषी से क्या पूछती है। होना था, वह हो चुका। तेरे लिये यह कितना बड सौभाग्य है कि तेरा पुत्र वैराग्य तो तेरे आधीन है। उसकी प्रशसा कहाँ तक बढाकर वर्णन करू। टब्बे मे

श्री ज्ञानसारजी ने यह अर्थ किया है—'तेरे स्वरूप रूप घर का पुत्र ज्ञानगुण तेरे मत का ही है-तेरे तावे है इसलिये जब चेतन का तेरे से मिलाप होगा तब ही वह केवल ज्ञान रूप पुत्र का मुख देख सकेगा। इसलिये तू खेद न कर। चेतन कहाँ तक मोहनी का परिवार वढावेगा यदि उन्हे केवल ज्ञान रूप पुत्र का मुखदेखना होगा तो तेरे पास आना ही होगा ॥३॥

नोट—श्री ज्ञानसार जी महाराज ने 'घर को सुत' का अर्थ 'केवल ज्ञान' किया है। इसलिये तीसरे पद के अ तिम पक्ति की व्याख्या उनके अनुसार ही की गई है। हमने 'घर का सुत' का अर्थ वैराग्य किया है।

विवेक के उपदेश से समता ने आत्म रूप पति से मिलने का उपाय किया और आत्मा मे रमकर उसके सम्पूर्ण पूर्व के साथ को दूर कर दिया (छुडा दिया) अर्थात् मोहनी और उसके परिवार का साथ छुडा दिया परम तत्व आत्माराम से निरूपाधिक प्रीति जोडकर आनदघन रूप मुक्ति नगरी का राज्य दे दिया। तात्पर्य यह है कि विवेक प्राप्त होने पर आत्मा मे समत्व आ जाता है और उससे कपाय व मोह दूर हो जाता है। इससे परम पद की प्राप्ति हो जाती है ॥४॥

उपालम्ब व मिलन ४० राग–सारंग

अनुभौ तू है हितू हमारौ।

आउ उपाउ करो चतुराई, और को सग निवारो ॥अनु०॥१॥
तिसना राड भाड की जाई, कहा घर करै सवारौ।
सठ ठग कपट कुटवहि पोषत, मन मे क्यू न विचारौ ॥अनु०॥२॥
कुलटा कुटिल कुबुधि सग खेलिके, अपनी पत क्युं हारौ।
'आनन्दघन' समता घर आवै, वाजै जीत नगारौ ॥अनु०॥३॥

पाठान्तर—अनुभौ = अनुभव (इ)। तू है = तु हि (उ)। हितू = हितु (अ), हेतु (इ उ)। आउ = आय (इ)। उपाउ = उपाव (आ), उपाय (इ)। औरको = औरन (इ)। घर = घरइ सवारी (आ), घरि (उ)। मनमै विचारो = वाको सग निवारो (इ)। मे = मइ (आ)। सग = संगि (आ)। अपनी = आपनी (आ)। क्यु = क्यू (इ)।

शब्दार्थ—हितू = हितेच्छु, भलाई चाहने वाला। उपाउ = उपाय और = अन्य, माया-ममता। निवारो = दूर करो। तिसना = तृष्णा, सग्रह की लालसा। जाई = उत्पन्न हुई, पैदा हुई, पुत्री। सवारी = सँवारना, सभालना, कल्याण। सठ = शठ, दुष्ट। पौषे = पोषण करती है, पालती है। पति = पत, प्रतिष्ठा, इज्जत, विश्वास।

अर्थ—हे अनुभव ! तुम तो हमारे (मेरे व चेतन दोनो के) हितेच्छुहो—भलाई करने वाले हो। चेतन (मेरे स्वामी) के पास जाकर ऐसी चतुराई या ऐसा उपाय करो जिससे वह (चेतन) माया-ममता का सग (साथ) न करे ॥१॥

यह तृष्णा राड तो भाड की पुत्री है जो नकल करके लोगो को प्रसन्न किया करती है। इसने किसके घर मे प्रकाश फैलायाहै ? किसके घर को सजाया है ? यह तो दुष्ट, ठग, कपट आदि अपने परिवार का ही पोषण करती रहती है। इस स्पष्ट और सीधी सच्ची बात को आप मन मे क्यो नही विचारते हो, सोचते हो ॥२॥

इस कुलटा, दुष्ट, कुबुद्धि के साथ खेलकर इस के हाथो का खिलौना बनकर, आप अपनी प्रतिष्ठा क्यो खोते हो अथवा आप मे हमारा जो विश्वास है (आप हमारे हितेच्छुहो यह विश्वास, क्यो नष्ट करते हो ?) आनद के समूह चेतन समता के घर आ जावै तो विजय के नगारे बजने लगें अर्थात सब-कार्य सिद्ध हो जावे ॥४॥

प्रिया विवशता, व प्रियतम का मिलन — ४१ — राग–धन्यासिरी

वालूडी अबला जोर किसौ करै, पीउडो पर घर जाइ।
पूरव दिसि तजि पच्छिम रातडौ, रवि अस्तगत थाइ ॥वा०॥१॥
पूरण शशि सम चेतन जाणियै, चन्द्रातप स-नाण।
बादल भर जिम दल थिति आणियै, प्रकृति अनावृत जाण ॥वा०॥२॥
पर घर भमता स्वाद किसौ लहै, तन धन जोबन हाणि।
दिन दिन दीसै अपजस, बाधतो, निज मन मानै न काणि ॥वा०॥३॥
कुलवट लोपी अवट ऊवट पडै, मन महुता नै घाट।
आधै आधौ जिम जग ठेलियै, कौण दिखावै वाट ॥वा० ॥४॥
बधु विवेकं पीवडौ बूझव्यौ, वार्‌यो पर घर सग।
हेजै मिलीया चेतन चेतना, वरत्यो परम सुरग ॥वा० ॥५॥

पाठान्तर—पीउडो = पियडी (अ)। घर = घरि (अ)। जाइ = जाय (इ उ)। तजि = जप तप (इ,उ) थाइ = थाय (इ उ)। पूरण = पूरव (इ) पूनम = (व वि) जाणीयै = जाणीइ (इ उ)। नाण = भाण (इ)। अनावृत = अनाहृत (अ) भमता = भमता (आ), भमत (अ)। जोबन = योवन (इ उ) मन = जन (अ)। मानै = मानइ (अ)। लोपी = छोड (इ)। अवट ऊवट पडै = अवट उवट पडइ (उ)। नै = नई (आ)। मन महुता = मान महुआ (इ), मन मे हुआ (वि) आधै = आधइ (अ) जिम जग ठेलिये = जिम ठेलिये (इ,उ)। मिले वे जण (व वि क)। कौण = कुण (इ), कुण (उ)। दिखावै = दिखाडै (इ)। वार्‌यो = चार्‌यो (आ)। हेजै सुरग = होजइ मिलिया चेतना, वरत्यी परम सुरग (आ)। हेलै मिलिया चेनन चेतना, वरत्यो परम मुरग (अ) 'आनदघन' ममता घर आणे बाधे नव नव रग (व. वि क)।

नोट—हमारी चारो प्रतियो मे ही आनदघन जी की नाम वाली पक्ति नही है। और छपी हुई प्रतियो मे हमारी अ तिम पक्ति नही है, यह आगे शोध का विषय है। जब तक कोई अन्य प्राचीन प्रति १८ वी शताब्दी की न मिले तब तक कहा नही जासकता है।

शब्दार्थ—बालूडी = बाला, अल्प वयस्क। अस्तगत = अस्त। चद्रातप = चादनी। नाण = ज्ञान। बादल भर = बद्दलो का घिराव। दल थिती = कर्म दलो की स्थिति। आणियै = जानिये। प्रकृति = स्वभाव। अनावृत = बिना ढकी हुई, खुली। भमता = घूमते हुवे, भटकते हुये। तन = स्वरूप। हाणि = हानि। बाधतौ = बढता हुआ। काणि = मर्यादा। कुलवट = कुल की मर्यादा, वश गौरव। अवट = उलटे रास्ते। ऊवट = ऊबड खाबड, असमतल। महुता = महता, मत्री। घाट = चक्कर मे आना, वशीभूत होना। ठेलियै = धकेलना। वाट = मार्ग। बूझव्यौ = समझाया। वार्यो = छुडा दिया, अलग कर दिया।

अर्थ—बेचारी बाला स्त्री क्या जोर (अधिकार) दिखावे—किस प्रकार क्रोध दिखलाकर अपने पति को पर घर (ममताकेघर) जाने से रोके। पूर्व दिशा को त्यागकर पश्चिम दिशा से अनुरक्त सूर्य अस्त हो जाता है और अधकार छा जाता है। अर्थात्—चेतन जब समता रूपी स्व परिणति को छोडकर ममता रूपी पर परिणति मे चला जाता है तो उसका ज्ञान प्रकाश अस्त हो जाता है अज्ञानान्धकार छा जाता है ॥१॥

पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चेतन को समझना चाहिये और उस की चादनी के समान ज्ञान को जानना चाहिये। चन्द्रमा जिस प्रकार बादलो से घिर जाता है उसी प्रकार यह चेतन कर्म दलिको से आवृत्त हो जाता है - ढक जाता है ॥२॥

दूसरो के घर भटकने से क्या स्वाद मिलता है ? क्या आनद आता है ? केवल मात्र धन, योवन और शरीर की क्षति है और

दिनो दिन अपयश बढता जाता है तथा मन अपनी मर्यादा को नही मानता है। बेकाबू हो जाता है। लाज-शर्म छोड देता है ॥३॥

अपने कुल की मर्यादा लोपकर मन रूपी मत्री के चक्कर मे पडकर उल्टे और उबड-खाबड मार्ग मे–उन्मार्ग मे (बुरे रास्ते) चेतन राज जा पडा है। अन्धा मनुष्य अ धे मनुष्य का ही सहारा लेकर चले तो ससार मे रास्ता कौन दिखा सकता है। नेत्र हीन व्यक्ति यदि नेत्रवाले का साथ करे तबही वह मार्ग पार कर सकता है ॥४॥

ममता की बाते सुनकर, विवेक बन्धु ने चेतन स्वामी को समझाया और पर परिणति रूप पर घर का साथ छुडाया। उस समय चेतन व चेतना सहज ही मिलगये जिससे सहजानद रूप परम सुरग रग प्राप्त होगया।

आश्वासन व प्रियतम केलि ४२ राग–तोडी (टोडी)

मेरी तु मेरी तुं काहे डरै री।
कहै चेतन समता सुनि आखर, और देढ दिन झूठी लरै री॥
मेरी०॥१॥

एती तो हूं जानु निहचै, री री पर न जराव जरै री।
जब अपनो पद आप सभारत, तब तेरै परसग परै री॥मेरी०॥२॥
औसर पाइ अध्यातम सैली, परमातम निज जोग धरै री।
सकति जगाइ निरूपम रूप की, 'आनन्दघन' मिलि केलि करै री॥
मेरी०॥३॥

पाठान्तर—मेरी...... डरैरी = मेरीतु, मेरी तु, मेरी तु मेरी तु मेरीतु काहै डरैरी (अ उ)। कहै = कहि (इ)। समता = सुमता (इ उ)। देढ = मेढ (ड)। लरै = ररइ (ग्र)। तो = तउ (अ), ती (इ उ)। पर न =

परत (आ)। जरै = जरइ (अ)। ;पर सग = पद सग (इ)। परै = परइ (अ)। औसर = अवसर (अ)। जोग = योग (इ)। धरै = धरइ (अ)। सकति = सगति (इ)। जगाइ = जगावे (इ)। मिलिकेलि = मिलकेल (इ), पद केव (उ)। करै = करइ (अ), करी (उ)।

शब्दार्थ—झूठी = व्यर्थ, झूठमूठ ही। निहचै = निश्चय। री री = पीतल। पद = स्वरूप। सभारत = सभालेगे, याद करेंगे। परसग = प्रसग, सगति। औसर = अवसर, समय। अध्यातम = आत्मा सम्बन्धी। सैली = शैली, गीति, ढग। निरुपम = अनुपम, अनोखा। केलि = क्रीडा, आनन्द।

अर्थ—चेतन कहता है—हे सुमते! तू मेरी है, तू मेरी है, फिर क्यो डर रही है, तेरे भय का क्या कारण है? ममता का और मेरा सुदीर्घकाल का सम्बन्ध है, इसको वह (ममता) हटता हुआ–टूटता हुआ देखकर एक डेढ दिन (एक दो दिन) अर्थात् कुछ समय तक तो तुझसे मुझसे व्यर्थ ही झगडा करेगी, परन्तु तू विश्वास रख, मैने उसे अब अच्छी तरह से पहिचान लिया है। उसने मुझे बहुत भटकाया है। उसके फेर (फदे) मे मैनें अनन्त वेदनाये सही है। उसके चक्कर मे (फदे मे) मै अब नही आऊगा–नही पडूगा। इसलिये एक दो दिन मे वह निराश होकर सदा के लिये स्वत पलायन कर जावेगी ॥१॥

इतना तो मै निश्चयपूर्वक जानता हू कि चतुर जौहरी पीतल पर कभी हीरे पन्ने आदि बहुमूल्य रत्न नही जडाते है और यह भी मैं अच्छी तरह जानता हू कि तेरी ही सगति से मैं अपने स्वरूप को पहिचानता हू। (सुमति की सगति से ही चेतन अपने स्वरूप को प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बनता है) ॥२॥

आध्यात्म शैली अर्थात् जिसमे आत्मा की ओर ही लक्ष रहे, उस ही की धुन रखे और समय पर परमात्मा योग धारण करे—परमात्मपद प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार महापुरुषो ने प्रयत्न

किया था उसे यथार्थरूप से जानकर, उसी प्रकार आचरण करे। इस प्रकार परमात्मपने का योग धारण कर अपनी अनुपम शक्तियो को जो सुदीर्घ काल से सुप्त पडी है, उन्हे जागृत करे। अपने मे गुप्त वीर्य शक्ति से ज्ञानानद प्राप्त कर समत्व भाव मे रमण करे ॥३॥

नोट—जब जीव पुरुषार्थ करते-करते थक जाता है तब उसे काल लब्धि का सहारा लेना ही पडता है। समय पर ही सब कुछ होता है। समय पर ही सूर्य उदित होता है, समय पर ही वर्षा होती है, समय पर ही सर्दी व गर्मी पडती है। इस प्रकार काल का महत्व सिद्ध होता है। ज्ञानियो ने पाच कारण मिलने पर कार्यसिद्धि बताई है। वे पाच समवाय कारण ये है-(१) काल, (२) स्वभाव, (३) नियति, (४) पूर्व कृत्य और (५) उद्यम। काल लब्धि का परिपाक कब होगा यह तो सर्वज्ञ के सिवाय कोई नही जानता। इसलिये जीव को पुरुपार्थ करने मे कभी कमी नही करनी चाहिये।

प्रियतम को उपालम्ब व प्रार्थना   **४३**   **राग—सारंग**

अनुभौ हम तो रावरी दासी।
आइ कहाँ ते माया ममता, जानु न कहा की वासी ॥अनु०॥१॥
रीझि परै वाके सग चेतन, तुम्ह क्यु रहे उदासी।
वरजो न जाइ एकत कत कु, लोक मे होवत हाँसी ॥अनु०॥२॥
समझत नाहीं निठुर पति एती, पल इक जात छै मासी।
'आनन्दघन' प्रभु को घर समता, अटकलि और लिवासी ॥अनु०॥३॥

पाठान्तर—हम तो = हम हे (इ)। रीझि = रीझ (इ उ)। तुम्ह = तुम (इ उ)। रहे = रहत (इ) रहै (उ)। वरजो = वरज्यो (इ उ)। होवत = होत न (आ)। पल इक = पलक (इ)। आनन्दघन ममता = आनन्दघन

प्रभु घर गमता के (ग्रा), आनन्दघन प्रभु घट की ममता (उ) आनन्दघन प्रभु की गमता (T ३ वि)। अटकलि = अटकल (उ)। लिवामी = लिवासी (छवासी (गा), (क वि), छवासी (व)।

शब्दार्थ—रावरी = आपकी। रीझि परै = आशक्त हो गये, मोहित हो गये। एकंत = सर्वथा। अटकलि = काल्पनिक, आनुमानिक। लिवासी छद्मवेशी।

अर्थ—सुमति कहती है—मैं तो आत्माराम की दासी हूँ। अनुभव ! बताओ, यह माया-ममता कहा से आ गई। मैं तो यह भी नही जानती कि यह (माया-ममता) किस देश की रहने वाली है ॥१॥

अनुभव कहता है—चेतन उस माया पर मोहित हो गये है। ये उसी के साथ रहते है, पर इससे तुम उदास क्यो रहती हो? अपना स्वभाव क्यो छोडती हो ?

प्रत्युत्तर मे समता कहती है—'हे अनुभव !' पति को सर्वथा रोका नही जा सकता, क्योकि इससे मेरी लोक मे हँसी होती है। लोग कहेगे कि पति को वश मे कर रखा है, न मालूम कौन से वशीकरण का प्रयोग किया है। इस प्रकार लोग बाते बनाकर मेरी हँसी करेंगे, वह कैसे सहन की जा सकती है ? लोग पति के लिये कहेंगे कि यह स्त्रैण है—स्त्री का दास है। पति का यह उपहास मुझे सर्वथा असह्य होगा ॥२॥

निष्ठुर पति इन बातो को समझ नही रहे है। इसलिये मेरा एक एक पल छै छै मास के समान व्यतीत होता है। आनंदघन प्रभु (चैतन्य) का घर (घर वाली) तो समता ही है। अन्य तो (माया-ममता) आनुमानिक है काल्पनिक छद्मवेषी है ॥३॥

प्रेमोपालम्भ, सखि संवाद ४४ राग–कान्हरो

पिया तुम निठुर भये क्युं ऐसे।
मैं तो मन क्रम करी राउरो, राउरी रीती अनैंसे ॥पि० ॥१॥
फूल फूल भंवर की सी भांउरी भरत हो, निवहै प्रीति क्युं अैसे।
मैं तो पिय तैं अैसी मिली आली, कुसुम वास सगि जैसे ॥पि० ॥२॥
अठी जात कहा पर एती, नीर निवहीयैं भैसे।
गुन औगुन न विचारो 'आनंदघन', कीजीयैं तुम हो तैसे ॥पि० ॥३॥

पाठान्तर—पिया = प्रीया (अ)। ऐसे = अैसे (अ)। करी = करि (अ), कर (इ उ)। राउरी = रावरी (उ)। रीति = रीत (इ उ)। नोट–"उ" प्रति में 'मैंतो—राउरी' के स्थान पर 'मैं तेरिज वै अैसी मिली यारी' है। सी = सो (उ)। अैसे = ऐसे (उ)। पिय = प्रिय (इ)। नोट–'उ' प्रति मे 'मैं तो आली के स्थान पर "मैं तो मन वच क्रम करी रावरी" है। वास सग = वासि सग (अ), वास सग (इ उ) अैठी = जैठी (ट), एती (उ)। जात = यात (इ) नीर निवहीयैं = नीर न वहियैं (अ), नारी नवहिइ (उ)। नोट–'उ' प्रति मे यहाँ पाठ इस प्रकार है। "एती अैजात कहा पर येती, नारी न वहिइ भैसे (उ)अै वीया न कहा पर एती, निस निरवहियैं भैसे"। औगुन=अवगुन (अ) औगुन विचारो (आ)।

शब्दार्थ—निठुर = निष्ठुर, कठोर। क्रम = कर्म। अनैंसे = बुरी, अनिष्ट कारक, और ही तरह की। भवर की सी = भ्रमर जैसी। भाउरी भरत हो = चक्कर काटते हो।

अर्थ—सुमति अपनी सखी श्रद्धा को साथ लेकर अपने स्वामी चेतन को उपालम्भ देती हुई प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है।

सुनति कहती है—हे नाथ ! आप ऐमे कठोर हृदय क्यो हो गये, जो मेरी खोज खबर ही नही लेते हो। मै तो मन, वचन और कर्म से (काया से) आपकी ही हू। सदा आपके स्वभावानुमार चलने वाली हू किन्तु आप की रीति (व्यवहार) और ही तरह की है अच्छी नही है, अनिष्ट कारक है ॥१॥

जिस प्रकार भ्रमर एक फूल से दूसरे फूल पर फिर तीसरे पर चारो ओर चक्कर काटा करता है (घूमता है) उसी प्रकार हे चेतन राज ! आप ममता के वश होकर चारो ओर भटक रहे हो। इस प्रकार प्रीति (प्रेम) कैसे निभ सकती है ? जब आप पर भाव मे रमे हुये हो तो मुझ से प्रीति कैसे कर सकते हो।

फिर श्रद्धा की ओर देख कर सुमति कहती है-हे सखि ! मै तो अपने प्रिय चेतन के साथ इस प्रकार एक रग हो रही हू जिस प्रकार फूल मे सुगध बसी रहती है ॥२॥

सुमति की यह बात सुनकर श्रद्धा कहती है - हे सुमते ! फूल का और सुगध का जो संबध है वह तो तेरा और चेतन का नही है, वह सबध तो चेतना का है तू यह अभिमान की बात क्यो करती है ? किस बल पर इतनी अकड दिखाती है ? बैल के न होने पर क्या भैसे पर पानी नही लाया (ढोया) जाता ? हे सुमते ! तेरा व चेतन का सबध उपशात मोह ग्यारहवे गुण स्थान तक ही है। यथाख्यातचारित्र जो, १२वे, १३वें गुण स्थानो मे होता है, वहाँ तेरी गति नही है। वहाँ तो चेतना ही का साथ है। इस चेतावनी को सुन कर सुमति तनिक लज्जित होकर चेतन से कहती है कि आनद रूप चेतन प्रभु ! मै आगे गुणस्थानो मे नही पहुँचा सकती—इस अवगुण का, तथा चेतना अ त तक पहुँचा सकती है—इस गुण का विचार न कर के मुझे आप जैसे हैं वैसी बना लीजिये ॥३॥

प्रेमोपालम्भ, सखि संवाद ४४ राग—कान्हरो

पिया तुम निठुर भये क्युं ऐसे।
मैं तो मन क्रम करी राउरी, राउरी रीती अनैसे ।।पि० ।।१।।
फूल फूल भवर की सी भाउरी भरत हो, निवहै प्रीति क्युं अैसे।
मैं तो पिय तै अैसी मिली आली, कुसुम वास संगि जैसे ।।पि० ।।२।।
अठी जात कहा पर एती, नीर निबहीयै भैसे।
गुन औगुन न विचारो 'आनंदघन', कीजीयै तुम हो तैसे ।।पि० ।।३।।

पाठान्तर—पिया = प्रीया (अ)। ऐसे = अैसे (अ)। करी = करि (अ), कर (इ उ)। राउरी = रावरी (उ)। रीति = रीत (इ उ)। नोट—"उ" प्रतिमे 'मैतो —राउरी' के स्थान पर 'मैं तेपिय वै अैसी मिली याली' है। सी = सो (उ)। अैसे=एसे (उ)। पिय = प्रिय (अ)। नोट—'उ' प्रति मे 'मै तो ' आली के स्थान पर "मै तो मन वच क्रम करी रावरी" है। वास संग = वासि संग (अ), वान संग (इ उ) अैठी = अंठी (इ), एसी (उ)। जात = यान (इ) नीर निवहीयें = नीर न वहियै (अ), नारी नवहिइ (उ)। नोट—'उ' प्रति मे यहाँ पाठ इस प्रकार है। "ऐसी भैजात कहा पर येती, नारी न वहिइ भैसे (उ)अै वीया न कहा पर एती, नित निरवहियैं भैसे"। औगुन=अवगुन (अ) औगुन विचारो (आ)।

शब्दार्थ—निठुर = निष्ठुर, कठोर। क्रम = कर्म। अनैसे = बुरी, अनिष्ट कारक, और ही तरह की। भवर की सी = भ्रमर जैसी। भाउरी भरत हो = चक्कर काटते हो।

अर्थ—सुमति अपनी सखी श्रद्धा को साथ लेकर अपने स्वामी चेतन को उपालम्भ देती हुई प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है।

विनती ४५ राग–जैजैवन्ती

ऐसी कैसी घर बसी, जिनस अनैसी री।
याही घर रहसी वाही आपद हैसी री ॥ऐसी०॥१॥
परम सरम देसी घर मेउ पैसी री।
याही ते मोहिनी मैसी, जगत सगैसी री ॥ऐसी०॥२॥
कौरी की गरज नैसी, गुरजन चखैसी री।
'आनन्दघन' सुनौसी, बदी अरज कहैसी री ॥ऐसी०॥३॥

पाठान्तर—ऐसी = अइसी (आ), अैमी (अ), इसी (उ)। घर = घरि (अ उ)। है सी री = है इसी री (अ)। मेउ = मउ (अ), मैहु (इ)। मैसी = मइसी (उ)। जगत सगैसी री = जग जस गैसी गी (अ इ), जस रहसी री (उ)। गुरजन = गुरज (आ)। सुनौसी = सुनैसी (आ)। वदी = वादी (उ)। कहैसी री = कहिसीरी (उ)। नोट–'आ' प्रति मे न० २ का पद नही है जबकि अ इ उ तीनो प्रतियो मे है।

शब्दार्थ—घर वसी = घर मे वस गई,–रह गई। जिनस = जिन्स, वस्तु। अनैसी = अमगलकारी, अनिष्टकारी। पैसी = घुमकर, प्रवेशकर। परम सरम=अत्यन्त लज्जा। मैसी = मेषी, मादा भेड। कौरी = कोडी। गरज = प्रयोजन, मतलव। नैसी = बुरी। चखैसी = चखने वाली, खाने वाली, नाश करने वाली।

होना पड़ता है। भेड़ के समान यह मोहनी माया संसार से मत्रत्र रखने वाली है ॥२॥

इस ही लिये इसमे एक कौडी की भी गरज सरनेवाली नही है। अनुभव विवेक आदि गुरुजनो को यह नाश करने वाली बडी बुरी है। यह वदी (दासी) सुमति माया के सब गुण वर्णन कर रही है। हे आनंद स्वरूप चेतन ! इन्हे सुनिये, और माया का साथ छोड दीजिये ॥३॥

विनय ४६ राग—सारग

नाथ निहारो न आप मता सी।
वचक सठ सचक सी रीतैं, खोटो खातो खतासी ॥नाथ०॥१॥
आप विगूचन जग की हांसी, सैणप कौण बतासी।
निज जन सुरिजन मेला अैसा जैसा दूध पतासी ॥नाथ०॥२॥
ममता दासी अहित करि हर विधि, विविध भाति सतासी।
"आनन्दघन" प्रभु बीनती मानो, और न हितू समता सी ॥नाथ०॥३॥

पाठान्तर—नाथ.... मतासी = नाथ निहारो आप मत मतासी (इ) नाथ निहारू आप मतासी (उ)। सचक = चचक (उ)। रीतैं = रीतड (उ)। निज .... अैसा = निज जन मेला अैसा (आ) ममता = ममता (इ)। करि = करै (अ)। हर = हरि (ड)।

शब्दार्थ—आप मता सी = आप के मतानुयायी। वचक = ठग, धूर्त। सचक = कृपण, सचय करने वाला, जमाखोर। खातो = हिसाब, खाता। खतासी = खताया जायगा, लिखा जायगा। विगूचन = बुराई करना, असमजस, डूबना। सैणप = सयानापन, बुद्धिमत्ता। बतासी = बतायेगा। सुरिजन = सज्जन लोग। पतासी = पताशा, सतासी = सतायेगी, दुख देगी।

अर्थ—सुमति कहती है—हे चेतन ! आप विश्वास क्यों नही करते कि मै आप की इच्छानुसार चलने वाली हू। धूर्त, कपटी और कृपण ममता बुरा खाता खताने वाली है अर्थात दुर्गति मे लेजाने वाली है ॥१॥

ममता का साथ अपने आपको दुखो मे डालना या डुबोना है, साथ ही ससार मे अपनी हसी कराना है। ऐसे कार्य को कौन बुद्धि-मत्ता (समझदारी) कहेगा ? अपने सगे सबधियो व सज्जन पुरुषो का मिलाप तो दूध-बताशे के समान है जिससे मधुरता की वृद्धि होती है अर्थात् सयम-सतोष विवेक आर्जव औरमार्दव आदि चेतन के स्वजन है। इनके सयोग से अनेक गुण प्रकट होते है और उनकी वृद्धि होती है।।२॥

इनके विपरीत ममता दासी व उसका परिवार हर प्रकार से अहितकर है और अनेक प्रकार के सतापो को (दुखो को) उत्पन्न करनेवाला है । योगीराज आनदघनजी कहते है—हे आनद के समूह चेतन ! मेरी विनय सुनो, समता के समान आपका हितकारी और कोई नही है ॥ ३ ॥

सपत्नी दोष वर्णन **४७** **राग–सोरठ**

वारौ रे कोई पर घर भमवानो ढाल, नान्हीं वहु नै पर घर भमवानो ढाल ।

पर घर भमता झूठा बोली थई देस्यै धनीजी नै आल ॥वा०॥१॥

अलवै चालो करती देखी, लोकडा कहिस्ये छिनाल ।

ओलभडा जण जण ना आणी हीयडे उपासै साल ॥वा०॥२॥

बाई पडोसण जोवो नै लिगारेक, फोकट खास्यै गाल ।

'आनदघन' सु रग रमे तो, गोरे गाल भबूकइ झाल ॥वा०॥३॥

पाठान्तर—भमवानो = रमवानो (अ इ) भमचावो (उ)। ढाल = टालो (उ)। भमता = रमता (अ इ)। भूठा = भूठो (उ) देस्यै = देसइ (आ उ) धनीजीनै = धणीनै (इ), धणीजीनै (अ उ)। चालो = चाल्ना (आ)। देखी = देडै (इ)। लोकडा = लोकडला (अ)। कहस्ये = कहिसइ (आ), कहसी (अ), कहिसै (उ)। जण जण = जिण जिण (अ)। हीयडै = हीयडइ (आ), हियडै (अ)। उपासै = उपासइ (आ), उपास्ये (अ इ)। वाई = वाई (आ), वाइ रे (उ) लिगारेक = लगारेक (आ)। खास्यै = खासइ (आ), खासी (उ)। सु = स्यु (अ,इ), सु (उ)। रग रमै = रगे रमे (उ), रग रमइ (आ)। गाल = गालि (आ)। भनूकइ = भवूके (अ)।

शब्दार्थ—वारो = रोको। भमवानो = भ्रमण करनेका, घूमनेका। ढाल = आदत। नान्ही = छोटी। थई = होगई। धनीजी = पतिदेव, स्वामी। आल = कलक। अलवं = इधर उधर की व्यर्थ बाते। चालो = काम, ख्याल, तमाशा। लोकडा = लोग। छिनाल = बदचलन, व्यभिचारिणी। ओलभडा = उपालम्भ। जण जण ना = प्रत्येक व्यक्ति के। हियडे = हृदय मे। उपासै = उत्पन्न होना। घाव = छेद, छाप, रडक, काटा। जोवो = देखो। लिगारेक = तनिक। फोकट = व्यर्थ, मुफ्त। गाल = गाली, अपशब्द। रग रमे तो = रग मे क्रीडा करे तो, ज्ञानानद मे मग्न हो जाय तो। भवूके = चमके, चमकने लगे। भाल = ज्योति।

अर्थ—समता अपने सम्बन्धी अनुभव, विवेक, श्रद्धा आदि से बात करती हुई कहती है— चेतन की इस छोटी स्त्री-अशुद्ध चेतना को पर घर-पौद्गलिक भावो मे घूमने की कुटेव (खराब आदत) पडी हुई है अरे कोई भी इसकी पर घर घूमने की आदत को छुडावो। पर घर घूमने से यह झूठ बोलने वाली हो गई है रागद्वेष वश होकर कृत्य को अकृत्य और अकृत्य को कृत्य कहने लगी है इस प्रकार यह अपने स्वामी चेतन को बहकाती है जिससे पति को कलकित होना पडता है ॥८॥

इसकी इधर उधर की फालतू प्रवृति को देख कर लोग इसे पुश्चलि (छिनाल) कहते है। स्वाभाव परिणति को छोड कर जब चेतना राग-द्वेष पर भावो मे भटकती है, तब बुद्धिमान इसे छिनाल कहे तो कोई अयुक्त नही। यह प्रत्येक से उपालम्भ लाती है जिस से हृदय मे छेद हो जाते है ॥२॥

समता, श्रद्धा, सुमति आदि को कहनी है, हे बहिनो! जरा इधर तो देखो—यह (अशुद्ध चेतना) व्यर्थ ही गालिये क्यो खाती है क्यो बदनाम होती है। यदि यह आनदघन चेतन के रग मे रमण करे तो इसके स्वभाव रूप गौरे गालो पर उपयोग रूप तेज चमकने लगे और सब दुर्गुण नष्ट हो जावे ॥३॥

प्रेम लक्षरणा भक्ति **४८** **राग—केदारो**

प्रीति की रीति नई हो प्रीतम, प्रीति की रीति नई।
मैं तो अपनो सरवस वार्‌यो, प्यारे कौन लई ॥प्री०॥१॥
मैं बस पिअ के पिअ सग और के, या गति किन सिखई।
उपकारी जन जाय मिनावौ, अब जो भई सो भई ॥प्री०॥२॥
विरहानल जाला अति प्रीतम, मौ पैं सही न गई।
आनदघन' ज्युं सघन घन धारा, तब ही दै पठई ॥प्री०॥३॥

पाठान्तर—मैं = मे (इ,उ)। वस = वसो (आ), वसु (अ उ)। पिअ के पीम = प्रीअ के पीय (अ), पिय के पिय (इ उ)। पिखई = मखई (अ), सिखाई (उ)। उपकारी = उपगारी(इ)। अब जो भइ = जो कछु भई (इ)। सो = सु (अ), जाला = झाला (इ), ज्वाला (उ)। अति प्रीतम=अभिषम (अ) अति हि कठिन है (ट)। ज्यु = जु (अ), यु (इ), यू (उ)। घन = रस (अ)।

शब्दार्थ—सरवस = सर्वस्व। वार्‌यो = निछावर कर दिया। मिनावो = मनावो, प्रसन्न करो। पठई = भेजी।

अर्थ –हे प्रियतम ! आपने यह तो प्रीति की नवीन ही रीति अपनाई है। यह प्रेम-पथ तो नही है। हे प्यारे ! मै ने तो अपना सर्वस्व आप पर निछावर कर दिया है और आप किसी दूसरी को ही अपनाये हुये हैं ॥१॥

समता श्रद्धा व विवेक से कहती है—मै तो अपने प्रियतम चेतन के वश मे हू और प्रियतम ममता के सग रगरेली कर रहे है। समझ मे नही आता कि यह ढग किसने सिखाया है। हे श्रद्धे ! हे विवेक ! आप ही मेरे परम उपकारी हैं। आप लोग चेतन को जाकर समझाओ-प्रसन्न करो और कहो कि जो कुछ होना था वह हो गया। ममता इन गई गुजरी बातो का तुम्हे उपालम्भ नही देगी। आप बीती बातो की चिन्ता न कर उस के पास पधारो ॥२॥

विवेक और श्रद्धा चेतन से कहते है-हे प्रिय चेतन ! आप जानते हो कि विरह-अग्नि की ज्वाला बडी दारुण होती है, उस से (समता से) सही नही गई इसलिये आप को लेने के लिये हमे भेजा है। विवेक और श्रद्धा के मिलन मे चेतन का दृष्टि-मोह हटता है और स्वरूप-ज्ञान प्रगट होता है। तुरत ही आनदघन चेतन समता की विरह ज्वाला को बुझाने के लिये सघन मेघ की धारा (आनद की धारा) देकर श्रद्धा व विवेक को भेज दिया ॥३॥

तात्पर्य यह है-श्रद्धा और विवेक होने पर ही यह जीव ममता के वश नही होता, उसे समत्व प्राप्त हो ही जाता है। सुमति मन की दशा है। वह केवल ज्ञान होने के पहिले ही रहती है और चेतना तो जीव का लक्षण ही है। वह सदा सर्वदा जीव के साथ है। जैसा कवि ने स्वय कहा है -

'चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहै जिनचदजी"

प्रेम लक्षणा भक्ति की पराकाष्ठा ४६ राग मारू

मनासा नट नागर सु जोरी हो, मनसा नट नागर सु जोरी।
नट नागर सु जोरी सखि हम, और सबन सैं तोरी ॥म० ॥१॥
लोक लाज नाहिन काज, कुल मरजादा छोरी।
लोक बटाऊ हसो विरानौ, आपनौ कहत न को री ॥२॥
मात तात सज्जन जात, बात करत सब भोरी।
चाखै रस की क्यु करि छूटै, सुरिजन सुरिजन टोरी ॥३॥
ओरहानो कहा कहावत और पै नाहिन कीनी चोरी।
काछ कछ्यो सो नाचत निवहै, और चाचरि चरि फोरी ॥म०॥३॥
ज्ञानसिन्धु मथित पाई, प्रेम पीयूष कटोरी।
मोदत 'आनदघन' प्रभु शशिधर, देखत दृष्टि चकोरी ॥म०॥५॥

पठान्तर—सु = सैं (आ), सु (अ इ)। सबन = सबनि सौं (अ), सबन सु (इ उ)। नोट—नटनागर हम यह पक्ति 'उ' प्रति मे नही है। लाज = लाज हम (इ उ)। काज = काजै (उ), काजा (वि)। हसो = हम सें (उ), कहत = कहू (उ)। कोरी = कोई (इ,उ)। तात सज्जन = अरु सजन (इ उ)। जात = तात (उ)। बात भोरी = बात कहत भोरी (आ), बात करत है भोरी (इ), बात सब भोरी (उ)। रस की = इस की (इ)। ओरहानो = ओरहनौ (आ), औराहनो (अ), ओराकहनो (उ)। कछयो = कछै (उ)। निवहै = नीवहै (आ)। चाचरि चरि = चाचर चर (इ), चावर चरि (उ)। ज्ञान = ग्यान (इ)। मथित = मथत (इ), मुकत (उ)। पीयूष = पीउप्य (उ)। मोदत = मोदित (उ)। शशिधर = शशधर (अ), ससिधर (इ उ)।

शब्दार्थ—मनसा=इच्छा। नटनागर = सर्व कला कुशल। जोरी = जोडी दी। तोरी=तोडदी। छोरी=छोड दी। बटाऊ=राहगीर, यात्री। विरानो=

पराया। को = कोई। जात = जाति। भोरी = भोली। चारयै रस की = जिनने एक बार रसास्वादन कर लिया है। सुरिजन = सज्जन लोगो की सत्संगति। टोरी = टोल, समूह। औरहानो = उपालम्भ। और पै = दूसरो से। काछ कछ्यो = जिसने कच्छा पहिन लिया है, जो हर प्रकार से सज कर तैयार होगया है। निवहै = निर्वाह करना ही होगा। चाचरि = हलचल। भोरत = प्रसन्न होते है। ससिधर = चन्द्रमा।

अर्थ—कवि की सद्‌बुद्धि कहती है—हे सखी श्रद्धा! मैंने अपने मन को चतुर नटनगर (चेतन) की ओर लगाया है। उस नटनागर (चेतन) से अपने मन को लगाने के पश्चात् और सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्च से अपने मन को हटा लिया है ॥१॥

मुझे लोक लज्जा से कोई सबंध नही है। कुल मर्यादा की आड मे बनी हुई जो बाडे बदी है उसे मैंने त्याग दिया है। रास्ता चलने वाले अन्य लोग (विभाव परिणतिये) भले ही मेरी हँसी करे, इसकी मुझे चिन्ता नही है क्यो कि लोगो का स्वभाव दूसरो की हँसी उडाने का ही होना है। अपने अवगुण कौन देखता है? और देख भी ले तो दूसरो पर कौन प्रकट करता है ॥२॥

माता पिता स्वजन तथा जाति वाले सज्जन ये सब भोली भोली बातें करते है जिस सत्संगति का एक बार पान कर लिया है उन अत्यन्त श्रेष्ट जनो (स्वभाव परिणितियो) के समुदाय का साथ किस प्रकार छूट सकता है ॥३॥

अन्य लोगो के द्वारा (प्रलोभनो द्वारा) मुझे (सद् बुद्धि को) क्यो उपालम्भ कहा रहे हो (दूर हटा रहे हो)। मैंनें किसी की चोरी तो की नही है। बुरा कार्य तो किया नही है। जिसने कच्छ पहिन लिया है उसे तो नाचना ही होगा। अर्थात् जो कार्य जिसने करना विचार लिया है उसे तो वह करेगा ही। अब नाचे बिना

छुटकारा ही नहीं है-अब उससे कैसे दूर हटा जा सकता है। अर्थात् जिसने चैतन्य शक्ति से मन लगा रखा है उसे तो स्वसत्ता—चेतन को अनावरण करना ही होगा। आत्मानुभवी का हृदय अपने लक्ष से कैसे च्युत हो सकता है। इसलिये मुझे उपालभ्भ देना व्यर्थ है। मेरा लक्ष एक मात्र उस नटनागर (चेतन) की ओर है ॥४॥

ज्ञान रूपी समुद्र के मथन से विश्व प्रेमरूपी अमृत से भरी कटोरी प्राप्त हुई है। आनदघनजी कहते है कि मेरी दृष्टि रूपी चकोरी आनदधाम चेतन रूप चन्द्रमा को देखकर अत्यन्त मोद मनाती है—प्रसन्न होती है ॥५॥

पति रंजन **५०** **राग—आसाउरी**

मीठो लागै कतडो नैं, खाटो लागै लोक।
कत विहुणी गोठडी, ते रन माहि फोक ॥मी०॥१॥
कतडा मे कामण, लोकडा मे सोक।
एक ठामे किम रहै, दूध काजी थोक ॥मी०॥२॥
कंत विण चौगति, आणु मानु फोक।
उघराणी सिरड फिरड, नाणो खरु रोक ॥मी०॥३॥
कत विन मति म्हारी, अवहाडानी बोक।
धोक द्यूं 'आनन्दघन' अवर नैं द्यू टोक ॥मी०॥४॥

पाठान्तर—मीठो = मिठो (आ), मीठा (उ)। लागै = लागइ (आ)। खाटो = खारं (इ), खारा (उ)। विहुणी = विन (आ), विना (इ), रन = नर (अ इ) वन (उ)। मे = मइ (आ)। सोक = सोग (उ)। ठामे = ठामि (आ)। विण = विनु (अ), विना (इ उ)। आणु · फोक = मानु तें कोक (इ), मानू ते फोक (उ)। सिरड फिरड = सरड फरड (अ), नाणो =

नाणा (अ.इ) । नरु=तेजें (उ) । मति=गति (अ), यो मती (इ), जो मति (उ) । अवहाटा=अवटाहा (उ) । घृ=घु (आ) । 'अ' और 'उ' प्रतियो मे 'आनदघन' के वाद प्रभु शब्द और है। अवर नै टोक=अवरनै दोक (आ) । अवर नै घु ढोक (उ) ।

शब्दार्थ—कतडो=कन्त, पति । खाटो=खट्टा । गोठडी=गोष्ठी । वन माहि=जगल मे । फोक=एक जगली राजस्थानी पौदा जो सुखा कर साग आदि मे खाया जाता है, सत्व हीन । कामण=कामिनी, जादू, मोहन शक्ति । लोकडा=लोगो मे । ठामे=स्थान मे । थोक=समूह, एकत्रित । आणु =समझनी हू । उघराणी=उगाई, उधारी रकम । सिरट फिरड=धक्का खिलाने वाली, पागलपन । नाणो=रुपया, रकम । खरु=खरा, श्रेष्ठ । रोक= रोकडी । अवहाडानी वोक=कुवे से पानी निकाल कर टालने के स्थान (ढाणे) के पास बना छोटा कुड । धोक=प्रणाम । अवर नै=अन्यको । टोक=रोक, वर्जन, मनाही, इनकारी ।

अर्थ—सुमति अपनी सखी श्रद्धा से कहती है—मेरे आत्माराम भरतार मुझे अत्यन्त प्रिय लगते है । मेरे स्वामी के अतितिक्ति अन्य लोग मुझे प्रिय नही लगते है—रूचिकर नही लगते है। स्वामी (आत्माराम) के विना गोष्ठी, जगल म फोक के समान है अर्थात् निस्सार ह ॥१॥

मुझे पति मे आकर्षण लगता है, अन्य लोगो मे शोक सताप दिखाई पडता है, क्यो कि ममता के वश सदा आर्त रौद्र ध्यान रहते हैं। दूध और काजी किस प्रकार एक स्थान मे रखी जा सकती है ? एक ही हृदय मे समता तथा ममता साथ कैसे रह सकती है ? जहाँ समता है वहा ममता नही रह सकती है, जो ममता के वशीभूत है उन्हे समता कैसे प्राप्त हो सकती है ॥२॥

सुमति कहती है—हे सखी श्रद्धा ! मेरे पतिदेव शुद्ध चेतन के विना प्राणियो ने चारो गतियो मे भ्रमण किया है. वह सब भ्रमण

व्यर्थ ही मानती हू-समझती हू। पैसा तो वही है जो नकद अपने पास हो, उगाई (उधारी) के पैसे को अपना पैसा मानना पागलपन है। जगह जगह धक्के खाना है ।।३।।

समता पुन अपनी सखी श्रद्धा से कहती है—हे सखी! आत्माराम भरतार बिना मेरी अवस्था अवहाडे की बोक-कुवे के ढाणे के पास बनी छोटी खेल (कुड) के समान सकीर्ण हो गई है। अनुभव ज्ञान विना मेरी मति की ऐसी अवस्था है, अर्थात जिस भाति कुवे से सबध होने पर पानी की कमी नही रहती, उसी, प्रकार मति का अनुभव से सबध होने पर चेतन धारा हटती नही है अन्यथा मति की गति तो अवहाडे के बोक के समान है। आनदघन प्रभु को मै वदन करती हू—प्रणाम करती हू तथा आत्मभाव के अतिरिक्त अन्य भावो पर रोक देती हू ।।४।।

शपथ पूर्वक पतिरंजन ५१ राग–जैजैवती

मेरी सु मेरी सु मेरी सु मेरी सौ मेरी री।
तुम्ह तै जु कहा दुरी कहो नै सवेरी री ।।मेरी०।।१।।
रूठे देखि कै मेरी मनसा दुख घेरी री।
जाके सग खेलो सो तो जगत की चेरी री ।।मेरी०।।२।।
सिर छेदी आगै धरै ओर नही तेरी री।
'आनन्दघन' को सूं जो कहु हु अनेरी री ।।मेरी०।।

पाठान्तर– सु = सौ (अ)। 'मेरी सु' की आवृति 'इ उ' प्रतियो मे तीन ही वार है। तथा मुद्रित प्रतियो मे–'क व वि' मे पाठ इस प्रकार है— "मेरी सु तुम ते जु कहा दुरी के होने स वैरी री (क व)। मेरी सू तुम ते जु कहा दुरी कहो न सवै वैरी री (वि)। दुरी = दुरा (अ उ)। सवेरी री = सचेरी री (उ)। रूठे = भूठे (उ)। देखि = देखा (इ उ)। जाके = जागे (आ)। सू = सु (आ), सौं (अ)।

शब्दार्थ—सु या. सौ = सौगध, शपथ। दुरी = दूर रहने के लिये, अलग रहने के लिये। सवेरी = शीघ्र। चेरी = दासी। छेदी = काटकर। अनेरी = अन्य, दूसरी।

अर्थ—सुमति अपने पति (स्वामी) चेतन से कहती है—मेरे से दूर रहने के लिये आपको जिसने कहा है उसका नाम कृपा कर शीघ्र बताइये, आपको मेरी शपथ है। अरे आप चुप चाप है, मै बार बार अपको सौगध (शपथ) दिला रही हू, पर आप बोलते क्यो नही है ?॥१॥

आपको रूठे हुये से देखकर मेरा मन दुख से घिर गया है—मै बहुत दुखी हू। जिसके साथ आप खेल रहे है—रगरेलिया कर रहे है वह (ममता) तो ससार की दासी है ॥२॥

जो अपना सिर काट कर आप के आगे रखदे उस ही को अपनी समझनी चाहिये और जो ऐसा न कर सके, वह अपनी नही है। अर्थात् जो अपना सर्वस्व आपके अर्पण न कर सके वह आपकी नही है। मै अपने स्वामी आनद के समूह की शपथ खाकर कहती हू कि जो मै कहती हू, वही कर बताने वाली हू। मै ऐसी नही हू जो कहे कुछ और करे कुछ और। हे चेतन देव! मै आप की ही हू अन्य किसी की नही हू ॥३॥

उत्साह दशा व शूरवीर-युद्ध ५२ राग—तोडी (टोडी)

चेतन चतुर चौगान लरी री।
जीति लै मोहराज को ल्हसकर, मसकरि छाडि अनादि धरी री
॥चे०॥१॥

नागो काढि लताड लै दुसमण, लागै काची दोइ घरी री।
अचल अबाधित केवल मुनसफ, पावै शिव दरगाह भरी री ॥चे०॥२॥

और लराई लरै सौ बोरा, सूर पछाडै भाव अरो री ।
धरम मरम कहा बूझै औरैं, रहि 'आनन्दघन' पद पकरी री ।।चे०।।३।।

पाठान्तर—लै मोहराज = लीयं मोहराय के आगे की पक्ति बहुत गड-बड है (उ) । काढि = काढ (इ), काटी (उ) । लताड = लताडि (आ) । दोइ = दोय (इ उ) । मुनसफ = मुनसभ (अ), मुनसुफ (इ) । शिव दरगाह = सिव-पदगाह (इ उ) । वोरा = वौरो (अ) । भाव = नाव (इ) । मरम = करम (आ), भरम (वि) । औरे = ओरइ (अ), उरे (उ) । रहि = रहे (इ उ) ।

शब्दार्थ—चौगान = मैदान । लहसकर=सेना । मसकरि=हँसी, दिल्लगी प्रमाद । अनादि धरी री = अनादि काल से धारण की हुई । नागी = नगी तलवार । काढि = निकाल कर । लताड लै = पछाड दे, गिरादे । काची = कच्ची । दोइ घरी = दो घडी, ४८ मिनिट । अचल = निश्चल । मुनसफ = न्यायाधीश । दरगाह = सिद्ध पुरुष की समाधि, दरबार, कचहरी । बौरा = पागल । सूर = शूरवीर ।

अर्थ—चेतना अपने पति चेतनराज से कहती है—हे चतुर चेतनराज ! आप अनत शक्ति शाली है क्या सोचते हो मैदान मारलो मोहराज की सेना राग-द्वेष, काम, क्रोध, माया लोभ मोह आदि से युद्ध करके विजय प्राप्त करलो । काल लब्धिका-भवस्थिति के परिपाक का-बहाना बनाना छोड कर,अपने पर लगे हुये मोह-पाश को तोड दो-नाश करदो ।।१।।

तीक्ष्ण रुचि रूपी नगी तलवार निकाल लीजिये, और मोहरूपी शत्रु को परास्त कर दीजिये । यदि आप प्रवल वेग से आक्रमण करेगे तो मोहके घुटने टेकने मे पूरी दो घडी भी नही लगेगी और आपको आधि व्याधि और उपाधि रहित निश्चल केवल ज्ञान प्राप्त हो जावेगा । वह केवल ज्ञान सत्यासत्य का निर्णायक सब से वडा न्यायाधीश है जिसे प्राप्त करने पर परिपूर्ण सुखो से भरा हुआ मोक्ष रूपी पवित्र स्थान प्राप्त होता है ।।२।।

प्रमुख शत्रुओ मे न लडकर जो औरो मे लडाई लडता है वह तो मूर्ख ही है—पागल ही है। क्यो कि अन्य मनुष्यो से तो लडाई क्रोध व द्वेष वश ही की जाती है। क्रोधी और द्वेषी मनुष्य अपने होश-हवास खो देता है। इस कारण वह पागल ही है परन्तु जो सच्चा पुरुष होता है वह तो भावो —उच्च श्रेणी—मे चढकर राग-द्वेष रूप सम्पूर्ण शत्रुओ को परास्त करता है। यदि राग-द्वेष पर विजय नही पाई तो नित्य नये शत्रु पैदा होते रहेगे। चेतन के मूल शत्रु राग द्वेष ही है जिसने इन पर विजय पाई, उसने त्रिभुवन पर विजय पाई, जिसने इन को जीता, वह त्रिभुवन नाथ होगया—जगत पूज्य हो गया। हे भोले चेतन! धर्म का मर्म (रहस्य) औरो से क्या पूछता फिरता है। तू तो इन आनदघन प्रभु के चरण कमलो को पकडे रह अर्थात् तू अपने प्रत्येक कार्य मे आत्मा को न भूल, प्रत्येक प्रवृत्ति मे यह देख कि मै आत्म-भाव मे हू या अनात्म-भाव मे हू—पुद्गल भाव मे हू ॥३॥

अखंड स्वरूप ज्ञान ५३ राग—तोडी (टोडी)

साखी —आतम अनुभो रस कथा, प्याला अजब विचार।
अमली चाखत ही मरै, घूमै सब ससार ॥*
आतम अनुभौ रीति वरी री
मोर बनाइ निज रूप अनुपम, तीछन रूचिकर तेग करी री
॥आ०॥१॥

---

* यह साखी 'आ' और 'उ' प्रति मे नही है। 'अ' और 'उ' प्रतियो मे है। मुद्रित प्रतियो मे भी नही है।

टोप सनाह सूर को बानो, इकतारी चोरी पहरी री
सत्ताथल मे मोह विडारत, ए ए सुरजन मुह निसरी री
॥आ०॥२॥

केवल कमला अपछर सुदर, गान करै रस रग भरी री।
जीति निसाण बजाइ बिराजै, 'आनदघन' सरवग धरी री
॥आ०॥३॥

पाठान्तर—चाखत = चाखती (उ)। ही मरै = हा मरे (उ)। घूमै = घूमरइ (उ)। अनुभौ = अनुभव (अ आ उ)। तीछिन = तीछन (अ उ)। तेग करी = नेग करी (आ उ) नेगधरी (क ब वि)। इकतारी चोरी = इकताली चोली (उ)। मुह = मोह (उ)। गान = ग्यान (उ)। रग = रीति (आ)। विडारत = विदारत (क ब वि)।

शब्दार्थ—अमली = नशेबाज, अमल मे (आचरण मे) लाने वाला। अनुभौ=स्वरूप प्राप्ति से होने वाला आनन्द। वरी = वरण कर लिया, स्वीकार कर लिया। मोर = मुकुट। तीछिन = तीक्ष्ण, तेज। तेग = तलवार। सनाह = कवच। बानो = भेष। इकतारी चोरी = एकाग्रता रूपी चोली। सत्ताथल मे = सत्तारूप युद्ध क्षेत्र मे। विडारत = छिन्न भिन्न करना, दूर करना। सूरजन = पडित लोग। केवल कमला = केवल ज्ञान रूप लक्ष्मी। अपछर = अप्सरा रस रग भरी री = प्रेम मे लवलीन होकर। सरवग = मस्तक।

अर्थ—आत्म अनुभव-रस-कथा का विचार अद्भूत है। इस रस का प्याला अमली–नशे बाज चखते ही मर मिट जाता है अर्थात् जो उस पर अमल (आचरण) कर लेता है वह उस पर मिट जाता है–आशक्त हो जाता है। अन्य लोग घूमते ही रहते है। साखी।

श्रद्धा सुमति से पूछती है–आत्म ने किस प्रकार अनुभव दशा से लग्न किया है। इसके उत्तर मे सुमति कहती है–हे सखी! सुनो—

तीक्ष्ण रुचि रूप अपूर्वकरण को प्राप्त नहीं किया। अपूर्वकरण बिना किसी को कभी भी स्वरूप ज्ञान न तो प्राप्त हुआ और न होगा। इस तीक्ष्ण रुचि रूपी तलवार से ही मोह का नाश किया जा सकता है, सम्यक्‌दृष्टि प्राप्त की जासकती है।

शूरवीर का भेप धारण करके अर्थात् समता रूप टोप (शिरस्त्राण), त्याग व ब्रह्मचर्य रूप कवच तीव्र भावना रूप चोला पहन कर मोह को सत्ता से ही इस प्रकार छिन्न भिन्न किया कि अनुभवी पडितो के मुँह से प्रशसात्मक शब्द निकल पडे। जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र मे निज रक्षार्थ कवच, टोप आदि पहिरे जाते है उसी प्रकार मोहराज से युद्ध करने के लिये समता, त्याग, एकाग्रता की आवश्य-कता है। मानसिक, वाचिक और कायिक चचलता के त्याग बिना मोह-शत्रु के आक्रमण सहने की शक्ति कभी प्राप्त नही होती। इसके लिये एकाग्रता की अत्यन्त आवश्यता है। यही शक्ति सर्व सिद्धिदाता है। आत्म-शत्रुओ को नाश करने वाली है ॥८॥

सबध होने को बध कहते है। कर्म की फलप्रद शक्ति को उदय, उदय मे न आये हुये कर्मों को ध्यान-तप आदि के बल से उदय मे लाने को उदीरणा, कहते है। जो कर्म तो बध चुके है किन्तु उदय-उदीरणा मे नही आये है, आत्मा के साथ लगे हुये है उन्हे सत्तागत कर्म कहा जाता है।

कवि ने इस पदमे मोह को सत्ता मे ही नाश करने की बात कही है। मोह का बध नवे गुणस्थान तक होता है। क्षपक श्रेणी-वालो के दशम गुणस्थान के अत मे मोह की सत्ता का नाश हो जाता है। यहाँ सुमति का साथ भी जाता है अर्थात् वह सुमति वीतराग परिणति रूप शुद्ध चेतना का रूप ग्रहण कर लेती है जिसका साथ कभी नही छूटता है।

कहा दिखावुं ऑौर कु कहा समझावु भोर।
तीर न चूकै प्रेम का, लागै सो रहै ठोर ॥सु०॥३॥
नाद विलूधो प्रान कु, गिनै न त्रिण मृगलोइ ।
'आनदघन" प्रभु-प्रेम की अकथ कहानी कोइ ॥सु०॥४॥

पाठान्तर—अनुभौ=अनुभव (प्र,आ उ) । दीपक कियो=घट मदिर दीपक कियो (क त्र) सहज सरूप=सहज सहज ज्योति सरूप (उ)। तीर 'पेमका=तीर चूकै पेमका (उ)। तीर अचूक है प्रेम का (क त्र)। प्रानकु =प्रेमको (अ)। अकथ=अकह (इ) ।

शब्दार्थ—सुहागनि=सौभाग्यवती । अनुभौ=मति-श्रुति ज्ञान की परिपक्व अवस्था। सरूप=निजरूप, चेतन स्वरूप। ठानत=दृढ सकल्प करना, स्थापित करना। भोर=भोले मनुष्यो को। ठोर=स्थान। विलूधो=लुब्ध हुआ, आसक्त हुआ। त्रिण=तृण, घास। अकथ=अकथनीय, जो कही न जा सके।

अर्थ—कवि आनन्दघनजी कहते है-मुझे सौभाग्यवती अनुभव प्रीति जागृत हो गई है। इस के जागृत होने से मैने अनादि काल की मोह निद्रा (अज्ञान निद्रा) का नाशकर, स्वाभाविक दशा रूप निज परिणति ग्रहण कर ली है ॥१॥

इस पद से ऐसा ध्वनित होता है कि श्री आनदघन जी को इस समय शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका था।

श्रीमदराजचन्द्र जी ने अपनी दशा का स्पष्ट शब्दो मे इस प्रकार वर्णन किया है—

'ओगणीसे' नै सुडतालीसे, समकित शुद्ध प्रकाश्यु रे।
श्रुत अनुभव वधती दशा, निज स्वरूप अवभास्युं रे॥

समयसार नाटक के कर्त्ता श्री बनारसीदास जी ने भी अपनी दशा का वर्णन इस प्रकार किया है—

अब सम्यक दरसन उनमान प्रगट रूप जानै भगवान ।
सोलहसै निरानवे वष समैसार नाटक धारै हर्ष॥३८॥
(अर्धकथानक)

हृदय रूपी मदिर मे निज स्वरुप की सहज ज्योति का दीपक प्रज्वलित हो गया है जिस के प्रकाश मे अपनी व पराई वस्तु का निर्णय अनुपम रीति से होरहा है। तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व प्राप्त होने पर हेय-उपादेय, आत्मभाव व जड भाव का निर्णय अनोखी रीति से स्वय तुरत हो जाता है ॥२॥

इस सहज ज्योति स्वरूप आत्मा को किस प्रकार दूसरे को दिखाऊँ व भोले (स्त्री, पुत्र व धन मे आसक्त) प्राणियो को कैसे समझाऊँ, यह सौभाग्यवती अनुभव प्रीति आँखो से दिखाई नही देती तथा वाणी द्वारा इसके रूप का वर्णन नही किया जा सकता। जिस प्रकार शक्कर प्रत्येक प्राणी खाता है किन्तु शक्कर के स्वाद का वर्णन करना कठिन है, चखने से ही उसके स्वाद का अनुभव होता है। उसी प्रकार इस अनुभव प्रीति का स्वाद जिन्होने आस्वादन नही किया ऐसे भोले लोगो को इसका स्वरूप कैसे समझाया जा सकता है, परन्तु एक सामान्य से उदाहरण द्वारा यह कहा जा सकता है कि इस अनुभव-प्रेम का तीर अचूक है—रामबाण है, जिसे यह तीर लग जाता है, वह स्थिर हो जाता है अर्थात् परिणामो की चचलता मिट जाती है। उसकी वृत्तियें विषय-वासना मे न जाकर आत्मध्यान मे लीन रहती है, मन बहिरात्म भाव मे नही जाता और सब क्रियायें सहज भाव से होती है, बल प्रयोग नही करना पडता। लोक लाज या कीर्ति प्राप्त करने के लिये या लोगो के दिखाने के लिये यह स्थिर भाव नही होता, बल्कि जो कुछ होता है सहज भाव से होता है ॥३॥

जिस प्रकार नाद (गायन) पर लुब्ध हरिण अपने प्राणो की तृण के टुकडे के समान भी परवाह नही करता, उसी प्रकार आनंद स्वरूप प्रभु-प्रेम मे लीन व्यक्ति अपने प्राणो की तनिक भी परवाह नही करता। इस प्रभु-प्रेम की कथा तो अनिर्वचनीय है—अकथ है। इस लोक मे इसे कोई विरले भाग्यशाली ही जानते है। शब्द शक्ति भी कितनी बलवती होती है कि हरिण उस पर लुब्ध होकर अपने प्राणो की परवाह नही करता, फिर चैतन्य सत्ता तो उस शब्द शक्ति से अनतगुणी बलवान है। उस सत्ता मे सम्पूर्ण वासनाओ को होमकर अपनी वृत्ति का लीन होना स्वाभाविक है परन्तु धन-कुटुम्ब की ममता मे फँसे लोग इस स्वाभाविक दशा को भी नही समझ सकते। जिन्हे इस सत्ता की अनुभूति हो जाती है प्राण जाने पर भी इसे नही छोडते ॥४॥

अभेद अनुभव ५५ राग-कान्हडो (आशावरी)

देख्यो एक अपूरब खेला।
आप ही बाजी आप बाजीगर, आप गुरू आप चेला ॥दे०॥१॥
लोक अलोक बिचि आप विराजत, ग्यान प्रकाश अकेला।
बाजी छाडि तहाँ चढि बैठे, जहाँ सिन्धु का मेला ॥दे०॥१॥
वाग वाद षटवाद सहु मैं, किस के किस के बोला।
पाहण को भार कहा उठावत, इक तारे का चोला ॥दे०॥३॥
षट पद पद के जोग सिरीष सहै क्यु करि गज पद तोला।
आनदघन' प्रभु आइ मिलो तुम्ह, मिटि जाइ मन का झोला ॥दे०॥४॥

पाठान्तर—देख्यो = देखो (इ उ)। आप = आपही (उ)। लोक अलोक = लोकालोका (उ) विराजत = विराजिन (उ)। चढि = चढ (इ उ)। भार=भर (आ)। कहा = कही (इ उ)। जोग सिरिष = जोग सरीखी (इ उ) करि = कर

(इ उ)। 'तुम्ह' शब्द 'उ' प्रति मे नही है। मिटि जाइ = मिट जाय (इ उ)।

शब्दार्थ—अपूरव = अपूर्व, अलौकिक। बाजी = खेल, ससार प्रपच। बाजीगर = जादू के खेल दिखाने वाला, जादूगर। लोक अलोक = ये जैन पारिभाषिक शब्द हैं, लोक—जहाँ पचास्तिकाय हो, अलोक—जहाँ केवल आकाश हो, और पुद्गल और जीव आदि जहाँ न हो। सिन्धु = समुद्र। मेला=मिलाप। वागवाद = वाणी-विलास, तर्क-वितर्क। पटवाद = षट्दर्शन। पाहण = पत्थर। षटपद = भ्रमर, भोरा। झोला = सशय, चचलता, परदा।

नोट—यह पद अ, आ, इ' प्रतियो मे दो पदो मे है और 'उ' प्रति मे एक ही पद है। प्रथम दो पद—देखो 'सिन्धु का मेला ॥२॥' 'अ' प्रति मे ६९ वा पद, 'आ' प्रति मे ५१वा पद, और 'इ' प्रति मे ४३वा पद है। अतिम दो पद—'वागवाद मनका झोला ॥४॥' 'अ' प्रति मे २७वा, 'आ' प्रति मे ५२वा और 'इ' प्रति मे ४४वा पद है। मुद्रित प्रतियो मे दोनो भागो का एक ही पद है जैसा ऊपर है। वास्तव मे दो पद ही होने चाहिये। ऊपर जो दो भाग बताये गये हैं, उनके विषय पृथक-पृथक है, सम्बन्धित नही हैं। दोनो के ही एक-एक पद या अधिक, सग्रह कर्त्ता के दोष से अलग हो गये हैं जिनकी खोज असम्भव है।

अर्थ—कवि अभेद ज्ञान को बताते हुये कहता है—ससार मे एक अपूर्व-अलौकिक खेल देखा है। इस खेल की अलौकिकता यह है कि खेल और खेल दिखाने वाला पृथक पृथक नही हैं। जब अन्य खेलो मे खेल अलग होता है और खेल दिखाने वाला—सूत्रधार अलग होता है। इस खेल मे (जो देखा है) खेल भी स्वय है और और सूत्रधार (खेल दिखाने वाला जादूगर) भी स्वय ही है। आप ही गुरु है और आप स्वय ही शिष्य है अर्थात चेतन स्वय ही गुरु है और स्वय ही शिष्य है। गुरु शिष्य मे अभेद है—खेल खिलाडी में भेद नही है ॥१॥

अलोकाकाश मे लोकाकाश स्थित है, उस लोकाकाश मे यह चेतन सब स्थान मे वर्तमान है—विराजमान है। जहा केवल

मात्र ज्ञान का ही प्रकाश है। जहा पर राग-द्वेष रूप बाजी—खेल व
त्यागकर चेतन उस स्थान पर चढ जाता है जिस स्थान पर अप
सदृश ही मुक्त आत्माओ के सुख समुद्र का मिलाप होता है ॥२॥

कवि ने इस पद मे मुक्तात्माओ के स्थान का सक्षिप्त मे बहु
ही सुन्दर वर्णन किया है। अलोकाकाश मे लोकाकाश की स्थिति है
जहाँ पर धर्म और अधर्म द्रव्य है, जीव और पुद्गल है और आकाश
तथा इन पाँच द्रव्यो के प्रदेश एक दूसरे से सलग्न है अत ये अस्ति
काय कहलाते है किन्तु काल द्रव्य के प्रदेश छूटे हुये नही है—सलग्
नही है इसलिये यह द्रव्य होते हुये भी अस्तिकाय नही है। काल
लिये इसीलिये यह प्रसिद्धि है—"गया वक्त फिर हाथ नही आता।"

लोकाकाश के अत मे मुक्तात्माओ के ठहरने का स्थान है
जहाँ अनत सुख अनत ज्ञान दर्शन और अनत शक्ति का मिलाप होत
है। ऐसे स्थान पर चेतन पहुँच कर फिर कभी भी नीचे नही आता है

आगे कवि कहते है—षड् दर्शन व सब मत मतान्तरो मे तो
अनेक प्रकार के तर्क वितर्क भरे हुये है। इस वाणी विलास के पृथक
पृथक राग की गहनता का थाह पाना बडा कठिन है। किस किस के
वचनो को (मान्यताओ को) प्रामाणिक माना जावे। एक तार का-
एक तत्व का—एक स्वास का यह चोला—शरीर इन षडदर्शन रूप
पर्वतो का भार (बोझा) कैसे उठा सकता है ? अर्थात अल्प आयु मे
अनेक दर्शनो की जानकारी करना पर्वत के समान भारी है। कहने
का तात्पर्य यह है कि इस छोटे से जीवन मे आत्मानुलक्षी बनकर ही
सिद्धि प्राप्त की जा सकती है ॥३॥

(यहा षट्पद मे श्लेष है—अर्थ है—(भ्रमर और षड दर्शन)
षटपद—भ्रमर के पैरो के समान षडदर्शनो के ज्ञान की आत्मज्ञान
रूपी गजपद से कैसे तुलना की जासकती है ? षडदर्शनो का ज्ञान

प्राप्त हो जाने पर भी आत्म-ज्ञान नही होता है। तब समानता कैसी ?

हे आनद स्वरूप चेतन प्रभु। आपका साक्षात्कार हो जाय तो यह मन की सब उलझने सुलझ जावे अर्थात मन का सशय और चचलता नष्ट हो जावे।

आत्मज्ञान—भेद ज्ञान—की प्राप्ति ही मन की चचलता नाश कर देती है।

चतुर्गति चौपड ५६ राग—धन्यासी

कुबधि कूबरी कुटिल गति, सुबुधि राधिका नारि।
चोपरि खेलै राधिका, जीतै कुबिजा हारि॥ साखी

प्रानी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर।
नरद गजफा कौन गनत है, मानै न लेखे बुधिवर ॥प्रा०॥१॥
राग दोस मोह के पासे, आप बणाये हित धर।
जैसा दाव परै पासेका, सारि चलावै खिलकर ॥प्रा०॥२॥
पाच तलै है दुआ भाई, छका तलै है एका।
सब मिलि होत बराबर लेखा, इह विवेक गिणवेका ॥प्रा०॥३॥
चौरासी मावै फिरै नीली, स्याह न तोरै जोरी।
लाल जरद फिरि आवै घर मै, कबहुक जोरी बिछोरी ॥प्रा०॥४॥
भीर विवेक के पाउ न आवत, तब लगि काची बाजी।
'आनन्दघन' प्रभु पाव दिखावत, तो जीतै जीव गाजी ॥प्रा०॥५॥

पाठान्तर—कुबधि = कुवद (इ), कुवुधी (उ)। कूबरी = कुवरी (उ)। सुबुधि = सुबुद्धि (अ उ)। नारि = नारी (उ)। चोपरि = चोपर (उ)। कुबिजा = कुब्जा (अ), कुवज्या (इ), कुवजाहारी (उ)। प्रानी ' 'चोपर = खेले चतुर

गति चोरगरि, प्रानी मेरो (आ)। गजफा = गजीफा (अ इ)। मानै = मोने (उ)। बुधिवर = बुद्धिवर (उ)। राग दोस मोह के = राग दोस दोई मोह के (अ)। बणाये = वनाए (इ), विनाये (उ)। हितधर = हितधर (उ)। सारि = सार (अ इ उ)। खिलकर = खलकर (अ), खीलकर (क)। मिलि = मिल (इ उ)। मावै = माचै (अ इ उ), माहे (क वि)। तोरै = तोरी (इ उ)। जोरी = जोगि (इ), जोर (उ)। भीर = धीर (अ), भाव (क ब वि)। पाउ = पास (अ)। लगि = लग (अ इ)। पाव = पौव (अ), पाउ (उ)।

शब्दार्थ—चतुर गति = चारो गतियें—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। नरद = चौपड की गोट, स्यार। गजफा = एक प्रकार का छोटे पत्तो का खेल जिसमे आठ रंग और ९६ पत्ते होते है। दोस = द्वेष। हितधर = प्रसन्न होकर। मारि = गोटी। खिलकर = खेलकर। तलै = नीचे। पाच = सख्या-वाचक, पचेन्द्रिय, पचाश्रव। दुआ = दो, राग-द्वेष। छका = छै, छै काय के जीव, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, छै लेश्या। एक = एक, मन, आत्मज्ञान। चौरासी = ८४ लक्ष योनिये। नीली = नीली गोट, नीललेश्या। स्याह = काली गोटी, कृष्ण लेश्या। भीर = साझीदार। पाउ = पासे का दाव पौ बारह, शुद्ध स्वभाव। गाजी = धर्मयुद्ध विजेता वीर।

अर्थ – कवि ने चौपड खेल के माध्यम से जीवन चौपड की जो बाजी लग रही है उसे किस प्रकार जीता जासकता है, समझाया है। चौपड चार पट्टी और छियानवे खाने—घर की होती है। तीन चोकोर पासो से चौपड खेली जाती है। चार रग—नीली (हरी) काली, (स्याह) लाल और पीली की १६ गोटियें—सरें होती है। प्रत्येक पासे मे पाच ⁚•⁚ के नीचे की ओर दो ˙ का चिन्ह, और छै ⁝⁝ के नीचे की ओर एक . का चिन्ह होता है। जिस तरह के चिन्ह के पासे सन्मुख (ऊपर की ओर) होते है, उसी के अनुसार गोट चलती है। गोटी का जव तक तोड नही होता अर्थात् वह दूसरी गोटी मारकर हटा नही देती तव तक वह अपने घर मे नही जा सकती है। यह

चौपड के खेल का स्वरुप है। आत्मा ने चार गति वाली चौपड खेल के लिये सजा रखी है। वह इसे विवेक पूर्वक खेलती है तो चौपड मे विजय प्राप्त कर लेती है, नही तो ८४ के चक्कर मे फसी ही रहती है। इसी भाव को कवि ने इस पद मे बताया है।

कुटिल—खोटी चाल चलने वाली कुबुद्धि—कूबडी कुब्जा के समान है और सुबुद्धि सही चाल चलनेवाली—राधिका के समान है। ये दोनो आपस मे चौपड का खेल खेलती हैं। बहुत बार कुबुद्धि कुब्जा के जीत के लक्षण प्रकट हो जाते हैं परन्तु अन्त मे सुबुद्धि राधिका की विजय होती है। कुबुद्धि कुब्जा हार जाती है।

मेरा प्राणी-आत्मा चतुर्गति—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवता रूप चौपड का खेल खेलता है। इस खेल की—गोटवाली चौपड और ९६ पत्ते और आठ रग वाले गजफा का खेल की कथा—समानता हो सकती है। चतुर्गति चोपड के सन्मुख इन खेलो की क्या गिनती है ? ये खेल इसके आगे तुच्छ हे। विवेकशील इन खेलो को कोई महत्व नही देते है। बुद्धिमान कभी इन खेलो मे अपना समय व्यर्थ नही खोते है। वे तो जीवन की चौपड को महत्व देकर उसमे विजयी होना चाहते हैं ॥१॥

इस आत्मा ने चतुर्गति चौपड खेलने के लिये राग, द्वेष और मोह के पासे बडे प्रेम से बनाये है। जैसा पासा आता है उसी के अनुसार गोट (सार) चलाई जाती है। इस चतुर्गति चौपड मे आत्मा को राग द्वेष और मोह के कारण ही परिभ्रमण करना पडता है। अर्थात् रागद्वेष मोह की प्रवृत्तियो मे जैसी जैसी वृतियां उभरी है, उसके अनुसार ही आत्मा को गतियो और उत्पत्ति स्थानो मे जाना पडता है ॥२॥

चौपड के पासो मे पाच के चिन्ह के नीचे दो का चिन्ह है और छै के चिन्ह के नीचे एक का चिन्ह होता है। पाच और दो सात होते

है और छै और एक भी मिलकर सात होते है, जीवन की चौपड मे विवेकशील प्राणी अपने विवेक से काम ले तो वह बाजी जीत जाता है, वरना भटकता ही रहता है। पाच का अर्थ है, पचाश्रव और दो का अर्थ है, राग और द्वेष की प्रवृत्ति, छै का अर्थ है, षट्काय और एक का अर्थ है, असयम प्रवृत्ति। इन पासो की चालो मे विवेक नही रखा गया–पचाश्रवो मे और राग द्वेप की प्रवृत्ति मे और षट्काय हिंसा और असयम मे लगे रहे—तो चार गति वाली जीवन चौपड मे, पिटते रहे–मरते रहे, फिर बैठते रहे–जन्म लेते रहे तो बाजी हार की ओर चली जायगी। यदि विवेक को जागृत रखकर पचाश्रव, राग द्वेष पर अकुश रख कर और षट्काय की हिंसा और असयम से निवृत्त होकर जीवन गोटी चलाई गई तो निश्चय पूर्वक खेल मे विजय होगी। अर्थात् भव भ्रमण नष्ट होकर लक्ष की प्राप्ति हो जायगी ॥३॥

चौपड मे चार रग की गोटिया होती है। नीली (हरी), काली (स्याह), लाल, और पीली। इन्हे आत्मा की लेश्या–अध्यवसाय का प्रतीक समझना चाहिये। चौरासी खानो मे—चोरासी लाख उत्पत्ति स्थानो मे—नीली (हरी) गोट, स्याह गोट से अपनी जोडी न तोडकर (छोडकर) फिरती रहती है। लाल और पीली गोटी कभी कभी अपनी जोडी तोड कर अपने स्थान–घर मे—आ जाती है।

जब तक कृष्ण और नील लेश्या के अध्यवसाय आत्मा के साथ है तब तक आत्मा चौरासी मे भ्रमण करती ही रहती है। जब शुभ लेश्या के अध्यवसाय वाली आत्मा अशुभ लेश्या का साथ छोड देती है तो आत्म स्वभाव रूप घर मे आ जाती है। और फिर वह अपने लक्ष को प्राप्त करने मे समर्थ हो जाती है ॥४॥

जिस प्रकार चौपड के खेल मे पौ नही आती है तब तक बाजी जीतने के आसार नही होते है अर्थात् गोटियाँ अपने गतव्य की ओर नही जा सकती है। अत वह बाजी (खेल) कच्चा (अधूरा) ही है।

उसी प्रकार आत्माके सिरी—साझीदार-विवेक के शुभ अध्यवसाय रूप पौ नही आती तब तक वह चतुगति रूप चौपड जीत नही सकता है। उसका खेल कच्चा ही रहता है। अर्थात् आत्मा अशुभ अध्यवसायो को त्याग कर शुभ अध्यवसायी नही होती तब तक अपने लक्ष की ओर अग्रसर नही हो सकती है।

आनद की समझ आत्मा शुभ अध्यवसाय रूप या सम्यकत्व रूप पौ को प्रकट करे—दिखावे—तो गाजी (धर्म युद्ध मे विजय वीर) बन कर वाजी—खेल—जीत लेता है। राग-द्वेष मोह आदि शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर गाजी—विजय वीर बन जाता है ॥५॥※

※ इसी आशय का महात्मा सूरदास का एक पद श्री नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित 'सूरसागर' मे है। वह पद इस प्रकार है—

चौपरि जगत मडे जुग बीते।
गुन पासे क्रम अक चार गति सारि न कबहू जीते ॥
चारि पसार दिसानि, मनोरथ, घर, फिरि फिरि मिलि आनै।
काम क्रोध मद सग मूढ मन खेल हार न मानै ॥
बाल विनोद वचन हित अनहित, बार बार मुख भाखै।
मानो वग बगदाइ प्रथम, दिसि आठ सात दस नाखै ॥
षोडष जुक्ति, जुवति चिति षोडष, षोडष बरस निहारै।
षोडष अगनि मिलि प्रजक पै छै दस अक फिरि डारै ॥
पद्रह पित्रकाज चौदह दस-चारि पढे, सर साधै।
तेरह रतन कनक रुचि द्वादस अटन जरा जग बाधै ॥
नहि रुचि पथ, पयादि डरनि छकि, पच एकादस ठानै।
नौ दस आठ प्रकृति तृष्ना सुख सदन सात सधानै ॥

आशा व प्रमाद जय ५७ राग—आसावरी

जग आसा जजीर की गति उलटी कुल मौर।
जकर्यो धावत जगत मे, रहै छूटौ इक ठौर ॥साखी॥
औधू क्या सोवे तन मठ मे, जागि विलोकन घट मे ॥
तन मठ की परतीत न कीजै, ढहइ परै एक पल में।
हलहल मेटि खबरि लै घट की, चिन्है रमता जल मे ॥औधू०॥१॥
मठ मे पच भूत का वासा, सासा धूत खबीसा।
छिन छिन तोहि छलनकु चाहै, समझै न वौरा सीसा ॥औधू०॥२॥
निरपर पच बसै परमेश्वर, घटमे सूछिम बारी।
अभ्यास सै विरला, निरखै धू की तारी ॥औधू०॥३॥
आसा मारि आसरण धरि घट मे पा जाप जगावै।
'आनदघन' चेतन मै मूरति, नाथ निरजन पावै ॥औधू॥०॥४॥

पाठान्तर—धावत = धात (आ)। रहै छूटौ = बधै छूटै (इ), रहि छूटो (उ)। इक = एक (उ)। औधू = अवधू (अ.उ)। सोवै = सोवइ (उ)। मठ = मन (अ)। ढहइ = ढहि (इ उ), ढहे (अ)। एक = इक (अ इ)। चिन्है रमता = विचरै समता (उ)। साना = सासा (इ उ), समा (अ)। धूत = भूत (उ)। खवीसा = खईसा (इ), खबासा (उ)। सीसा = सासा (आ)। निरपर= सिर पर (क,ब वि)। सूछिम = सूछम (इ अ)। प्रकासे विरला = लिखावै

पजा पच प्रपच नारि-पर भजत, सारि फिरि मारी।
चोक चवाउ भरे दुविधा छकि रस रचना रुचि धारी।
बाल किशोर तरुन जर जुगसो सुपक सारि ढिग ढारी।
सूर एक पो नाम विना नर फिरि फिरि बाजी हारी ॥६०॥

कोई (उ), लखे कोई (इ,क ब वि)। निरखै=निरखत (उ)। ध्रू = ध्रु (अ इ उ)। धरि = धर (उ)। मै = मय (अ इ.उ)।

शब्दार्थ—गति = चाल । कुल = बिलकुल । मोर = मयूर, जीव। जकर्यो = बंधा हुआ। ठौर = स्थान। छूटौ = छुला हुआ। जागि = जागृत होकर। विलोकन = देखता, विचारता। परतीत = प्रतीति, विश्वास। ढहई= गिरना। चिन्है.....जल मे = जल मे खेलने वालो के चिन्ह (निशान) खोजना चाहता है। पच भूत = पृथ्वी, जल, तेजस् (अग्नि), वायु और आकाश। धून = धूर्त। सासा = श्वास। खबीसा = बुराइयो का घर, दुष्ट, दानव। निर पर = जो पर (अन्य) नही है। सूछिम = सूक्ष्म। बारी = खिडकी। ध्रू = ध्रुव। तारी = तारा। आशा मारि = आशा-तृष्णा त्याग कर। आसण = स्थिरता। अजपा जाप = ध्वनि रहित जाप, मन मे चिंतन रहित होकर। चेतन मै = उपयोग मय। निरजन = कर्ममल रहित।

अर्थ—ससार मे आशा तृष्णा के बन्धन की और जजीर (रस्सी) के बन्धन की चाल एक दूसरे से बिलकुल ही उलटी-विपरीत है। जजीर-रस्सी-से बधा हुआ तो अपने स्थान से थोडा सा भी इधर उधर नही हो सकता है किन्तु आशा-तृष्णा से जकडा हुआ प्राणी ससार मे दौड लगाता ही रहता है—भ्रमण करता ही रहता है और इस आशा-तृष्णा के बन्धन से छूटा हुआ—मुक्त हुआ—प्राणी एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। वह भव-भ्रमण से मुक्त होकर आत्म सुखो मे स्थिर हो जाता है ॥साखी॥

हे अवधूत ! आत्मन् ! इस शरीर रूपी मठ मे सोता हुआ क्या पडा है ? अचेत क्यो हो रहा है ? जग जागृत होकर—सचेत होकर-अपने घट को (हृदय को) देख। विचार कर कि क्या हो रहा है ? इस शरीर रूपी मठ (आवास) का किंचित भी विश्वास मत कर, इसका जरा भी भरोसा नही है कि न मालूम यह कब ढहकर क्षण मात्र मे भूमिसात हो जावे—गिर पडे। इसलिये अपनी सम्पूर्ण हल-

चक्र दौड रूप (मोह माया) को त्यागकर अपने हृदय को टटोल कि इसमे क्या है ? इस घट रूपी सरोवर के जल मे रमण करने वाले आत्माराम को पहचान ॥१॥

इस शरीर रूपी मठ मे पचभूत निवास करते है। जिस प्रकार शरीर पच भूतो का निवास स्थान है अर्थात् पृथ्वी, जल, तेजस् वायु आकाश का स्थान शरीर है वैसे ही मठ भी इनसे निर्मित है और इस शरीर-मठ मे श्वास रूप धूर्त, दुष्ट दानव भी है। जो क्षण क्षण मे छलना चाहता है अर्थात् बहकाता रहता है। हे मठ निवासी भोले अवधूत शिष्य ! तू इस बात को समझता क्यो नही है ? यह शरीर जड पुद्गलो से बना हुआ है और तू ज्ञान धन चेतन है। यह तुझसे विजातीय है। शरीर तो इन जड पदार्थों मे ही सुख मानने वाला है। इसलिये तू इनके सयोग से अनादि काल से ठगा जाकर अपने चैतन्य स्वरूप को भूला हुआ है। इस भूल को अब सुधार ॥२॥

अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु इन पच परमेश्वर का तेरे मस्तक मे वास (निवास) है और तेरे घट मे सम्यक्त्व रू सूक्ष्म खिडकी है जिसके मार्ग से तू क्षायिक भाव रूप ध्रुवतारे दर्शन कर सकता है। परन्तु यह प्रकाश किसी (विरले) भाग्यशा को ही दीर्घ अभ्यास के द्वारा प्रकट होता है।

हृदय जब तक अनेक कामनाओ मे फँसा हुआ है, जब नाना प्रकार के सुखो की व भोगो की आशाये हृदय मे घर हुये है, तव तक आत्म-चिन्तन नही होता है। हृदय जब सब नाओ को त्याग कर केवल आत्म लक्षी हो जाता है तो उसे दर्शन हो जाता है ॥३॥

सम्पूर्ण आशाओ को मारकर (त्यागकर), मन मे दृढ रि रूप आसन जमाकर जो अजपा जाप अर्थात् उच्चारण रहित-'

रहित जाप-ध्यान, करता है तो वह आनन्द स्वरूप ज्ञान दर्शनमय निरजन स्वामी—परमात्मदेव को प्राप्त कर लेता है ॥४॥

आशाये त्यागे बिना कोई भी आत्म साधना मे सफल नही हो सकता है। इस साधना मे आसन का भी बहुत बडा महत्व है। आसन से काया के योग पर अकुश रहता है। यदि शरीर ही स्थिर न रह सका तो मन का स्थिर होना असम्भव है। इसलिये यम-नियम के पश्चात् आसन योग का ही स्थान अष्टाग योग मे है। आसन मे शरीर का शिथिलीकरण ही मुख्य है। ज्यो-ज्यो शरीर शिथिल होता जावेगा, त्यो-त्यो मन एकाग्र होता जावेगा। मन की एकाग्रता ही आत्मसिद्धि का द्वार है।

आशा जय **५८** **राग—आशावरी**

आसा औरन की कहा कीजै, ज्ञान-सुधारस पीजै ॥
भटकै द्वारि-द्वारि लोकनकै, कूकर आसाधारी ।
आतम अनुभव रसके रसिया, उतरइ न कबहु खुमारी ॥आ०॥१॥
आसा दासी के जे जाये, ते जन जग के दासा ।
आसा दासी करे जे नायक, लायक अनुभौ प्यासा ॥आ०॥२॥
मनसा प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म अगनि परजाली ।
तन भाठी अवटाइ पीयै कस, जागे अनुभौ लाली ॥आ०॥३॥
अगम पीयाला पीओ मतवाला, चिन्हे अध्यातम वासा ।
'आनंदघन' ह्वै जग मे खेलै, देखै लोक तमासा ॥आ०॥४॥

• र—कहा = क्या (अ आ)। ज्ञान = ताते ग्यान (इ उ)। आसाधारी = आसाधारी रे (अ इ)। उतरइ = उतरै (आ), ऊतरे (इ उ)। कबहु = कबहू (आ), कबहु (इ), कबहूँ (उ)। जे = जग (अ)। अनुभौ = अनुभव (आ)। प्यासा = पियासा (उ), पिपासा (इ)। अगनि = अग्नि (अ)। भाठी = माठी

(आ), भठी (उ) । अवटाइ = अवटाई (अ उ), औटाय (इ) । अगम = आगम (उ) । पीआला = पीआला (आ), पियाला (इ), प्याला (उ) । चिन्है = चीन्ह (आ), चीन्ही (इ), चीनी (उ) । आनन्दघन खेले = आनन्दघन वे जग मे खेले (उ), आनन्दघन चेतन ह्वै खेलै (क व वि) । लोक = खलक (इ) ।

शब्दार्थ—ओरनकी = दूसरो की । द्वारि-द्वारि = घर-घर, दरवाजे-दरवाजे । कूकर = कुत्ता । खुमारी = नशा । जाये = जन्मे, जन्म लिया । नायक = नेता, स्वामी । मनसा = मनकी भावना । ब्रह्म = शुद्ध स्वरूप । परजाली = प्रज्वलित करके, जलाकर । भाठी = भट्टी । अवटाइ = औटाकर । कस = काढा, सत्व । अगम = अगम्य, गहन, दुर्लभ ।

अर्थ—श्री आनन्दघनजी उद्बोधन दे रहे है—दूसरो की आशा क्या करते हो ? दूसरे—जो अपने नही है, उनसे क्या आशा रखी जा सकती है ? पौद्गलिक सुखो से शाति एव सुख की क्या आशा की जा सकती है ? वे तो क्षणिक सुख देकर (भुलावे—भ्रम मे डालकर) फिर दुख और अशाति के दाता है। इन पौद्गलिक सुखो की आशा-तृष्णा त्याग कर ज्ञान रूप अमृत रस का आस्वादन करो। इस अमृत रस के पीने से निरतर रहने वाले सुख और शाति की प्राप्ति होती है।

जो पौद्गलिक सुखो की आशा तृष्णा के पीछे पडते है, वे उस श्वान (कुत्ते) के समान है जो झूठे टुकडो की प्राप्ति की आशा लेकर लोगो के घर घर भटकता फिरता है । पौद्गलिक सुखो की आशा-तृष्णा लिये हुये भटकने से, वे सुख प्राप्त हो भी जाय, तो यह दुराशा मात्र है। इसलिये इन झूठे सुखो की आशा त्यागकर जो आत्मानुभव रस के रसिकजन है, वे उस आत्मानुभव (ज्ञानामृत) रस को पीकर इतने मग्न (मस्त) हो जाते है कि उसका खुमार (नशा) कभी दूर होता ही नही है। वे सदा आत्मानन्द मे गर्क—डूबे हुए रहते है ॥१॥

ससार मे जीवन मे रस पैदा करने वाली आशा ही है। वह भविष्य के नये-नये स्वप्न सजोती रहती है। आशा-तृष्णा ही ससार

है। (अत आत्मोत्थान करने वालो को आशा का त्यागकर भव-भ्रमण को घटाना चाहिये) जो ससार को—भव-भ्रमण—को घटाना चाहते है, उन्हे आशा रहित होकर अनित्य अशरण आदि भावनाये अपनाना चाहिये। ये भावनायें आशाओ पर अकुश का काम करती है।

आशा-दासी की जो सताने है, वे ससार की दास हैं—गुलाम है क्योकि दासी के पुत्र तो दास ही होगे, किन्तु जिन्होने आशा को अपनी दासी बना लिया है—आशा दासी पर नेतृत्व कर अपने नियत्रण मे ले लिया है, वे स्वरूपानुभव की प्यास को तृप्त करने के अधिकारी हैं। आत्मानुभव के प्यासे, योग्य नेता है।

सासारिक सुखो की आशा रखने वाले, वास्तव मे जगत के दास ही है। वे प्रत्येक को प्रसन्न रखने के प्रयत्न मे न मालूम क्या-क्या कर डालते है। दूसरो की खुशामद मे लगे रहते है। अत वे दास है। जो दास वृत्ति धारण कर लेते है उन्हे कटु और अपशब्द सहन करने पड़ते है, और जिन्होने आशा को दासी बना लिया है—अपनी आज्ञाकारिणी बना लिया है अर्थात् पौद्गलिक सुखो की आशा को त्याग दिया है वे आत्मानुभव के अधिकारी बन गये हैं ॥२॥

आत्म शुद्धि की इच्छा रूप प्याले मे स्वाध्याय रूप मसाला भर कर ब्रह्म-आत्म-तेज (तप) रूप अग्नि प्रज्वलित कर शरीर रूपी भट्टी में औटाकर जो उस मसाले का सत्व (कस) पीते है उन्हे अनुभव ज्ञान रूप लालिमा प्रकट हो जाती है ॥३॥

इस पद मे कवि ने रूपक द्वारा आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया को समझाया है। ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग के द्वारा आत्मा शुद्ध, शुद्धतर और अन्त मे शुद्धतम अवस्था को प्राप्त हो जाती है। अतिम अवस्था मे पहुँचने पर उसे ज्ञान रूप लालिमा—प्रकाश प्राप्त हो जाता है।

घट = घर (आ)। है नाही नही = है नहि नही है (आ), है नाही है (इ), है नाही हे (उ)। नै = नय (अ इ उ)। निरपखि = निरपख (इ उ)। मत = मति (आ)। मइ = माहि (अ)। न्यारी = नारी (उ)। सुधारस = अगोचर (उ)।

शब्दार्थ—अवधू = ससार से निर्लिप्त महात्मा। नागर = चतुर। बाजी = खेल। बाभण = ब्राह्मण, पडित। थिरता = स्थिरता। ठानै = ठानता है, सकल्प करता है। उपजै = उत्पन्न होता है। विनसै = नष्ट होता है। उलट पुलट ध्रुव सत्ता राखै = रूप वदलता हुआ भी अपना अस्तित्व रखता है। फुनि = पुनि, फिर। कनक = स्वर्ण, सोना। कु डल = कान मे पहिनने का जेवर। कु डल कनक सुभावै = सोने के कु डल को तुडाकर फिर दूसरा गहना बना लिया जाता है किन्तु उसका स्वर्णपना वैसा का वैसा ही रहता है। ताइ = उसमे। समावे = समा जाती है, प्रवेश कर जाना। नै = नय, नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, और एवभूत ये सात नय हैं। सतभगी = सप्तभगी न्याय, स्यात् अस्ति, स्यात नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य। निरपखि = निरपक्ष, पक्षपात रहित। मतजगी = अपने मत मे मस्त, साम्प्रदायिक विवाद की रुचि वाला। सरवगी = सब नय प्रमाण, सप्तभगी नय।

अर्थ—इस पद मे जैन दर्शन के अनोखे सिद्धान्त—द्रव्य-गुण और पर्याय का सुन्दर वर्णन है। द्रव्य सदा (त्रिकाल मे) एक-सा रहता है चाहे उसके रूप सदा परिवर्तन होते ही रहे। द्रव्य के द्रव्यत्व का कभी नाश नही होता है। रूप सदा परिवर्तनशील होते है। आत्मा (जीव) पर्यायो के कारण सदा अन्य-अन्य रूप बदलता रहता है किन्तु फिर भी आत्मा—आत्मा ही रहता है। स्वर्ण एक रूप (कु डल अगूठी आभूषण आदि) से वार वार गलकर और—और रूप मे प्रकट हो जाता है किन्तु फिर भी वह स्वर्ण का स्वर्ण ही रहता है। इस बात का दिग्दर्शन इस पद मे किया गया है।

हे अवधू ! शरीर रूप नगर में वास करने वाला आत्मा रूप चतुर नट का खेल बडा ही विचित्र है। इसके रहस्य को वेदज्ञ ब्राह्मण और कुरानपाठी काजी जैसे बुद्धिमान पुरुष भी नही जान सके है।

यह आत्मा एक ही समय में उत्पन्न होता है फिर उसी समय नाश को प्राप्त हो जाता है, और उसी समय मे अपनी निश्चल सत्ता मे स्थिर (अटल) रहता है। यह उत्पाद-व्यय की उथल-पुथल सदा चलती रहती है किन्तु यह आत्मा अपनी ध्रुव सत्ता को कभी नही छोडता है। उत्पन्न होना, विनाश होना एव उसी समय ध्रुव (स्थिर) रहना, यह बडी विचित्रता है। जो हमने कभी नही सुनी। हमने ही क्या, बडे बुद्धिमान वेदज्ञ ब्राह्मण और कुरान-पाठी काजी ने भी नही सुनी ॥१॥

जैन दार्शनिको ने पदार्थ के स्वरूप का नाश न होना, नित्य का लक्षण माना है। इस लक्षण के अनुसार प्रत्येक द्रव्य मे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य पाये जाते है। जैन दर्शन के अनुसार जो वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त हो उने सत् अथवा द्रव्य कहते है। आत्मा पूर्व भव को त्याग कर उत्तर भव ग्रहण करती है और दोनो ही अवस्थाओ मे आत्मा समान रूप से रहती है। इससे आत्मा में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सिद्ध होता है।

'उपन्नेइ वा विगमेइ वा ध्रुवेइ वा' इन तीन पदो पर ही—सिद्धान्तो पर—ही जैन दर्शन की नीव स्थिर है।

एक के अनेक रूप हो जाते हैं, अनेक फिर भी एक ही है। स्वर्ण का कुडल हो जावे, अनेक प्रकार के अनेक आभूषण बन जावे फिर भी स्वर्ण तो स्वर्ण हो रहता है। स्वर्ण का स्वर्णत्व सब आभूषणो में विद्यमान रहता है। वह कभी नाश नही होता है।

उसी प्रकार आत्मा एक द्रव्य तथा मनुष्य, गाय, बैल, कबूतर, शुक, पिक, देव नारक आदि उसके पर्याय है। इन पर्यायो मे आत्मा सदा, सर्वदा वैसा का वैसा ही रहता है।

जल तरग मे भी पूर्व तरग का व्यय, नवीन का उत्पाद है, किन्तु जलत्व तो दोनो मे ध्रुव रूप से देखने मे आता है। वैसे ही मिट्टी का घट आकार रूप उत्पाद, टूटने पर ठीकरे रूप मे व्यय, किन्तु इन दोनो अवस्थाओ मे मिट्टी का रूप एक ही है। सूर्य की किरणो मे भी उत्पाद, व्यय और ध्रुवता देखने मे आती है। अर्थात् सूर्य की किरणें अनेक दिशाओ मे फैलकर अनेक दिखाई देती है किन्तु सूर्य रूप मे वे एक ही है ॥२॥

है, नही है और वचन से जो कहा नही जा सकता, ऐसा स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्याद् अवक्तव्य इन तीनो भेदो के चार उत्तर भेद—(स्याद् अस्ति नास्ति, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य)—मिलने से सप्तभगी स्याद्-वादनय, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, निश्चय और व्यवहार नय और नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत नयो के प्रमाणो से परीक्षा करके आत्मा के वास्तविक स्वरूप को कोई भाग्यशाली ही अपना पक्षपात त्याग कर ही जान सकता है। लेकिन जो कदाग्रही है, विवादी है वे इसके वास्तविक स्वरूप को क्या जान सकते है ॥३॥

कितने ही परमात्मा को सब जड-जगम और सब स्थानो में व्याप्त मानते है किन्तु फिर भी उसकी अलग सत्ता स्वीकार करते है। श्री आनन्दघनजी कहते है—आनन्द स्वरूप भगवान के अमृतमय वचनो को जानते है, उनके वचनो पर विश्वास करते है, वे ही परमार्थ (मोक्ष) को प्राप्त करते है ॥४॥

अनेकान्तवादी आत्मा को शुद्ध ज्ञान की अपेक्षा सर्व व्या
मानते हैं और वस्तु की अपेक्षा सर्व व्यापी नही मानते है। जाति
अपेक्षा, आत्मा को एक और वस्तु की अपेक्षा से आत्माओ को पृथ
पृथक मानते है। जो इस रहस्य को जान गये है वे ही परमार्थ
प्राप्त करते है॥

क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति ६० राग– साव

अवधू ! अनुभव कलिका जागी, मति मेरी आतम सुमरिन लागी॥
जाइ न कबहु और ढिग नेरी, तोरी बनिता बेरी।
माया चेरी कुटब करी हाथे, एक डेढ दिन घेरी॥अव०॥१॥
जामन मरन जरा वसि सारी, असरन दुनियां जेती।
दे ढवकाय न वा गमै मीया, किस पर ममता ऐती॥अव०॥२॥
अनुभव रस मे रोग न सोगा, लोक वाद सब मेटा।
केवल अचल अनादि अबाधित, शिव शकर का भेटा॥अव०॥३॥
वरषा बूंद समुंद समानै, खबरि न पावै कोई।
'आनन्दघन' ह्वै जोति समावै, अलख लखावै सोई॥अव०॥४॥

पाठान्तर—सुमरिन=सुमिरन (आ), सुमरन (इ उ), सू मि
(क)। जाइ=जो (अ), जायै (इ)। कबहु=कहु (उ)। तोरी=तेरी (इ
बेरी=चेरी (अ)। चेरी=वेरी (आ उ)। करी हाथे=कडी हाथे (
जामन=काया (उ)। दे ढवकाय मीया=डेढ वकाय न वाग मे मीया
डे ढव कायण वागमे पीया (उ), देढव काई न वाग मे मीया (व)। पर
(आ)। ममता=मनता (उ)। अनुभव=अनुभो (इ)। रोग=राग
वाद=वेद (आ), वेट (उ)। सब=सत (उ)। शकर का=सकर की
बूंद=बुंद (आ), समुंद=समुद (अ)। समानै=समानि (आ) समा
खबरि=खबर (इ उ)। ह्वै=है (आ)।'इ' प्रति मे 'है' या 'ह्वै' शब्द

की (उ)। जोति समानै = ज्योति समावे (अ), जोत जगावै (उ)। लखावै = कहावे (आ)।

शब्दार्थ—जागी = जागृत हो गई, विकसित हो गई। मति = बुद्धि। ढिग = पास। नेरी = निकट। वनिता = विवशता। बेरी = बेडी। चेरी = दासी घेरी = घेरा डालकर। वसि = वश मे करके। सारी=सब की। असरन = प्रभाव रहित, अशरण। दे ढवकाय = त्याग दे, दबा दे। न वा गमे = वो अच्छी नही लगती। लोकवाद = ससार के अन्यवाद, ससार के अन्य मत मतान्तर। भेटा = मिलन।

अर्थ—हे अवधू ! अव अनुभव ज्ञान रूपी कली विकसित हो गई है, इस कारण मेरी मति (बुद्धि) आत्म-स्मरण मे लग गई है—आत्म रमण मे लग गई है। अव आत्म भाव के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु मे—अन्य किसी भी भाव के निकट नही जाती है। उसने (मेरी मति ने) विवशताओ की वेडी (वधन) को तोडकर माया-दासी तथा उसके परिवार (लोभादि) को चारो ओर से एक डेढ दिन का घेरा डालकर अपने हाथ कर लिया है—अपने वश मे कर लिया है। अव ये (माया लोभादि) कुछ विगाड नही कर सकते है ॥१॥

यह सम्पूर्ण ससार जन्म, मृत्यु वृद्धावस्था के वशीभूत है, इस लिये अशरण है, अर्थात् ससार मे ऐसा कोई नही है जिस पर इनका प्रभाव न हो किन्तु अनुभव ज्ञान रूपी कलिका के विकसित होने से जन्म, मृत्यु और जरा का मुझ पर कोई प्रभाव नही है। मुझे तनिक भी भय नही है। मुझे ये तनिक भी अच्छे नही लगते है और न इन पर मेरा ममत्व ही है इसलिये मैंने इन्हे दूर कर दिया है—छोड दिया है ॥२॥

अनुभव के रसा स्वादन से शारीरिक रोग और मानसिक शोक-सताप नही रहते है। आत्मा और शरीर के भेद-ज्ञान का नाम ही अनुभव है। आत्मा, ज्ञान स्वरूप और आनन्द

स्वरूप है। शरीर, रोगो का और मन शोक-सतापो का घर है। भेद ज्ञानी मानसिक व शारीरिक दुखो से कभी दुखी नही होता है। वह तो दर्शक वनकर देह और मन का नाटक देखता है और अपने ज्ञानानद मे मग्न रहता है। अनुभव ज्ञान होने पर निन्दा-स्तुति लोकापवाद दूर हो जाते है—इनका कुछ असर नही होता है। यहाँ (अनुभव ज्ञान मे तो) केवल अचल, अनादि, वाधा रहित कल्याण-कारण, मगलदायक चैतन्य शक्ति का साक्षात्कार रहता है ॥३॥

वर्षा की बू द जिस भाति समुद्र मे समा जाती है—मिल जाती है और फिर उस बू द की किसी को खबर नही लगती है कि वह बू द कौन सी है वह तो समुद्र रूप हो जाती है। उसी भाति अनुभव ज्ञानी आनदराशी की ज्योति मे समा जाते हैं—सिद्ध परमात्म स्वरूप प्राप्त हो जाते है, इसलिये अलख-अलक्ष्य हो जाते है क्योकि इस विषय पर विचार एव लेखनी की गति नही होती। समुद्र मे वर्षा की बू द की खोज नही हो सकती क्योकि वह समुद्रमय वन जाती है वैसे ही चेतन विशाल आनन्द समुद्र बन जाता है ॥४॥

नोट—इस पद मे द्वितीय द्विपदी के दूसरे चरण "दे ढवकाय न वा गम मीया" का अर्थ स्पष्ट नही हो पाता है। हमने इसका अर्थ पूर्वापर के सम्वन्धो को देखते हुये खैंचतान करके लगाया है। इस पद का अर्थ 'आनन्दघन पद सग्रह', के विवेचन कर्त्ता श्रीमद् बुद्धिसागर सूरीश्वर ने और ही दिया है, वह यहाँ दिया जाता है। उनका पाठ है—"देढव काई न वाग मे मीया किस पर ममता ऐती" उन्होने जो अर्थ किया है उसका साराश यह है—"सब जीव जन्म, जरा और मृत्यु के वश मे पडे हुये हं। ससार मे उन्हे कोई शरण नही है। मृत्यु से उनकी रक्षा करने वाला कोई नही है। ससार मे दुखकारक पदार्थों को सुखकारक मानकर जीव उसमे फँस रहे है। जीव सुख का उपयोग करने का प्रयत्न करता है परन्तु उसे दुख ही प्राप्त होता

है। फिर भी सासारिक जीव वाह्य वस्तुओ की ममता को छोडता नही है। इस पर दृष्टान्त देकर इसकी पुष्टी मे कवि कहते है—कोई मीया वाग मे मीठी व कडवो निबौली (नीम का फल) एकत्रित कर रहा था। उस समय उसकी वीवी से किसी ने आकर पूछा कि मीया कहा गया? वीवी ने कहा वाग मे गया है। मीया निबौली एकत्रित कर रहा है उसी प्रकार सासारिक जीव दुख भोगते हुए सुख मानता है, परन्तु अज्ञान भ्राति से मिया के वाग मे निबौली लेने की तरह वेदनीय कमरूप कडवी निबौली एकत्रित की तो उसे कडवा ही स्वाद आयेगा। सासारिक पदार्थों पर ऐसी ममता रखना योग्य नही है।

अनिर्वचनीय रूप ६१ राग-गौडी

निसाणी कहा बतावु रे, वचन अगोचर रूप ॥

रूपी कहु तो कछु नही रे, वधइ कइसइ अरूप।

रूपारूपी जो कहु प्यारे, अैसे न सिद्ध अनूप ॥नि०॥१॥

सिद्ध सरूपी जो कहूँ रे, वध न मोख विचार।

न घटै ससारी दसा प्यारे, पाप पुण्य अवतार ॥नि०॥२॥

सिद्ध सनातन जो कहूँ रे, उपजइ विरणसइ कौन।

उपजइ विरणसइ जो कहूँ प्यारे, नित्य अबाधित गौन ॥नि०॥३॥

सरवगी सव नइ धणी रे, मानै सव परवान।

नयवादी पल्लो गहै (प्यारे), करइ लराइ ठान ॥नि०॥४॥

अनुभव गोचर वस्तु को रे, जाणिवो इह इलाज।

कहण सुणण कु कछु नहीं प्यारे, 'आनन्दघन' महाराज ॥नि०॥५॥

पाठान्तर—बतावु = वताउ (इ)। वचन रूप = तेरो अगम अगोचर रूप (अ)। तो = तउ (आ, इ उ)। वधइ = वधै (इ) वदै (उ)। कइसइ =

कसइ (आ), कैसै (इ), के सै (उ)। अैसे = इसे (उ)। मिद्ध = सुद्ध (आ उ)। जो = जउ (आ)। उपजइ = उपजै (अ द)। विणमइ = विणसै (आ)। 'उ' प्रति मे पद सख्या २ के स्थान पर तो तीन पद सख्या है और तीन के स्थान पर दो है। यथा—सुद्ध सरूपी जो कहू रे, उपजै त्रिसणै कौन। उपजै विणसे जो कहू प्यारे, नित्य अबाधित गोन ॥२॥ सिद्ध सनातन जो कहूँ रे, बधन मोक्ष विचार। न घटे ससारी दसा, पुण्य पाप अवतार ॥३॥ नइ = नै (आ)। गहै=गहइ प्यारे (अ), गही प्यारे (इ)। करइ=करै (इ), करे (उ)। अनुभव= अनुभौ (इ)। को रे=हे रे (उ)। जाणिवो = जाणिवउ (आ), जाणवौ (इ), जाणवो (उ)। इह इलाज= इहै लाज (आ), एह इलाज (इ), एहि इलाज (उ)।

शब्दार्थ—निसाणी = पहिचान। वचन' ' रूप = वचनातीत, वचन-वाणी से जिसका रूप कहा न जा सके। रूपी = रूप वाला, साकार। अरूप= रूप रहित, निराकार। सिद्ध सरूपी = सिद्ध आत्मा जैसा। सनातन = अनादि नित्य = सास्वत। अबाधित = बाधा रहित। गौन = गमन, गति। सरवगी = सर्व रूप अनेकान्तवादी। सब नइ धणी रे = सब दृष्टियो के धारक। परवान = प्रमाण। नयवादी = न्याय शास्त्री, तर्कवादी, एक ही दृष्टिकोण को मान वाला। पल्लो = किनारा, अश। ठान = आयोजन करके, सकल्प करके।

अर्थ—चेतन—आत्मा के स्वरूप की मीमासा करते हु श्री आनन्दघन कहते है—चेतन की क्या पहिचान बताऊँ, उस स्वरूप तो वचनातीत है। वाणी द्वारा उसका रूप नही बताया सकता है। यदि उसे रूपी—आकार वाला—कहता हू तो वह क दिखलाई नही देता है और यदि उसे अरूपी—निराकार कह हू तो कर्मो के बधन मे अरूपी कैसे बध सकता है? यदि चेतन रूपी-अरूपी-साकार, निराकार उभय रूप कहता हू तो अनु (जिसकी कोई उपमा नही) सिद्ध भगवान का वह स्वरूप नहं अर्थात् सिद्ध भगवान के लक्षण से मेल नही बैठता है क्योकि रि के कोई रूप नही है ॥१॥

यदि चेतन को सिद्ध स्वरूपी और (वर्ण, गध, रस स्पर्श रं कहता हू तो फिर बध और मोक्ष का विचार ही नही हो स

क्योकि जो सदा शुद्ध है वही बधन मे पडे तो मुक्त जीव भी बन्धन मे पड़ेंगे, फिर किसी आत्मा के लिये मुक्त शब्द चरितार्थ ही नही होगा, और सिद्ध स्वरूपी कहने से सासारिक दशा भव भ्रमण सिद्ध नही होता है तथा पुण्य कर्म के अनुसार मनुष्य और देव रूप मे जन्म लेना तथा पाप के फलस्वरूप नरक तिर्यंच मे जन्म लेना घटित (सिद्ध) नही होता है ॥२॥

यदि चेतन को अनादिकाल से सिद्ध कहता हू तो पैदा होने वाला और मरने वाला कौन है ? जो उसे उत्पन्न और विनाश होने वाला कहता हू तो उसके नित्यत्व और अबाधितत्व का लोप हो जाता है ॥३॥

चेतन सर्वांगी रूप है, सब नयो का स्वामी है अर्थात् इसमे सब नय सिद्ध होते है-घटते हैं। जो इसे प्रमाण ज्ञान द्वारा समझने का यत्न करते है वे इसके स्वरूप को समझ सकते है, अर्थात् अनेकान्त दृष्टियो से चेतन का स्वरूप समझा जा सकता है, किन्तु नयवादी एक ही दृष्टिकोण को ग्रहण कर (अपना कर) विवाद (झगड़ा) करते रहते हैं ॥४॥

शास्त्रो मे नय का लक्षण—'अनत धर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मो-न्नयन ज्ञान नय', वस्तु के अनेक धर्म होते है उनमे से किसी एक धर्म को प्रधानता देने वाले और दूसरे धर्मो को गौण रखने वाले ज्ञान को 'नय' कहते है। नय, वस्तु के एक देश का ही ज्ञान कराने वाला होता है। इससे वह प्रमाण ज्ञान नही कहा जा सकता है। वास्तव मे वस्तु मे अनेक धर्म होते है उन धर्मो को बताने वाले ज्ञान को प्रमाण कहा जाता है—"सकलधर्म ग्राहक प्रमाण" तथा "स्व पर व्यवसायि ज्ञान प्रमाणम्"। वस्तु के अशग्राही ज्ञान को नय कहते है। अतः वह प्रमाणिकता की कोटि मे नही आता है क्योकि वस्तु मे अनेक धर्म विद्यमान है। सर्व अ शो के ज्ञान को ग्रहण करके वस्तु के स्वरूप की

अलग अलग पर्यायवाची समझकर अलग अलग अर्थ स्वीकार करता है।

एवभूत नय की अपेक्षा से कर्त्ता की जो क्रिया वर्तमान मे चल रही हो, उसको कर्त्ता के साथ युक्त करके व्यवहार किया जाता है। जो आत्मा चडाल का काम करती है, उसे चडाल और जो साधु की क्रिया करती है उसे साधु कहा जाता है।

आगमसार ग्र थ मे मुनिराज श्री देवचन्द जी ने 'सिद्ध' को सात नयों से व्याख्या की है। उसका सक्षिप्त यह है—

(१) नैगम नय—समस्त जीवो को सिद्ध स्वरूप माना है।

(२) सग्रह नय—सब जीवो के मूलगुणो को सिद्धवत् मानता है।

(३) व्यवहार नय—विद्यालब्धि चमत्कार सिद्धी वाले को सिद्ध मानता है।

(४) ऋजुसूत्र नय—सम्यक्त्वी जीव को सिद्ध मानता है।

(५) शब्द नय—शुक्ल ध्यान के परिणामवाले को सिद्ध मानता है।

(६) समभिरूढ नय—केवल ज्ञानी यथाख्यात चरित्री तेरवें चौदवे गुण स्थान वाले को सिद्ध मानता है।

(७) एवभूत नय—जो सकल कर्म क्षय करके लोकान्त मे विराजमान है उन्हे सिद्ध मानता है।

इस प्रकार यह चेतन आत्मा सर्वा गो और स्वय सब नयो का स्वामी है। उसका रूप एक नय द्वारा सिद्ध नही हो सकता। सब दृष्टिकोणो को ध्यान मे रखकर ही उसका स्वरूप समझा जा सकता है।

श्री आनन्दघनजी कहते है—यह आत्मा अनुभव से ही जानी जाने वाली है। इसके जानने का उपाय यही है जो ऊपर बताया जा चुका है। अनुभव गम्य आत्मा के सम्बन्ध मे तो कहने सुनने वाली बात कुछ भी नही है क्योकि यह आत्मा तो आनन्द समूह महात्मा है। इसका ज्ञान इन्द्रियो द्वारा नही हो सकता है। यह तो इन्द्रियातीत है। यह आत्मा तो आत्मा द्वारा ही जानी जाती है। इसकी पहिचान का तो एक ही इलाज—उपाय अनुभव ज्ञान है।

अनुभव का लक्षण कविवर श्री वनारसीदासजी ने इस प्रकार बताया है—

"वस्तुविचारत ध्यावता, मन पावे विश्राम।
रस स्वादन सुख उपजे, अनुभव वाको नाम।"

वस्तु का विचार करते समय, इसका ध्यान करते करते जब मन शात होने लगे, उस समय आत्म रस के आस्वादन मे जो अपूर्व सुख का निष्पत्ति होती है उसे अनुभव ज्ञान कहा जाता है

अनादित्व सिद्धि **६२** **राग—गौडी**

विचारी कहा विचारइरे, तेरो आगम अगम अपार ॥
बिनु आधार आधेय नहीं रे, बिनु आधेय आधार।
मुरगी बिन इडा नहीं प्यारे, वा बिनु मुरग की नार ॥वि०॥१॥
भुरट बीज बिना नहीं रे, बीज न भुरटा टार।
निस बिनु द्योस घटइ नही प्यारे, दिन बिनु निस निरधार ॥वि०॥२॥
सिद्ध ससारी बिनु नहीं रे, सिद्ध न बिनु ससार।
करता बिनु करणी नहीं प्यारे, बिनु करणी करतार ॥वि०॥३॥
जामण मरण बिना नहीं रे, मरण न जनम विनास।

दीपक बिनु परकास के प्यारे, बिन दीपक परकास ॥वि०॥४॥
'आनदघन' प्रभु वचन की रे, परिणति धरि रुचि ' ।
सास्वत भाव विचारते प्यारे, खेलो अनादि अनत ॥वि०॥५॥

पाठान्तर—विचारइ = विचारै (आ), विचारो (उ) तेरो आगम.... अपार = अगम अथाह अपार (अ), आगम अगाह अपार (उ), तेरो आगम अगम अथाह (क ब) बिनु = विन (इ) । आधार आधेय = आधे आधा (इ) । आधारे = अधार (इ) । 'श्रा' प्रति मे प्यारे शब्द नही है । वा = या (इ) । दिन निरधार = विन दिन निस निरधार (इ) । बिनु = बिन (इ), विना (उ) । नही प्यारे = नही रे (अ), जामण = जामन (इ), जनम (उ) । दीपक = दीपन (अ इ) । परकास के प्यारे = परगास के प्यारे (अ), परगासता प्यारे (इ) परगामवो प्यारे (उ) । विन परकास = दीपन विनु परगास (आ) । वचन की रे = वचन थीरे (उ) । धरि = धरइ (आ), धर (अ), धरू (इ) । सास्वत = मासित (आ) । विचार ते प्यारे = विचार के प्यारे (अ इ) । खेलो = खेल (आ), खेले (इ) ।

शब्दार्थ—विचारी = विचारक, विचार करने वाले । अगम = अगम्य आधार = सहारा । आधेय = सहारे पर टिकी हुई वस्तु । भुरटा = भरभूट, काटे वाला पौदा । टार = विना । निसि = रात्रि । द्यौस = दिन । निरधार = निर्णय । करणी = क्रिया । करतार = करने वाला, कर्त्ता । जामण = जन्म । बिनास = विन्यास, स्थापन करना । परिणति = रूपान्तर की क्रिया, फल । रुचिवत = रुचि रखने वाला, विश्वास रखने वाला ।

अर्थ—हे आत्मन् ! विचार करने वाले (दार्शनिक) कहा तक विचार करे, तेरा शास्त्र तो अगम्य और अपार है । विना आधार के—सहारे के आधेयवस्तु कैसे टिक सकती है ? उसी प्रकार विना आधेय के आधार किसका ? नीव विना मकान कैसे बनेगा ? और मकान विना नीव किसकी होगी ? द्रव्यरूप आधार विना गुण पर्याय रूप आधेय कैसे सभव है तथा गुण पर्याय आधेय विना द्रव्य

रूप आधार कैसे सभव है ? इसी प्रकार मुर्गी के विना अ डा नहीं होता और अ डे के विना मुर्गी नही हो सकती । (मुर्गी नही होगी तो अ डा कहा से आवेगा और अ डा नही होगा तो मुर्गी कहा से उत्पन्न होगी) ॥१॥

पौधो (वृक्ष) के विना बीज नही होता है और बीज पौधे (वृक्ष) के बिना नही होता । रात्रि विना दिन घटित नही होता और दिन बिना रात्रि,का निर्णय नही होता अर्थात सदा दिन ही बना रहे तो फिर रात्रि का निर्णय कैसे हो ॥२॥

सिद्ध ससार के बिना नही हो सकते, अर्थात् ससार होने से ही मोक्ष की सिद्धि है । सिद्ध न हो तो ससार की सभावना कैसे हो, ससारी जीव ही सिद्ध अवस्था प्राप्त करते है । कर्त्ता के बिना क्रिया नही होती है और जहा क्रिया है वहा उसका कर्त्ता अवश्य है ॥३॥

मरण विना जन्म की सभावना नही है, और जन्म के बिना मरण नही होता। प्रकाश, बिना दीपक नही होता और दीपक प्रकाश बिना नही होता है। प्रकाश से दीपक का होना निश्चित है तो दीपक से प्रकाश होना सिद्ध है ॥४॥

श्री आनन्दघनजी कहते है—रुचिवत—रुचि रखने वाले जिन्हे कुछ जानने की इच्छा है वे आनन्द के समूह प्रभु सर्वज्ञ के वचनो की परिणति को (परिणमन क्रिया श्रद्धा को) धारण कर साश्वत भाव पर विचार करें तो उन्हे यह खेल (ससार) अनादि और अनत मालूम होगा ।

जड और चेतन दोनो साश्वत और अनादि हैं। इनका सम्वन्ध अनादि काल से है और अनतकाल तक रहेगा। यह सर्वज्ञ देव की वाणी है इस पर श्रद्धा रखो ।

सत्संग महात्म्य ६३ राग- सा री

साधु संगति बिनु कैसे पइये, परम महारस धामरी।
कोटि उ करे जो वौरा, अनुभव कथा विराम री ।।साधु०।।१।।
सीतल सफल सत सुरपादप, सेवउ सदा सुख छाइरी।
वछित फलै टलै अनवछित, भव संताप बुझाइ री ।।साधु०।।२।।
चतुर विरचि विरोचन चाहै, चरण कमल मकरंदरी।
कोहर भरम विहार दिखावै, सुद्ध निरजन चदरी ।।साधु०।।३।।
देव असुर इन्द्र पद चाहु न, राज ज न काजरी।
सगति साधु निरतर पावु, 'आनन्दघन' महाराज री ।।सा०।।४।।

पाठान्तर—कोटि = कोट (इ), कोर (उ)। उपाव = उपाउ (उ)। जो = जउ (अ)। वौरा = वौरी (इ), वोरो (उ)। विराम = विरान (उ), विसराम (क वु)। सेवउ = सेवो (अ इ उ) सेवै (क. वु)। सुख छाइरी = सुच्छाईरी (अ), सुछायरी (इ उ)। अनवछित = अनुवछित (आ) विरचि = विरच (अ इ उ)। विरोचन = विरजन (क वु,)। चदरी = देवरी (उ)। इन्द्र = इन्द (इ),। चाहु न = चाहत (इ.उ)। राज ''काजरी = राग समान काजरी (आ), नये जम सम काजरी (इ), राज न काज समाजरी (उ,क,वु)। पावु = पावो (अ)। नोट 'ई' प्रति मे अ निम पक्ति नही है। 'उ' प्रति मे इस प्रकार है—आनन्दघन प्रभु तुम विन और देव नही लाउरी।

शब्दार्थ—साधु = त्यागी मुनि। महारस = आत्मानुभव। धाम = घर। वौरा = पागल। सुरपादप = कल्पवृक्ष। विरची = ब्रह्मा, शास्त्र रचने वाले विज्ञ पुरुष। विरोचन = प्रकाशमान। कोहर = कोहरा वु ध। निरजन = दोष रहित, परमात्मा।

अर्थ—आनन्दघनजी महाराज कहते है—शास्त्रानुसार पूर्ण चारित्र पालने वाले सत पुरुषो के सत्सग विना आत्मानुभव रूप परम

महारस के स्थान को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। साधु सगति के अतिरिक्त अन्य करोडो यत्न करने वाले पागल ही है। साधु सगति बिना अनुभव पूर्ण बातो के जानने मे विराम—रुकावट ही आती है। अथवा साधु सगति ही अनुभव वार्ता के लिए विश्राम स्वरूप है। कोई चाहे जितना तप करे, चाहे जितना शास्त्र पढे किन्तु साधु संगति के बिना वह आत्मानुभव प्राप्त नही कर सकता ॥१॥

सत पुरुष कल्पवृक्ष के समान त्रिविध ताप को दूर करने वाले हैं और इच्छित फल देने वाले है अत ये शीतल हैं और फल युक्त है। इनकी सुखद छाया मे निवास करो। इससे आत्मानुभव रूप मनोकामना पूर्ण होती है। पुद्गलो की आसक्ति रूप अवाछनीय वस्तुये दूर हो जाती है और भव-सताप—भवभ्रमण, नाश हो जाता है ॥२॥

जो शास्त्रो के चतुर प्रणेता है और अपने ज्ञान से प्रकाशमान हैं वे भी सत पुरुषो के चरण-कमलो के पराग (धूल) को चाहते है। विद्वानो से सेवित सतजन भ्रम रूप कोहरे को दूर कर शुद्ध परमात्मा रूप चन्द्रमा के दर्शन करा देते है ॥३॥

आनन्दघनजी कहते है कि मैं देव या असुरो के इन्द्र पद का इच्छुक नही हू। न मुझे राज्य और समाज से कोई काम है। मुझे तो साधु सगति निरतर प्राप्त होती रहे यही मेरी कामना है ॥४॥

मूलोत्तर विचारणा ६४ राग--प्रभाती, आशावरी, कलाहरो

मुदल थोडो रे भाईडा व्याजडो घणेरो, किम करि दीधो जाय।
तल पद पूंजी व्याज मे आपी सघली, तोही न पूरड़ो थाय ॥मु०॥१॥
व्यापार भागोरे भाईड़ा जलवट थलवट रे, धीरे न निसाणी माइ।

व्याजडो छोडावी कोई खादी परठवेरे, मूल आपूं सम खाइ ॥मु०॥२॥
हाटडु माडू रे रूडे माणक चोक मा रे, साजन नो मनडो मनाइ।
'आनन्दघन' प्रभु सेठ सिरोमणि, बाहडी झालैजो आइ ॥मु०॥३॥

पाठान्तर—मुदल = मु दल (अ), मूल (इ उ) मूलडो (क वु,)। भाईडा = भाई (इ उ), भाई (क वु)। पू जी=पू जी मे (उ क व), 'व्याज मे' 'इ उ' और मुद्रित प्रतियो मे यह शब्द नही है। आपी = आली (आ), आणी (उ)। तोही थाय = तोहि पूरो नवि थाय (इ), तोहि नवि पूराडो थाय (उ), तोहे व्याज पूरू नवि थाय (क वु)। 'भाईडा' यह शब्द इ उ, और मुद्रित प्रतियो मे नही है। थलवटेरे = थलवटे (अ), थलवटैरे (इ)। माइ = माय (इ. उ, क वु)। व्याजडो = व्याज (इ क वु)। कोई = को (उ), 'इ' प्रति मे यह शब्द नही है। खादी = खाधी (आ), खदी (इ वु), खदा (क) परठवेरे = परठ करै (आ)। आपू = आलु (आ), आपो (अ), आलो (उ)। माडू रे = माणु रे (आ), माडू (इ), माड्योरे (उ)। रूडे = रूडा (अ), रूडा (इ क वु)। चोकमारे = चोकै (आ), साजननो = सजननो (आ), साजनियानु (अ) साजया (इ), मनाइ = मनाय (इ.उ क वु)। सेठ = सेठि (अ)। झालैजो = झालोरे (उ), झालजोरे (क वु)। आइ = आय (इ उ.क वु)।

शब्दार्थ—मुदल = मूल रकम, मूलधन, असली रकम। घणेरो = बहुत, अधिक। तलपद = मूल, खास, असल। आपी = देदी। सघली = सब। पूरडो = पूरा, भरपूर, यथेष्ठ। भागोरे = नष्ट हो गया। धीरे न = धीजते नही हैं, विश्वास नही करते। निसाणी=प्रतिष्ठा, प्रभाणिकता। खदी=किस्त। परठवे= ठहरा कर, तय कर। समखाइ = सौगध, शपथ। हाटडु = हाट, दुकान। माणक चौक = व्यापार का मध्य स्थान। साजन नो = सज्जनो का। बाहडी = हाथ। झालैजो = पकड लेना।

अर्थ—अरे भाई! मूल रकम तो थोडी ही है किन्तु व्याज की रकम मल रकम से भी अत्यधिक हो गई है, वह किस प्रकार

से, चाहे पार्श्वनाथ के नाम से, चाहे ब्रह्मा के नाम से सबोधित करे, किन्तु वह महा चैतन्य स्वय ब्रह्म स्वरूप ही है ॥१॥

मिट्टी का रूप तो एक ही है। कि तु पात्र से अनेक नाम कहे जाते है। (यह घडा है, यह कु डा है यह गिलास है इत्यादि)। उसी प्रकार इस परमतत्व के पृथक् पृथक् भाग कल्पना से किये गये है। किन्तु वस्तव मे वह तो अखड स्वरूप ही है ॥२॥

जो निज स्वरूप मे रमण करे उसे राम कहना चाहिए, जो प्राणी मात्र पर दया करे उसे रहमान। जो ज्ञानावरणा दिकर्मो को नष्ट करे उसे कान्ह (कृष्ण) कहना चाहिए। जो निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करे उसे महादेव कहना चाहिये ॥३॥

अपने रूप का जो स्पर्श करे उसे पार्श्वनाथ कहना चाहिए और जो चैतन्य आत्म-शुद्ध रूप सत्ता को पहिचाने वह ब्रह्मा है।

कविराज आनन्दघन कहते है कि इस आनन्दमय परम तत्व की मैने इसी प्रकार आराधना की है। यह परम तत्व तो निष्कर्म, (कर्म-उपाधि से रहित) ज्ञाता, दृष्टा, चैतन्यमय है ॥४॥

दर्शन वैचित्र्य **६६** **राग--मारू जगलो**

मायडी मूनै निरपख किण ही न मूकी।
निरपख रहेवा घणु ही झूरी, धी मे निजमति फूकी ॥मा०॥१॥
जोगिये मिलिने जोगण कीधी, जतिये कीधी जतनी।
भगते पकड़ी भगतणी कीधी, मतवाले कीधौ मतणी ॥मा०॥२॥
राम भणी रहमान भणावी, अरिहंत पाठ पठाई।
घर घर ने हूँ धधे विलगी, अलगी जीव सगाई ॥मा०॥३॥

कोइये मूंडी कोइये लोची, कोइये केस लपेटी ।
कोई जगावी कोई सूती छोड़ी, वेदन किणही न मेटी ।।मा०।।४।।
कोई थापी कोई उथापी, कोई चलावो कोई राखी
एक मनो मे कोई न दीठो, कोई नो कोई नहि साखी ।।मा०।।५।।
धींगो दुरबल नै ठेलीजै, ठींगौ ठींगो वाजे ।
अवला ते किम वोली सकिये, वड जोधाने राजे ।।मा०।।६।।
जे जे कीधूं जे जे कराव्युं ते कहता हूँ लाजू ।
थोड़े कहे घणुं प्रीछी लेजो, घर सूतर नहीं साजूं ।।मा०।।७।।
आप बीती कहेता रिसावे, तेहि सूं जोर न चाले ।
आनन्दघन प्रभु वांहडी झालै, वाजी सघली पाले ।।मा०।।८।।

उक्त पद हमारी केवल 'उ' प्रति मे ही है। पाठान्तर मुद्रित प्रतियो के ही हैं--

पाठान्तर—जोगिये = योगीये (वु) । जोगण = योगण (वु)। जतिये = यतिये (वु) । कीधी = कीनी (बु) जतनी = यतनी (वु) । मतवाली = मतवासी (क) मतवाली (वि) । यहा जो तीसरा पद है वह 'वु' प्रति मे चौथा पद है । विलगी = वलगी (वु) । कोइये मूंडी = केणे मुकी (वु) । कोइये लोची = केणेलूंची (वु) कोइये = केणे (वु) । कोई जगावी कोई सूती छोडी = एक पखो मे कोई न देख्यो (वु) वेदन = वेदना (वु) । कोई = केणे (वु) । कोई राखी = किणराची (वु)। एक मनो [illegible] = केणे जगाडी केणे सुआडी, कोइनु कोई नथी माखी (वु) । धींगो = धींग (वु) । ते किम = ते केम (वु) । जोधा = योद्धा (वु) । ते = तेह (वु) । कहता = कहेती (वु) । घर सूतर नहि साजू = घरशु तीरथ नहि वीजु (वु) । तेहिसू = तेथी (वु) । प्रभु = वहालो (वु) । झालै = जाले (वु) । वाजी सघली पाले = तो बीजु सघलु पाले (वु) ।

शब्दार्थ—मायडी = हे माता । निरपख = निष्पक्ष । किणही = किसी ने भी । मूकी = छोडा । झूरी = दुखित हुई, परेशान हुई । धींगे =

धीरे धीरे । फूकी = जला डाली । कीधी = की । मतवाले=ज्ञान मस्त योगी। भणी = पढा, कहा । वधे = कार्य मे । विलगी = मन लगाया । अलगी= पृथक, अलग । सगाई = सबंध । लोची = केश नोचे, बाल उखाडे। थापी = स्थापित किया । उथापी = उखाडा । एक मना = एक अभिप्राय वाला । दीठो = दिखाई पडा । धीगो = बलवान । ठेलीजै = ढकेलना, धक्का मार कर हटाना । वाजे = लडे । प्रीछी लेजो = समझलेना । घर सूतर=घर की व्यवस्था । रीसावे = क्रोध करे । बाहडी = हाथ । झालै = पकडे। बाजी = खेल ।

इस पद मे योगीराज श्री आनन्दघन ने विचित्र प्रकार से ससार के मत मतान्तर आत्मा चेतन और आत्मत्व चेतना के सम्बन्ध मे क्या विचार रखते है, किस प्रकार मोक्ष मिलती है–आदि का दिग्दर्शन कराया है ।

यद्यपि चेतन और चेतना पृथक् पृथक् नही है फिर भी समझने के लिए अलग दिखाने की कल्पना की गई है। इस पद मे चेतना अपनी विवशता और व्यथा बताती है। आत्मा-चेतना जिस जिस मत धर्म के कुल मे उत्पन्न होती है, वह वैसी ही बन जाती है वास्तव मे उसका रूप और ध्येय क्या है उसको उसका भान ही नही रहता। आत्मा को अपने स्वरूप प्राप्त करने मे–मोक्ष प्राप्त करने मे कोई भी मत पक्ष, कोई भी स्वरूप कोई भी स्थान, और कोई भी अवस्था बाधक नही है। आत्मा तो क्रमश अपना विकास करता हुआ एक दिन शुद्ध बुद्ध बन जाता है। यही इस पद का आशय है।

अये मा ! (यह किसी को सम्बोधन नही है, बल्कि स्वत ही दुखित हृदय से निकला शब्द है ।जैसे अरे राम ! यह क्या हुआ, अये मा ! अब क्या होगा इत्यादि) मुझे किसी भी मत-पक्ष वाले ने निरपक्ष-पक्षपात रहित नही छोडा (नही रहने दिया) मैंने निष्पक्ष रहने के लिये बहुत ही विलापात किये और बहुत ही प्रयत्न किये किन्तु मुझे

किसी ने निरपक्ष रहने नही दिया। धीरे धीरे अपने पक्ष मे की मेरे कानो मे फू क मारी, मेरे कान भरे अर्थात् मुझे अपने पक्ष का वना लिया और मुझे वैसा वनना पडा। आत्मा का स्वभाव तो शुद्ध चेतनत्व है। जिस कुल मे वह उत्पन्न होती है उसके आचार विचार वैसे ही हो जाते है ॥१॥

योगियो ने मुझे योगिनी वना लिया और यतियो ने (जितेन्द्रियो ने) मुझे जतनी वना लिया। भक्ति मार्ग के अनुयायियो ने मुझे अपने रग मे रगकर भक्तनी वन लिया। इसी प्रकार अन्य मत-धर्म के मानने वालो ने मुझे अपने अपने धर्म की वना लिया। इसीलिये चेतना पुकारती है कि मुझे किसी ने भी निष्पक्ष नही रहने दिया ॥२॥

राम के अनुयायियो ने मुझे राम नाम-पाठी वना लिया। रहिमान भक्तो ने मुझे रहिमान का भजन (प्रार्थना) सिखाई और अरिहन्त के मानने वालो ने अपना पाठ पढाया। किसी ने शकर का, किसी ने कृष्ण का किसी ने ब्रह्मा का उच्चारण मुझसे कराया। इस प्रकार प्रत्येक घर के—मतमतान्तर के धन्धो—कार्यो मे फसी रही। मेरे (चेतना के) और चेतन के सम्वन्ध से सदा ही दूर रही हू ॥३॥

किसी ने मेरा मु डन कराया, किसी ने लोच कराया (केश उखाडे), किसी ने लम्वी लम्वी जटाये लपेटी किसी ने मुझे जागृत रखा और किसी ने सोती हुई ही रखा अर्थात् पृथक् पृथक् मत—पक्ष वालो ने अपने अपने तरीके से रूप वनाकर धर्म क्रियाये की, किन्तु अव तक किसी ने मेरे स्वामी चेतन के विरह से उत्पन्न मेरी वेदना को दूर नही किया ॥४॥

हे मेरी मा ! देखो, मेरा अलग अलग स्थानो पर कैसा हाल हुआ। किसी ने मेरी स्थापना की-आत्मा है। किसी ने मेरा अस्तित्व

यह लकडी के सहारे कुछ कुछ चलने लगा है। हे मिथ्यात्व ! क्या तू जानता नही है ? क्या तेरे नेत्र फूट गये है ? क्या तुझे मालूम नही है कि सम्यक्त्व प्रकट होने पर तेरी मृत्यु समीप ही है। अब तुझे भोजन देने वाला कौन है ? सम्यक्त्व किसी भी प्रकार का प्रगट हो (औपसमिक या क्षयोपसमिक) जाने पर अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यत्व मोहनीय मिश्र मोहनीय तथा सम्यक्त्व मोहनीय ये सात कर्म-प्रकृति रूप भोजन अब तेरा बद हो गया है, अब तुझे रोटी देने वाला (पनपाने वाला) कोई नही है। इसलिये तेरी मृत्यु सिर पर आ गई है ॥२॥

पच महाव्रत, पच महाव्रत की पच्चीस भावनाये तथा पचास प्रकार के तप के ऊपर यह (पुत्र) सीधे-साधे वचन बोलता है—उनका अभ्यास करता है। सुमति कहती है—हे आनन्दघन प्रभु ! यह सम्यक्त्व तो जन्म जन्म से आपका दास है। आप तो जन्म जन्मान्तरो से इसके स्वजन-स्नेही स्वामी है ॥३॥

सम्यक्त्व पुत्र प्रेम ६७ राग–सोरठ गिरनारी

छोरा नैं क्यु मारै छै रे, जायैकाट्या डैण।
छोरो छै म्हारो बालो-भोलो, बोलै छै अमृत बैण॥छो०॥१॥
लेय लकुटिया चालण, लाग्यो, अब कांइ फूटा नण।
तू तो मरण सिराणे सूतो, रोटी देसी कोण (कैण) ॥छो०॥२॥
पाच पचीस पचासा ऊपर, बोलै छै सूधा व्रैण।
'आनन्दघन' प्रभु दास तुम्हारो, जनम जनम के सैण ॥छो०॥३॥

यह पद हमारी केवल अ प्रति मे है। पाठान्तर मुद्रित प्रतियो के दिये गये हैं।

पाठान्तर—म्हारो = महारो (बु) मारो (क,वि)। छोरा = छोटा (वि)। काट्या = काड्या (बु)। लाग्यो = लागो (बु)। देसी = देशे (बु)। तुम्हारो = तिहारो (बु), तुमारो (क वि)।

शब्दार्थ—छोरानै = पुत्र को। जायै काट्या = पुत्र घाती (यह गाली है, अप शब्द है)। डैण = (यह भी गाली है) मूर्ख वृद्ध, अविचारी वृद्ध। बालो भोलो = ना समझ, भोला। नैण = नयन, नेत्र, आख। पाच = पच महाव्रत, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। पचीस = पच महाव्रत की पच्चीस भावनाये। पचासा = तप के भेद, उपवास, आयबल, आदि पचासो भेद। सूधा = सीधे, कपट रहित। वैण = वचन। सैण = सयण, सजन, स्वजन।

अर्थ—सुमति मिथ्यात्व से कहती है—हे बाल घातक, अविचारी, मूर्ख, बुड्ढे! मेरे सम्यक्त्व रूप बालक (पुत्र) को क्यो मारता है? यह मेरा उपसम या क्षयोपसम रूप नव जात शिशु सम्यक्त्व अभी तो बिल्कुल भोला है—ना समझ है। यह अभी थोडा-थोडा अमृत के समान मधुर बोलने लगा ही है॥१॥

यह लकडी के सहारे कुछ कुछ चलने लगा है। हे मिथ्यात्व ! क्या तू जानता नही है ? क्या तेरे नेत्र फूट गये है ? क्या तुझे मालूम नही है कि सम्यक्त्व प्रकट होने पर तेरी मृत्यु समीप ही है। अब तुझे भोजन देने वाला कौन है ? सम्यक्त्व किसी भी प्रकार का प्रगट हो (औपसमिक या क्षयोपसमिक) जाने पर अनतानुबधो क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यत्व मोहनीय मिश्र मोहनीय तथा सम्यक्त्व मोहनीय ये सात कम-प्रकृति रूप भोजन अब तेरा बद हो गया है, अब तुझे रोटी देने वाला (पनपाने वाला) कोई नही है। इसलिये तेरी मृत्यु सिर पर आ गई है ॥२॥

पच महाव्रत, पच महाव्रत की पच्चीस भावनाये तथा पचास प्रकार के तप के ऊपर यह (पुत्र) सीधे-साधे वचन बोलता है—उनका अभ्यास करता है। सुमति कहती है—हे आनन्दघन प्रभु ! यह सम्यक्त्व तो जन्म जन्म से आपका दास है। आप तो जन्म जन्मान्तरो से इसके स्वजन-स्नेही स्वामी है ॥३॥

इस पद का भावार्थ श्री ज्ञानसारजी महाराज के टब्बे की सहायता से किया है। श्री ज्ञानसारजी महाराज ने इतना विशेष लिखा है कि एक समयावच्छेदे असख्याता उपसम समकित प्राप्त करते है। उन सब मे यह आगमानुयायी शुद्ध वचन बोलता है क्योकि यह क्षपक श्रेणी का प्रारभी है। चार बार उपसम सम्यक्त्व प्राप्त करने के पश्चात् जो पाचवी बार (अतिम बार) उपसम सम्यक्त्वी बनता है, वह क्षपक श्रेणी का प्रारभी है।

विरह व्यथा व विवेक से विनय — **६८** — **राग-वसंत**

प्यारे, लालन बिन मेरो कोण हाल।
समझे न घट की निठुर लाल ॥प्यारे०॥१॥

वीर विवेक तु माझी मांहि, कहा पेट दाइ आगे छिपाहि ॥प्या०॥२॥
तुम्ह भावै सो कीजै वीर, मोहि आन मिलावो ललित धीर
॥प्या०॥३॥
अचर पकरै न जात आधि, मन चचलता मेटे समाधि ॥प्या०॥४॥
जाइ विवेक विचार कीन, 'आनन्दघन' कीने अधीन ॥प्या०॥५॥

नोट—यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति मे ही है और मे न होने से उनके पाठान्तर नही दिये जा सकते। पाठान्तर मुद्रित प्रतियो के हैं। 'प्यारे' शब्द वु और वि प्रतियो मे नही है। कोए = कुन (क वु वि)। समझै = समजे (क वु वि)। तु = जु (क वु वि)। माझी = माजी (क वु वि)। माहि = मायि (क वु) माइ (वि)। दाइ = दई (क वु)। छिपाहि = छिपाई (क वु वि)। मोहि = सोई (क वु वि)। ललित = लालन (क वु वि)। अंचर..... आधि = अमरे करे न जात आध (क,वु,वि)। मेटे = मिटे (क वु वि)। जाइ = जाय (क वि), जान (वु)।

शब्दार्थ—लालन = प्रिय, पति। घटकी = हृदय की। निठुर = निष्ठुर, निर्दयी। माझी = केवट, नाव चलाने वाला। भावै = अच्छा लगे। ललित = सुदर। अचर = आचल। आधि = मानसिक पीडा।

अर्थ—सुमति कहती है—प्रिय स्वामी के विना मेरा क्या हाल हो रहा है? वे ऐसे निर्दयी हो गये है कि मेरे हृदय की व्यथा को समझते ही नही है ॥१॥

हे विवेक वीर! तू ही मेरी नाव को खेने वाला है—पार लगाने वाला है। तेरे से क्या पर्दा, कोई दाई के आगे भी पेट छिपाया जाता है क्या? ॥२॥

हे वीर! (भाई!) तुम्हे जो उचित लगे सो करो, किन्तु किसी भी प्रकार मेरे मनभावन स्वामी चेतन को लाकर मुझसे मिलादो ॥३॥

केवल अचल (पल्ला) पकडने मात्र से ही मानसिक पीडा शांत नही होनी। समता के बिना कल्याण नही है—अर्थात् धैर्य पूर्वक समता भाव मे रहे विना उद्धार नही। यह बात जब तक चेतन नहीं समझ लेता तब तक यहां आने मात्र से (मेरे से सबंध होने मात्र से)- कुछ कार्य नही बनेगा। मन की चचलता (अस्थिरता) मेटने से ही समाधि अवस्था प्राप्त होगी ॥४॥

चेतन के पास जाकर विवेक ने विचार विमर्श किया—समझाया और आनन्द स्वरूप चेतन को लाकर समता के अधीन कर दिया—वशीभूत कर दिया ॥५॥

आभार प्रदर्शन **६६** **राग-सोरठ**

कत चतुर दिल ज्यानी हो मेरो कत चतुर दिलजानी।
जो हम चीनी सो तुम कीनी, प्रीत अधिक पहिचानी हो ॥मेरो०॥१॥
एक बू द को महिल बनायो, तामें ज्योति समानी हो।
दोय चोर दो चुगल महल मे, बात कछु नहि छानी हो ॥मेरो०॥२॥
पाच अरु तीन त्रिया मदिर मे, राज करै रजधानी हो।
एक त्रिया सब जग बस कीनो, ज्ञान खड्ग बस आनी हो ॥मेरो०॥३॥
चार पुरुष मदिर मे भूखे, कबहू त्रिपत न आंनी हो।
इक असील इक असली बूझै, बूझ्यौ ब्रह्म ज्ञानी हो ॥मेरो०॥४॥
चारू गति मे रुलता बोते, करम की किनहु न जानी हो।
' न्दघन' इस पद कू बूझै, बूझ्यौ भविक जन प्रानी हो ॥मेरो०॥५॥

नोट—यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति मे ४८वी सख्या पर है। मुद्रित प्रतियो मे भी केवल आचार्य श्री बुद्धिसागर सूरीश्वरजी द्वारा सम्पादित

पुस्तक की भूमिका मे है।

पाठान्तर—जानी = ज्ञानी। राज = राज्य। रजधानी = राजधानी। कीनो = कीने। खड्ग = खग। इक बूझै = दस अमली इक असली वुजै। वूझ्यो = वुझे।

शब्दार्थ - दिल ज्यानी = अत्यत प्रिय। चीनी = पहिचानी, जानते थे, विचारते थे। समानी = मिल गई, प्रकाशित हो गई। दोय चोर = राग-द्वेष। दोय चुगल = श्वासोच्छ्वास। छानी = छुपी हुई। वस आनी = वस मे कर रखा है। असील = खरा, सच्चा। ब्रह्म ज्ञानी = आत्म ज्ञानी।

अर्थ—हे मेरे चतुर तथा अत्यन्त प्रिय स्वामी! हे पुद्गल परिणति के प्रेमी मेरे आत्माराम! जैसा मैंने सोचा (विचारा) था वैसा ही आपने कर दिखाया। अर्थात् अनादि काल के पश्चात् आपने मानव शरीर वनाया है ॥१॥

हे चेतन देव! आपने एक वूद का कायारूपी महल वनाया है। उसमे आपने अपनी ज्योति प्रकाशित की हे। इस महल मे राग-द्वेष रूपी दो चोर है जो आत्म स्वरूप की चोरी करते रहते है। श्वास व आयु रूपी दो चुगल ह जो काल को आयु की स्थिति की सूचना चुपके चुपके देते रहते हैं। इस कारण इस काया रूपी महल की कोई भी वात गुप्त नही रह पाई है ॥२॥

इस तन-मदिर मे पाच इन्द्रिय तथा मन, वचन और काया वल ये आठ स्त्रिया है जो इस तन-मदिर रूप राजधानी मे राज्य करती है। इन आठो स्त्रियो मे से एक मन रूप स्त्री ने इस शरीर ही को नही, वल्कि सम्पूर्ण ससार को ही ज्ञान रूपी खड्ग (तलवार) के द्वारा वशीभूत कर रखा हे ॥३॥

इस तन मदिर मे चार पुरुष—क्रोध, मान, माया और लोभ है, जो अनादि काल से भखे है, सव कुछ खाकर भी तृप्त नही हुये है।

आत्मिक गुणो को खाकर—नष्ट करके भी इनकी तृप्ति नही हुई है। सौभाग्य से इस मदिर मे स्वभाव परिणति रूप एक ही असल खरी (सच्ची) वस्तु है जिसे ब्रह्म ज्ञानी—भेद ज्ञान को जानने वाला ही पूछता है, वही उसकी कदर करता है ॥४॥

चारो गतियो मे—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव मे-भटकते-भ्रमण करते हुये अनन्त काल (समय) व्यतीत हो गया है किन्तु कर्म की विचित्रता किसी ने भी नही जानी—पहिचानी है। योगीराज आनन्दघनजी कहते है—इस पद के मर्म को—आत्म स्वरूप को जानने वाला कोई विरला भव्य जन ही जान पाता है ॥५॥

प्रियतम उपालंभ ७० राग-वसंत

आ कुबुद्धि कूबरी कवन जात, जिहाँ रीझै चेतन ज्ञान गात ॥आ०॥१॥
आ कुच्छित साख विशेष पाइ, परम सिद्धि रस छारि जाइ ॥आ०॥२॥
जिहाँ अंगु गुन कछु और नाहि, गले पडेगी पलक मांहि ॥आ०॥३॥
प्यारे पाछै दे वाहि नाम, पटिये मीठी सुगुण धाम ॥आ०॥४॥
देवै आगै अधिकार ताहि, 'आनन्दघन' प्रभु अधिक चाहि ॥आ०॥५॥

यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति मे, और मुद्रित प्रतियो मे है। पाठ भेद मुद्रित प्रतियो से दिये गये है।

पाठान्तर—आ जात = या कुवुद्धि कुमरी कौन जात (क बु वि)। रीझै=रीजै (बु वि)। आ कुच्छित=कुत्सित (बु वि)। पाइ=पाय (वु वि)। सिद्धिरस=सुधारस (क वु वि)। छारि जाइ = वारिजाय (क वु वि)। जिहाँ नाहि = जी आगु कछु और नाहि (क), जीया गुन जानो और नाही (वु वि)। प्यारे नाम = रेखा छेदे वाहिताम (क वु वि)। पटिये = पढमे (क बु वि)। देवै चाई = ते आगे अविकार ताहि, आनन्द प्रभु अधिकेरी चाहि (क), ते आगे अधिकेरी ताही, आनन्दघन प्रभु अधिकेरी चाही (वु वि)।

शब्दार्थ— कुबुद्धि = कुमति । कवन = कौन । ज्ञान गात = ज्ञान स्वरूप कुच्छित = कुत्सित, खराव, निंदनीय । साख = साक्षी, इज्जत, सहारा । परम सिद्धिरम = परम तत्व । छारि जाइ = त्याग कर । अग = शरीर । गले पडेगी = इच्छा विरुद्ध प्राप्त होगी, पीछे पडेगी । वाहि = उसका । पटिये = मेल मिलाप होना, तै होना । चाहि = प्रेम ।

अर्थ— ममता अपनी सखि श्रद्धा से कह रही है—हे सखि ! जिस पर यह ज्ञान स्वरूप चेतन राज रीझे हुये है—आसक्त है, वह विकृत अग व स्वभाववाली कुबुद्धि किस जाति की है ? तुम जानती हो ? यह चेतन की जाति की तो है नही, और न यह जड जाति की है । यह तो चेतन और जड के सयोग से उत्पन्न दोगली मोह की कन्या है । इसकी प्रेरणा से चेतन भौतिक सुखो के लिये हिंसा, झूठ, चोरी आदि कुकर्म करते हुये भी पीछे नही हटता है ॥१॥

इस नीच अधम कुबुद्धि का विशेष सहारा प्राप्त कर यह ज्ञान-घन चेतन अपने आनद स्वरूप परमतत्व को छोड कर सासारिक माया जाल मे पडा हुआ है ॥२॥

जहाँ शरीर से सबधित विषय वासना के अतिरिक्त अश मात्र भी सद्गुण नही है । यह कुबुद्धि थोडा सा सहारा पाते ही गले पड जाती है—जबरदस्ती ही सबध कर लेती है बरबस फँसा लेती है ॥३॥

इसलिये हे प्रियतम चेतनराज ! इस कुबुद्धि को तो पीछे ही रखो, इसका नाम भी मत लो । सद्गुणो की खान मीठी सुमति से मेल मिलाप बढावो ॥४॥

समता के यह वाक्य सुनकर आनद के धाम चेतन ने समता से प्रीतिकर उसे अपनी गृहस्वामिनी बनाकर अपने घर का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया अर्थात अपने जीवन को समतामय बना लिया ॥५॥

क्षायिक सम्यक्त्व व लोकालोक ७१ राग-सोरठ
प्रकाशक ज्ञान

श्रण जोवता लाख, जोवो तो एको नही ।
लाधी जोवरण साख, वाल्हा विरण श्रहिलै गई ।।साखि।।
वारू रे नान्ही बहू श्रै, मन गमतो श्रै कीधू ।
पेट मे पैसी मस्तक रहँसी, बैरी, सांईडउ सामीजी नइ दीघू ।।१।।
खोलइ बइठी मीठु ं बोलै, कांइ श्रनुभौ श्रमृत पीधू ।
छानै छानै छमकलडां, करती श्राखइ मनडू वीधू ।।२।।
लोक श्रलोक प्रकाशक छइयो, जरगतां कारिज सीधू ं ।
श्रंगो श्रग रंग भरि रमतां, 'श्रानन्दघन' पद लीधू ।।३।।

पाठान्तर—जोवो = जोयौ (श्र), जोवु (उ) । तो=ते (श्रा), ता (उ) । जोवरण = योवन (श्र), जोवन (इ उ) । वाल्हा = वाहला (अ उ), वाला (इ) । अहिलै = अहले (उ) । वारू रे कीधू = वारू रे नान्ही बहूये अरणगमतो ए कीधू (आ), 'मोटी वहूये ए' मन गमतो कीघू (उ), वारू रे नान्हडी वहू रे मन गमतू ए कीघू (उ) । रहँसी = हर सै (अ), हरस्यै (इ), रहेसी (उ) । साईडउ = साइडु (इ) । नइ दीघू = नै दीवु (श्र इ), ने दीघू (उ) । खोलइ = खेले (श्र), खोलै (इ) । वइठी = वैठी (श्र), वैसी (इ) । अनुभौ = अनुभव (अ इ) । छानै छानै = छाना छाना (उ) । छमकलडा = छटकलडा (अ), छनकलडा (इ), छरकल्डा (उ) । 'करती श्रौर आखइ' शब्दो के मध्य 'श्रा' प्रति मे 'छरती' शब्द और है । श्राखइ = आखै (अ), आखे (इ उ) । मनडू = मनरु (उ) । वीघू = विधौ (श्रा), विवु (अ इ) । छइयो = छइयू (इ), छैयो (उ) । जरगता = जनता (उ) । कारिज सीघू = कारिज सीधौं (आ), कारज, सीघू (इ उ) । अग = अगइ (आ) । भरि = भर (इ उ) । लीघू = लीधौ (अ) लीघु (अ) ।

शब्दार्थ—अरण जोवता = विना देखे, विना ध्यान दिये, विना उद्यम। जोवो = देखना। वाल्हा = प्रियतम। अहिलै = व्यर्थ। वारू रे = वलिहारी जाती हूँ। नान्ही = छोटी। मन गमतो = मन को अच्छा लगने वाला। खोळ्इ = गोद मे। वइठी = वैठकर। छानै छानै = गुप्त रूप से। छमकलडा= येन केन प्रकारेण कार्य सिद्धि की कला, जिस तिस प्रकार से कार्य सिद्धि की चतुराई। आखइ = सम्पूर्ण। वीधू = वीद दिया, छेद दिया। जणता = पैदा करते ही।

अर्थ—समता कह रही है—जव तक किसी कार्य करने की ओर ध्यान नही दिया जाता,—पुरुपार्थ नही किया जाता तव तक लाखो विघ्न वाधाये सामने खडी नजर आती है और जव कार्य करने के लिये पुरुपार्थ कर लिया जाता है तव सव विघ्न-वाधाये दूर हो जाती है—नजर नही आती है।

जव पुरुपार्थ रूपी यौवन की साख (फसल) प्राप्त हो गई, तव विना प्रियतम (चेतन) के यह साख व्यर्थ जा रही है।

जव आत्म शुद्धि के लिये वातावरण वन गया उस समय चेतन का विभावावस्था को त्याग कर स्वभावावस्था मे न आना यौवन मे स्वामी-वियोग के समान है। साखी

मै वलिहारी हू छोटी वहू (पत्नि) ने वडा ही मन को आल्हादित करने वाला कार्य किया है जो स्वामी (चेतनराज) के पेट मे घुसी-छुपी रहकर और मस्तक को आच्छादित कर स्वामी को विभावदशा मे चारो गतियो मे घुमाती रहती थी और स्वामी की गोद मे वैठ कर मीठे वचन वोलती थी कि मानो अनुभव रूपी अमृत पी रखा हो। इस प्रकार वह सब्ज-वाग दिखाती रहती थी कि इनके (सासारिक सुख सुविधाओ के) अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नही। और जिसने गुप्त रूप से छल छिद्र करके स्वामी का सम्पूर्ण

मन बेध रखा था—अपने वशीभूत कर रखा था। उस मेरी बैरिन (ममता) ने मेरे स्वामी को परमात्म गुणो को दे दिया ॥-१-२-॥

जब मोह ममता से स्वामी का साथ छूट गया तो मैनें (समता ने) अग से अग मिलाकर रमण किया अर्थात समतामय चेतन बन गया। उसका परिणाम लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान रूप बालक (पुत्र) का जन्म हुआ। इस प्रकार सर्व कार्य सिद्ध हो गये और स्वामी ने 'आनदघन' (आनद समूह) पद प्राप्त कर लिया ॥३॥

ससार मे भ्रमण करती हुई भव्यातमा नर भव (मनुष्य जन्म) प्राप्त कर अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करता हुआ अग्रसर होता है—गुणस्थानो का आरोहण करता है। दसवे गुण-स्थान से बारहवे गुणस्थान मे जाता है और मोह प्रकृतियो को क्षय—नाश कर तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त करता है तो लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाला केवल ज्ञान प्राप्त कर लेता है और अनत सुखो का स्वामी बन जाता है।

अव्याबाध आनन्दानुभूति ७२ राग—जैजैवंती त्रिताला

मेरे प्रान आनन्दघन, तान आनन्दघन ॥

मात आनन्दघन, तात आनन्दघन ।

गात आनन्दघन, जात आनन्दघन ॥मेरे०॥१॥

राज आनन्दघन, काज आनन्दघन ।

साज आनन्दघन, लाभ आनन्दघन ॥मेरे०॥२॥

आभ आनन्दघन गाभ आनन्दघन ।

नाभ आनन्दघन, लाभ आनन्दघन ॥मेरे०॥३॥

यह पद हमारी अ और उ प्रति मे क्रमश ७ और ७१ सख्या पर है।

पाठान्तर— राज = काज (वु) । काज = साज (वु) ।

शब्दार्थ— तान = लय, । तात = पिता । गात = शरीर, देह । जात= पुत्र, जात-पात । साज = सामान, सजावट । आभ = शोभा, आभा । गाभ= गर्भ, मध्य । नाभ = नाभि, मध्य भाग ।

(देहधारियो के पाच इन्द्रिय, मन वचन काय, श्वासोश्वास और आयु ये दस प्राण होते है । सिद्ध भगवान के इनमे से एक भी प्राण नही होता । उनके तो ज्ञान दर्शन रूप भाव प्राण होते हैं । ये दसो प्राण पुद्गल आश्रित है । ये जड सयोग से उत्पन्न होते हैं अतः द्रव्य प्राण कहलाते है । योगी जब भगवान को ही सब कुछ समझ लेता है तो उसकी देह व इन्द्रियो की सुध-बुध खो जाती हैं । पहले यह अवस्था अल्प समय तक रहती है किन्तु ज्यो ज्यो अभ्यास बढता जाता है यह सस्कार बढते जाते है, चारो ओर वही चैतन्य रूप दृष्टि-गोचर होता है । जब तक मेरापन (अहभाव) का भाव है यह दृष्टि दृढ नही होती है । मेरा कुछ नही है, जब यह स्थिति आ जाती है और तदात्मता बढ जाती है उस स्थिति मे इस पद के शब्द योगीराज श्री आनन्दघन जी के मुख से निकले है ।)

अर्थ— हे प्रभो ! मेरे जीवन प्राण आनन्दघन है । मेरी वाणी और तान भी आनन्दघन ही हैं । हे भगवान ! मुझे आत्म भाव आपने ही दिये है । इन भाव प्राणो के दाता होने से आप मेरे माता-पिता है । मेरा यह शरीर भी आप है । हे आनन्दघन ! मुझे तो आप का ही सहारा है इसलिये मुझे भविष्य की कोई चिन्ता नही सताती । आप है, वहाँ पुत्रादि सब है ॥१॥

हे भगवान आपके पास जो आनन्द है वह तो त्रिलोक की सम्पत्ति मिलने पर भी न होगा, इसलिये मुझे किसी राज्य की आवश्यकता नही है । मेरे तो आप ही राज्य हो । आप ही से मेरा काम (कार्य) है । आप ही मेरे सर्वस्व हो । मेरी आपको लाज है ॥२॥

मेरी शोभा आप ही हो, क्योकि आप ही मेरे हृदय मे बसे हुये हो-गर्भित हो। हे आनन्दघन प्रभो! आप ही मेरे परम लाभ हो।

इस पद मे 'लाभ आनन्दघन' से सभवत कविराज ने अपना लाभानन्द नाम सूचित किया है।

कैवल्य बीज **७३** **राग–सारंग**

मेरे घट ज्ञान भान भयो भोर।
चेतन चकवा चेतना चकवी, भागौ विरह को सोर ॥मेरे०॥१॥
फैली चिहु दिसि चतुर भाव रुचि, मिट्यो भरम तम जोर।
आप की चोरी आप ही जानत, औरे कहत न चोर ॥मेरे०॥२॥
अमल कमल विकच भये भूतल, मंद विषै ससि कोर।
'आनन्दघन' इक वल्लभ लागत, और न लाख करोर ॥मेरे०॥३॥

पाठान्तर—ज्ञान = ग्यान (इ उ)। चतुर = चतुरा (क बु)। भरम = भर्म (अ)। तम = मन (उ)। औरे = और (अ)। न = नही (उ)। विकच = विक (आ)। करोर = किरोर (क बु)।

शब्दार्थ— घट = हृदय मे। भान = भानु, सूर्य। भोर = प्रात काल। सोर = शोर, कोलाहल। भाव रुचि = स्वाभाविक इच्छा। भरम तम जोर = भ्रम रूपी अँधकार की शक्ति। अमल = निर्मल। विकच = विकसित हो गये। भूतल = पृथ्वी। कोर = किरण। विषै = विषय वासना। वल्लभ = प्रिय। करोर = करोड।

अर्थ— मेरे हृदय मे ज्ञान रूपी सूर्य का प्रात काल हो गया है—प्रकाश हो गया है। चेतन रूपी चकवा और चेतना रूपी चकवी के विरह से उत्पन्न क्रदन सर्वथा दूर हो गया है ॥१॥

सर्वत्र चारो दिशाओ मे विचक्षण स्वभाव मे रमण रूप प्रकाश फैल जाने से भ्रम-मिथ्यात्व रूपी अन्धकार-वल जाता रहा-दूर हो गया है। अपनी चोरी गई वस्तु के चोर को मै स्वय ही जानता हू, इसलिये अन्य किसी को चोर नही कहता हू अर्थात् अपने आत्मिक गुणो का चोर मै स्वय ही था। किसी दूसरे ने मेरे ज्ञानादि गुणो को नही चुराया था। इसका अब निश्चय हो चुका है, इसलिये मै अन्य को चोर नही ठहराता-दोष नही देता ॥२॥

सूर्योदय होने से जिस प्रकार पृथ्वी पर कमल खिल जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य के उदय से हृदय-कमल खिल गया है—शुद्ध हो गया है और विषय वासना रूपी चन्द-किरणें मद पड गई है। एक आनन्द स्वरूप चैतन्य सत्ता ही प्रिय लगती है और लाखो करोडो सासारिक प्रलोभन अच्छे नही लगते है॥३॥

(इति आनन्दघन बहुत्तरी)

अन्य रचनायें

स्फुट पद

आत्म साम्राज्य　　७४　　राग–मारू

निस्पृह देश सुहामणो, निरभय नगर उदार हो, वसि अंतर जामी ।
निरमल मन मंत्री वडो, राजा वस्तु विचार हो; " ॥१॥
केवल कमलागार हो, सुणि सुणि शिवगामी ।
केवल कमलानाथ हो, सुणि सुणि निहकामी ॥
केवल कमलावास हो, सुणि सुणि शुभनामी ।
आतम तूं चूकिस मा, साहिब तू चूकिस मा ।
राजिन्दा तू चूकिस मा, अवसर लही ॥टेक॥
गढ सतोस सामी दसा, साधु सगति दिढ पोलि हो ।
पोलियो विवेक सु जागतो, आगम पायक तोलि हो ॥२॥
दिढ विसवास वतागरौ, सु विनोदी विवहार हो ।
मित्र वैराग विहडै नहीं, क्रीडा सुरती अपार हो ॥३॥
भावना बार नदी वहै समता नीर गभीर हो ।
ध्यान चहवचौ भर्यौ रहै, समपन भव समीर हो ॥४॥
उचालै नगरी नही, दुष्ट दुकाल न जोग हो ।
ईत अनीत व्यापै नही, 'आनन्दघन' पद भोग हो ॥५॥

(७८) निश्चयात्मक रूप से जो पद आनन्दघन जी के समझे गये हैं, उनकी शैली मे इस पद की शैली भिन्न है। अत शका उत्पन्न होती है कि यह पद उनका है अथवा नही।

पाठान्तर— सुहामणो = सोहामणो (इ उ)। नगर = नयर (उ)। वसि= वसै (इ, उ क बु)। द्वितीय पक्ति मे निरमल शब्द के आगे मन शब्द "अ" प्रति मे नही है। सुणि सुणि = सुनि सुनि (इ)। शिवगामी = सिवगामी (आ)। निहकामी = नीहकामी (आ), नि कामी (उ)। सुणि शुभनामी = सुणि

भनामी, कुछ अक्षर लेख दोष से गायब हो गये है, 'आ' प्रति मे । सुनि सुनि सुभगामी (इ), सुणि सुणि सुभग नामी (उ) । आतम = आतमा (आ क बु) । चूकिस = चूकि (अ), चूकीस (इ उ) । साहिव = साहिबा (आ), साहेवा (क बु)। लही = लही जी (आ), लहीजियो (उ) । गढ = दृढ (बु) । समौ दसा = सामो दसा (आ), सामोद सा (इ), सामोदिसा (उ), कामा मोदसा (क, बु) । पोलि= पौल (इ), पोल (उ) । वतागरौ = वितागरौ (आ,क बु), दृढ चितदास विता गरो (इ), दिढ चित्रदा वितागरो (उ) । सुरति = सुमति (उ) । समता = सुमता (आ), ममछा (उ) । रहै = है (आ) । चहवचौ = चैवचो (इ), चइवचो (उ) । समपन = समवन (आ) । उचालै = उचालो (आ) । जोग = योग (इ) । ईत = इति (आ बु), ईनि (क) ।

शब्दार्थ—निस्पृह = लोभ या लालसा व तृष्णा रहित । सुहामणो = सुहावना, सुन्दर । निरभय = निर्भय, भय रहित, जहाँ किसी प्रकार का भय न हो, अभय । कमलागार = खजाना । शिवगामी = कल्याण मार्ग का पथिक । निहकामी = कामना–वासना रहित । चूकिस मा = मत चूके । अवसर लही = समय पाकर । गढ = किला । सामौ = शान्त । पोलि = दरवाजा । पोलियो = पहरेदार । पायक = पैदल सिपाही, अनुचर । तोलि = तुल्य, बराबर । विता-गरो = चतुर विदूषक । विनोदी = विनोद (मजाक–आमोद प्रमोद), मैत्री, प्रमोद आदि भाव वाला । विहडै नही = पृथक (अलग) नही होता । सुरति = वृत्ति, स्मरण, प्रेम । चहवचो = पानी का छोटा हौज । समपन = अपने इष्ट के प्रति समर्पण भाव । समीर = हवा । उचालै = उपद्रव । ईत = ईति, अति वृष्टि, अना वृष्टि आदि खेती को हानि पहुचाने वाली ।

अर्थ— लालसा—तृष्णा रहित—निस्पृह रूपी सुन्दर देश मे निर्भय (अभय) नामक उदार नगर है जहाँ अतरयामी चेतन का वास स्थान है—राज्य है । वस्तु (तत्त्व) स्वरूप का विचार करने वाला भेद ज्ञानी अनुभव वहाँ का राजा है और निर्मल मन वहाँ का प्रधान मत्री है ॥१॥

नही है। यहाँ अति वृष्टि आदि ईतियो का भय नही है। यहाँ अनीती अनाचार का प्रवेश नही है। ईति रूपी अनीतियाँ यहाँ व्याप्त नही है। यहाँ तो आनन्द ही आनन्द का भोग है ॥५॥

योग सिद्धि ७५ राग-रामगिरि

आतम अनुभव प्रेम को, अजब सुण्यो विरतत।
निरवेदन वेदन करे, वेदन करै अनत ॥ साखी ॥
म्हारो बालूडो सन्यासी, देह देवल मठवासी ॥
इडा पिंगला मारग तजि जोगी, सुखमना घरि आसी।
ब्रह्मरध्र मधि आसण पूरी बाबू अनहद नाद बजासी ॥म्हारो ॥१॥
जम नियम आसण जयकारी प्राणायाम अभ्यासी।
प्रत्याहार धारणा धारी, ध्यान समाधि समासी ॥म्हारो०॥२॥
मूल उत्तर गुण मुद्राधारी, परयकासन चारी।
रेचक पूरक कुंभककारी, मन इन्द्री जयकारी ॥म्हारो०॥२॥
थिरता जोग जुगति अनुकारी आपो आप विचारी।
आतम परमातम अनुसारी, सीझे काज सवारी ॥म्हारो॥४॥

(७५) इस पद की साखी (दोहा) 'अ' और 'ड' प्रति मे नही है। इस पद मे कवि का नाम नही होने से कहा नही जा सकता कि यह किसका है अत यह शकास्पद है।

(तृ)। जोग जुगति = योग युगति (अ उ) विचारी = विमासी (इ बु क)। समारी = समाती (इ बु)।

शब्दार्थ—अजब = आश्चर्यकारक। विरतन = वृत्तांत, वर्णन। निरवेदन = स्त्री पुरुषादि वेद रहित, केवली भगवान। वेदन करे = वेदते है, भोगते हैं, जानते है। वालूडो = अल्पवयस्क, वालक। देवल = मदिर, मकान। इडा = वामनाडी, वामनाक का छिद्र, वाम नाक से चलने वाला स्वर, चन्द्रनाडी। पिंगला = दाहिनीनाडी, दाहिनी नाक का छिद्र, दाहिने नाक के छिद्र से चलने वाला स्वर, सूर्यनाडी। सुखमन = सुषुम्नानाडी, नाक के दोनो छिद्रो से चलने वाला स्वर। व्रह्मरध्र = मस्तक के वीच मे गुप्त छिद्र। मधि = मध्य, वीच मे। आसन पूरी = वैठकर, स्थिर करके। अनहदनाद = कान वद करने पर सुनाई देने वाला स्वर, अतरध्वनि। जम = यम, अहिंसा, सत्य आदि पाच यम जो आजीवन पालन किये जाते हैं। नियम = अल्प समय के लिये पाले जाने वाले नियम। यम, नियम, आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि ये योग के आठ अग हैं। इनकी पूर्णजानकारी के लिये श्री हेमचद्राचार्यका योगशास्त्र, श्री शुभचद्राचार्य का ज्ञानार्णव श्री चिदानद जी महाराज का स्वरोदय तथा अन्य आचार्यो के योग सबधी ग्रथ देखने चाहिये। समासी = समा जाता है, लीन हो जाता है। मूल = मूलगुण, यम अहिंसा आदि। उत्तर = उत्तरगुण, नियम अहिंसा आदि को पुष्ट करने वाले नियम। मुद्राधारी = योग की अनेक मुद्राओ (आकृतियो) को धारण करने वाला। परयकासन = पर्यंकासन एकप्रकार का आसान (योग के ८४ आसनो मे से)। चारी = चलने वाला, अभ्यासी। कुंभक=अदर और वाहर जाने वाले श्वास को रोकना जयकारी = जीतने वाला। थिरता = स्थिरता। अनुकारी = अनुकरण करने वाला, आज्ञाकारी। सीझै = सिद्ध हो जाता है। सवारी = शीघ्र। अनुसारी = अनुसरण करने वाला, अनुयायी।

अर्थ—आत्म अनुभव प्रेम का वृत्तान्त आश्चर्यकारक सुना जाता है। इस आत्मानुभव को पुरुष, स्त्री, और नपुसक-तीनो वेदो से रहित ही व्यक्ति वेदन कर सकता है,—भोग सकता है—जान

सकता है अर्थात् केवली भगवान ही इसे अनत काल तक भोगते है ।।साखी।।

वेदोदय नवें गुणस्थान तक ही होता है और इसकी सत्ता भी नवें गुणस्थान तक ही है। क्षायिक भाव से तो वेदोदय व सत्ता का नाश नवे गुणस्थान मे हो जाता है किन्तु उपसम श्रेणी वाले के इनका उपसम भाव रहता है इसलिये उन्हे अपूर्वकरण ग्यारहवें गुण स्थान तक पहुंचा तो देता है पर क्षायक भाव बिना आगे न बढकर उन्हे पीछे लौटना ही पडता है। इसलिये केवली भगवान ही वेदन करते हैं।

मेरा बाल-अलपवयस्क (अल्प अभ्यासी, अल्प कालिक सम्यक्त्वी) सन्यासी जो देह-शरीर रूपी मदिर-मठका निवास करने वाला है, वह इडा,पिंगला नाडियो का मार्ग छोडकर सुषुम्नानाडो के घर आता है। आसन जमाकर सुषुम्ना नाडो द्वारा प्राणवायु को ब्रह्म रध्रा मे लेजाकर अनहदनाद बजाता हुआ चित्तवृत्ति को उसमे लीन कर देता है ।।१।।

यम-नियमो को पालन करने वाला, एक आसन मे दीर्घकाल तक बैठने वाला, प्राणायाम का अभ्यासी, प्रत्याहार, धारणा व ध्यान करने वाला शीघ्र ही समाधि प्राप्त कर लेता है ।।२।।

वह बाल सन्यासी सयम के मूलगुण और उत्तर गुणो को धारण करने वाला है। पर्यंकासन का अभ्यासो है। रेचक, पूरक और कुंभक प्राणायाम क्रियाओ को करने वाला है और मन और इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने वाला है ।।३।।

इस प्रकार योग साधना अनुगमन करता हुआ वह सन्यासी स्थिरता ग्रहणकर अपने आत्म स्वरूप का विचार करता हुआ आत्मा और परमात्मपद का अनुसरण करता है तो उसके सर्व कार्य शीघ्र ही सिद्ध हो जाते है ।।४।।

प्रीतम उपालम्भ　　　　७६　　　　राग–जैजैवंती

तरस कीजई दइ को दई की सवारी री ॥
तीच्छन कटाच्छ छटा, लागत कटारी री ॥तरस० ॥१॥
सायक लायक नायक प्राण को प्रहारी री।
काजर काज न लाज बाज न कहुं वारी री ॥तरस० ॥२॥
मोहनी मोहन ठग्यो, जगत ठगारी री।
दीजियै 'आनदघन' दाद हमारी री ॥तरस० ॥३॥

(७६) यह पद कुछ अटपटा होने से शकास्पद मालूम होता है। लगता है सग्रहकार के दोष से वास्तविक पाठ गडबडा गया है।

पाठान्तर—कीजइ, = कीजिये (इ), कीजइरी (उ) तीच्छन = तीक्ष (आ), तीछन (ट), तिक्षन (उ)। कटाच्छ = कटाच (आ), कटाक्ष (इ), कटाक्ष (उ) काजर = काजर (उ)। लाज बाज न = लाजन बाजु (आ)। वारी री = वारी (आ)। दाद = दाइ (उ)।

शब्दार्थ—तरस = दया। दइको = दैवको विधाता को। दई की = विधाता की, कर्म की। सवारी = वाहन, जलूस, लश्कर। तीच्छन = तीक्ष्ण, तेज, पैने। कटाच्छ = कटाक्ष, टेडी नजर, व्यग, अपेक्षा। छटा = प्रभा, झलक। कटारी = कटार। सायक = बाण। लायक = योग्य, जिज्ञासु। नायक = नेता, सरदार (आत्मा)। प्रहारी = प्रहार करने वाला, चोट पहुचाने वाला, घातक। काजर = काजल। वारी री = मना करके, दूर करके। बाज = दूर होना, अलग होना। दाद = सहायता।

पूर्व पाठिका—मोहनीय कर्म के उदय से जब चेतन ऊपर के गुणस्थान मे चढकर पीछे गिरता है, उस समय चेतना बडी दुखी होती है।

चतुर्थ गुणस्थान मे आत्मज्ञान सम्यकत्त्व प्राप्त होता है। पाचवे मे देशविरति, छठे मे सर्वविरति, सातवें अप्रमत होता है, आठवे गुणस्थान मे शुक्ल ध्यान-आत्मध्यान ध्याते हुये जीव ऊपर चढता है। फिर दो घडी मे सम्पूर्ण कर्म मल का नाश करते हुये, नवें, दसवें, फिर वारहवे गुण स्थान को पार करते हुये केवल ज्ञान स्वरूप तेरहवे गुणस्थान को जीव प्राप्त कर लेता है। आठवें गुणस्थान मे चेतना चेतन से एकता अनुभव करती है और तेरहवे गुणस्थान मे एकत्व प्राप्त कर लेती है।

चौथे गुणस्थान से जव पतन होता है तो वहुत अल्प समय जीव दूसरे गुणस्थान मे रूक कर पहिले मे जा पहुचता है। सम्यक्त्व प्राप्त कर जव जीव गिरता है, उस समय की परिस्थिति का इस पद मे दिग्दर्शन है। चेतना विलाप करती हुई कहती है—

हे विधाता! जरा दया कीजिये। यह आपकी कैसी सवारी है?—कैसा जलूम है? इसके तीक्षण कटाक्ष (भ्राकुटी) की प्रभा मेरे कटार के समान पार हो जाती है ॥१॥

हे सयाने नायक! (चेतन) ये सासरिक प्रलोभन तीर के समान प्राणो पर प्रहार (चोट) करवाने वाले हं। इस दृश्य प्रपचको देखने के लिये न तो अजन लगाने की आवश्यकता है और न लोक-लाज की बाधा (रुकावट) है। स्वेच्छा से प्रलोभन नहो रुकते है और इन्हे रोकने वाला विरला ही होता है ॥२॥

जगत को ठगने वाली मोहनी ने मेरे मन-मोहन चेतन को ठग लिया है। हे आनदघन प्रभो! मेरी सहायता कीजिये। आपकी सहायता से ही चेतन मोहनी के फदे से अलग हो सकता है ॥३॥

अखंड स्मरण ७७ राग—रामगिरी

हमारी लौ लागी प्रभु नाम।
आम खास अरु गोसलखाने, दर अदालत नहीं काम
॥हमारी०॥१॥

पाच पचीस पचास हजारो, लाख करोरी दाम।
खाये खरचे दिये विनु जात हैं, ग्रानन करि करि श्याम
॥हमारी०॥२॥

इतके न उतके सिव के न जिउ के उरभि रहे दोउ ठाम।
सत सयानप कोई वतावे, 'ग्रानदघन' गुणधाम ॥हमारी०॥३॥

(७७) भाषा और शैली की भिन्नता ही इस पद के शकास्पद का कारण है सभव है यह पद भक्त कवि ग्रानदघन का हो।

पाठान्तर—लौ = ल्यै (उ), लय (क बु) आम = ग्राव (अ), ग्रमब (आ), अत्र (उ)। गोसलखाने = गुमलखाने (आ)। दर = अ दर (इ) ग्रदालत = यदालत (उ) करोरी = किरोरी (इ), किरोडी (उ)। खायै = खाई (इ), दिये विनु = दिए विना (अ), दिइ विनु (उ)। 'इ' प्रति मे पाठ इस प्रकार है- "खाई खरची दिन वितियत है, यो तन कर कर स्याम"। इतके न उतके = इतके उतके (इ उ)। इनके न उनके (क बु)। जिउके = जिनके (इ उ)। दोउ = विन (आ) विनु (इ)। सयानप = सयाने (इ उ)। कोई = कोय (इ)।

शब्दार्थ—लौ = लगन, चित्तवृत्ति, आशा। ग्राम = जनसाधारण के एकत्रित होने का स्थान, आम दरबार,। खास = विशेष व्यक्तियो के एकत्रित होने का स्थान, दरवारे खास। गोसलखाने = स्नानघर, वह स्थान जहा वादशाह विशेष (निज) व्यक्तियो से मिलते हैं। दर = मे, ग्र दर, द्वार। ग्रानन = मुख। श्याम = काला। इतके न उतके = इधर के न उधर के। ठाम = स्थान।

अर्थ—मेरी लगन—चित्तवृत्ति तो भगवान (अरिहत-सिद्ध) के नाम स्मरण मे लग रही है। प्रभु के ज्ञानादि गुण स्मरण मे मेरा मन दत्त चित्त है। यह मेरा सालवन ध्यान है जिस मे मै लीन होता हू। मुझे वादशाहो के आम और खास दरवारो मे जाने, वादशाह के एकान्त स्थान मे जाकर प्रतिष्ठा पाने की इच्छा नही है। और न

मुझे न्यायालय के अधिकारी बनने से ही काम है, क्योकि मेरा मन तो प्रभु स्मर्ण मे लीन है ॥१॥

ससार मे मानव पाच पच्चीस व पच्चास हजार यहा तक कि लाखो करोडो रुपया सग्रह करने मे लव लीन रहता है, और बिना खाये-उस धन को बिना भोगे, बिना खर्च किये ही, अपने मुख मे कालिख पोत कर-लगाकर चला जाता है सब का सब समय तृष्णा के चक्कर मे लगा कर मानव अपना जन्म—आयु खो देता है बिना भगवद् भजन के ही ससार से चला जाता है ॥२॥

ऐसे मानव न इधर के रहते है, न उधर के, न उनका यह लोक सुखप्रद होता है और न परलोक ही सुधरता है। न तो वे अपने शरीर सबधी सुख ही भोगते है और न आध्यात्मिक कार्य ही करते है। इस प्रकार वे दोनो के बीच उलझे रहते है। कोई विचक्षण आत्म ज्ञानी सन्त मुझे (जिसे प्रभु के नाम की लगन है) आनन्द के धन और उनके गुणो के स्थान प्रभु का साक्षात्कार करा देवे तो मेरे सर्व कार्य सिद्ध हो जावें ॥३॥

प्रिय मि न　　　　७८　　　　राग—वसंत

प्यारे आई मिलो कहा, अैठे जात।

मेरो विरह व्यथा अकुलात गात ॥प्यारे०॥१॥

एक पईसारी न भावै नाज, न भूषण नहि पट समाज ॥प्यारे०॥२॥

मोहि निरसनि तेरी आस, तुम ही शोभ यह घर की दास ॥प्यारे०॥३॥

अनुभवजी कोऊ करो विचार, कद देखो ह्वै वाको तन मे सार ॥प्यारे०॥४॥

जाई अनुभव समझाय कत, घर आए "आनदघन" भए वसत ॥प्यारे०॥५॥

(७८) यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति मे है औरो मे नही है। भाषा और शैली भिन्नता के कारण शंकास्पद है।

पाठान्तर—आइ = आय (क वु)। कह = कहा (क वु.) अंठे = यंते (क वु)। पईसारी = पेसाभर (क वु)। मोहि ' "दास = मोहन रास न दूसत तेरी आसी, मदनो भय है घर की दासी (क वु)। अनुभवजी " विचार = अनुभव जाय के करो विचार (क,वु)। जायके = जाहके (वु)। देखो = देखे (क वु)। ह्वै = ह्वै (क वु)। जाइ = जाय (क वु)। अनुभव = अनुभव जई (क वु)।

शब्दार्थ—कहा अंठे जात = क्यो अकडे जा रहे हो। गात = शरीर। नाज = अनाज। भूषण = आभूषण, जेवर। पट = वस्त्र। निरसनि = निराश। कद = कब। वाकी = उनकी।

अर्थ—शुद्ध चेतना कहती है—हे चेतन ! आकर दर्शन दीजिये। इतने क्यो अकठे (ऐंठे) जा रहे हो ? नाराज क्यो हो रहे हो ? मै बार बार आपको अपने घर बुला रही हू फिरभी आप नही आ रहे हो। आपके विरह के दुख से मेरा शरीर आकुल-व्याकुल हो रहा है ॥१॥

मेरी ऐसी दशा हो रही है कि मुझे एक पैसे भर भी अन्न अच्छा नही लगता है—न गहने वस्त्र पहिनना, अच्छा लगता है और न समाज मे कही जाना-आना अच्छा लगता है ॥२॥

हे चेतनराज ! इस शरीर रूपी घर की शोभा आप से ही है। मै तो आपके घर की दासी हू। हे चेतनराज ! आपके आने की आशा से मै निराश हो गई हू। मुझे अब आपके आने की आशा नही रही है ॥३॥

अब चेतना अनुभव से कह रही है—हे अनुभवजी ! कुछ विचार तो करो। वह (चेतन) तो कब देखेंगे, परन्तु तुम तो देखो। उनकी याद रूपी सार मेरे शरीर मे लगी हुई है। जिस प्रकार खाती की सार

लकडी को वीध डालनी है उसी प्रकार उनकी याद रूपी मार मेरे शरीर को छेद रही है ॥४॥

शुद्ध चेतना की वात सुनकर अनुभव ने जाकर चेतन को समझाया । स्वरूपानद के धनी चेतन अपने स्वभाव रूपी घर आगये और उनके आने से मानो वसत का आगमन हो गया हो आनद लह-लहा गया हो ॥५॥

प्रियतम को प्रार्थना **७९** **राग—वसत**

प्यारे जीवन एह साच जान ।
उत बरकत नाहि तिल समान ॥१॥
उत न मगो हित नाहिनें एक ।
इत पकर लाल छरी खरे विवेक ॥२॥
उत सठ ठग माया मान दु ब, इत ऋजुता मृदुता निजकुट्ठ व ॥३॥
उत आसा तिसना लोभ कोह, इत शात दात सतोष सोह ॥४॥
उत कला कलकी पाप व्याप, इत खेले 'आनदघन' भूप आप ॥५॥

(७९) यह पद केवल हमारी 'अ' प्रति मे ही है ।

पाठान्तर—नाहि = नाहिन (क), नाही (बु) । उत ..... एक = उनसे मागु दिन नाहि एक (क), उनमे मागु दिन नाहि एक (बु) । छरी खरे = छ-'री' करि (क), छरि करि (बु) । उत ... कुट्ठ व = उत शठता माया मान दु ब, इत ऋजुता मृदुता नीज कुट्ठ व (क), उत, शठता माया मान दु न, इत रुजता मृदुता मानो कुट्ठ व (बु) ।

शब्दार्थ—एह = यह । उत = उधर । बरकत = वृद्धि, लाभ । मगो = मागो, चाहो, । नाहिनें एक = भी नही । छरी = छडी, आसा । खरे = खडे

हुये। दु व = दभ कपट। ऋजुता = सरलता। तिमना = तृष्णा, लालसा। कोह = क्रोध। दात = इद्रियजय, इद्रियो पर विजय। सोह = शोभायमान है।

अर्थ—सुमति चेतन से कह रही है—हे प्रिय! हे जीवन प्राण! यह वात सच मानिये कि उधर ममता के फदे मे पडने से तिल के वरावर भी सद् गुणो की वृद्धि नही है। उधर की वृद्धि से जरा भी हित नही होने वाला है ॥१॥

उधर से (ममता की ओर से) कुछ भी न मागिये क्योकि उधर आत्म-हित की एक भी वात नही है। आत्महित की जरा भी गु जाइश नही है। इधर विवेक भेदज्ञान की छडी लिये हुये खडे है जो अनीति की राह से रोकते रहते है ॥२॥

उधर धूर्त ठग, मान, माया और दभ भरे हुये है। इधर (सुमति की ओर) सरलता, मृदुता विनय रूप अपना परिवार है ॥३॥

उधर (ममता की ओर) वासना, तृष्णा, लोभ और क्रोध है। इधर (सुमति की ओर) शाति, इद्रिय-जय और सतोष शोभायमान है ॥४॥

उधर (ममता की ओर) कलकी पाप की कला व्याप्त हो रही है। इधर स्वय आनदस्वरूप चेतन राज का क्रीडा स्थल है, जहा चेतनराज क्रीडा करते है ॥५॥

जड चेतन-विवेक **८०** **राग—वसंत**

कित जाए मतै हो प्राणनाथ, इत आई निहारो नै घर को साथ ॥१॥

उत माया काया कवण जात, उह जड तुम चेतन जग-विख्यात ॥२॥

उत करम भरम विष बेल सग, इत परम नरम मति मेलि रंग ॥३॥

उत काम कपट मदमोह मान, इत केवल अनुभव अमृत पान ।।४।।
अलि कहै समता उत दुख अनत, इत खेले आनदघन वसत ।।५।।

(८०) यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति मे हैं। पद स ७९ और यह पद एक ही भाव को व्यक्त करते है। इन दोनो ही पदो मे शैली अन्य पदो से भिन्न है। अतः शका उत्पन्न होती है।

पाठान्तर—जाए = ज्ञान (वु), जात (क)। उह = यहु (क), वह (वि) सग = अ ग (वु)। खेले = खेलहु (क)।

शब्दार्थ—कित = कहा, मतै = विचार। निहारो = देखो। उह = वे।

अर्थ—हे प्राण नाथ चेतन देव! किधर जाने का विचार है? आप कृपा कर इधर आकर देखिये तो सही। यहा अपने परिवार क्षमा आर्जव, मार्दव, सत्य आदि का साथ है।।१।।

उधर छद्मवेश धारिणी माया और काया की क्या असलियत है? क्या जाति है? अरे यह तो जड है और आप विश्व-विख्यात चेतनराज हो। इस जड के प्रसग मे अपने चेतन भाव को क्यो भूल रहे हो।।२।।

उधर ज्ञानावरणादि आठ कर्म प्रकृति से उत्पन्न भ्रम रूप जहरीली बेल छाई हुई है, जिसने चारो ओर से आप को जकड रखा है और इधर समता, श्रद्धा आदि परम कोमल वृत्तिये आपके रग मे रगी हुई है।।३।।

उधर काम, कपट, मद, मोह और मान है और उधर केवल आत्मानुभव रूप अमृत का पान है।।४।।

समता कहती है—हे सखि! उधर अनत दुःख हैं और इधर आनद राशि-भगवान वसतोत्सव खेलते है।।५।।

जिन-स्मरण-लीनता ८१ राग—अलियो वेलावल

जिन चरणे चित ल्याउं रे मना ।
अरहत के गुण गाऊ रे मना ॥जिन०॥
उदर भरण के कारणे रे गौवा वन मे जाय ।
चार चरै चिहु दिस फिरे, वाकी सुरति वछरुआ माहिरे ॥जि०॥१॥
साल पाच सहेलिया रे, हिलमिल पाणी जाय ।
ताली दिये खड खड हसरे, वाकी रति गगरूआ मांहि रे ॥जि०॥२॥
नटुआ नाचै चोक मे रे, लाख क लोक सोर ।
वास गृही वरते चढै, वाको चित न चलै कहू ठोर रे ॥जि०॥३॥
जूआरी-मन मे जूआरे कामी के मन काम ।
'आनदघन' प्रभू यू है, इम ल्यौ भगवत नाम रे ॥जि०॥४॥

(८१) यह पद केवल हमारी 'अ' प्रति मे है । इस पद की भाषा और शैली भिन्न होने से शकास्पद है ।

पाठान्तर—जिन = अैसे जिन (क वु) अरिहत = अैसे अरिहत (क वु) गौवा = गोआ (क वु)। माहिरे = माहेरे (क वु) । लाख.... सोर = लोक करै लख सोर (क वु) गृही = ग्रही (क वु) भगवत = भगवत को (क वु)।

शब्दार्थ—चितल्याउ = मनलगाऊ । उदर = पेट । चार = चारा, घास आदि । चिहु = चारो । सुरति = चित्तवृति । खड खडं हसे = मुक्त कठ से हसती है, खिल खिलाकर हसती है । वरते = वरत्रा, रस्सी ।

अर्थ—हे मन ! राग-द्वेष-विजयी जिनराज भगवान के चरणो मे अपनी वृत्तियो को इस प्रकार लगा, आत्म शत्रुओ के नाशक अरि-

हन्त भगवान के गुणो का इस प्रकार स्मर्ण कर जिस प्रकार अपना पेट भरने के लिये गाये जगल मे जाती है और वह चारा-घास आदि चरती है, चारो दिशाओ मे घूमती है किन्तु उनकी चित्तवृत्ति तो अपने बछडे (वत्स) मे ही रहती है ॥१॥

विशेष—हे जीव ! यदि तू अन्तराय कर्म के उदय से सर्व विरति का सेवन न कर सके तो भी अपनी चित्त वृत्तियो को सदा आत्माभिमुख रख । इसमे तनिक भी प्रमाद न कर । सब कार्य करते हुये आत्म जागृति रख । अपने मे कर्तृत्व का अरोपण न करके साक्षी भाव का अरोपण कर, अर्थात् साक्षी भाव से रह ।

आगे योगीराज फिर कहते है—पाच सात सहेलिया हिलमिल कर पानी भरने के लिये जाती है, वे तालियें बजाती है, खिल खिला-कर हसती है किन्तु उनकी चित्तवृत्ति तो मस्तक पर रखे हुये घडे (गररी) मे ही रहती है । अर्थात् सब कार्य करते हुये भी उनका ध्यान यही रहता है कि कही घडा सिर पर से गिर न जाय ॥२॥

कविराज पुन उदाहरण देते हुये कहते है-नट सरे बाजार चौक मे नाच (नृत्य) करता है । आने जाने वाले, दर्शकगण लाखो बातें करते हैं, शोरगुल करते है । वह नट वास लेकर रस्सो पर चढकर अनेक कलाये दिखाता है, लोगो के शोरगुल की ओर ध्यान न देकर वह तो अपने चित्त को अपने कार्य की ओर ही रखता है । उसका चित्त किसी दूसरी जगह जाता ही नही है ॥३॥

विशेष—इन तीन पदो मे—पहिले पद मे अहार प्राप्त करने के लिये जाने वाली गायो का वर्णन है, दूसरे पद मे पानी लाने वाली विनोदी स्त्रियो का वर्णन है, और तीसरे मे पेटार्थी लोक रजन का धन्धा करने वाले नट का दृष्टान्त है । इन सब का आशय यहीहै कि चाहे अपनी रोजी के लिये उद्यम करते हो, चाहे मित्र मडली

मे विनोद करते हो, चाहे पेट पालन के लिये लोगो का मन-रजन का कार्य करते हो, ये सब करते हुये भी अपने को किसी भी अवस्था मे, अपने आत्मा को नही भूलना चाहिये। सर्वदा आत्म जागृति रखनी चाहिये। उक्त तीनो कार्य करने वाले जिस प्रकार अपने मूलभूत कार्य को नही भूलते है उसी प्रकार हमे भी जिनेश्वर देव का स्मरण दत्तचित्त होकर करना चाहिये। सासारिक-व्यवहारिक कार्य करते हुए भी चित्त प्रभु मे रखो।

कविराज आनन्दघनजी दो सासारिक उदाहरण देते हुये कहते है--जिस प्रकार जुआ खेलने वाले की वृत्ति हमेशा जुआ के दाव पेच मे, और कामी (व्यभिचारी) पुरुष का मन सदा स्त्रियो मे लगा रहता है, उसी प्रकार हे भव्य प्राणियो! अपनी प्रबल लगान से तुम प्रभु के नाम व गुणो का स्मर्ण करो ।।४।।

महासत्ता,-सामान्य-विशेष ८२ राग–धन्यासिरी

चेतन सकल वियापक होई।
सत असत गुण परजाय परिणति, भाउ सुभाउ गति जोई ।।चे०।।१।।
स्व पर रूप वस्तु की सत्ता, सीझे एक नहीं दोई।
सत्ता एक अखड अबाधित, यह सिद्धंत पच्छ जोई ।।चे०।।२।।
अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु को, समझि रूप भ्रम खोई।
आरोपित सब धर्म और है, 'आनदघन' तत सोई ।।चे०।।३।।

(८२) मुद्रित पुस्तको मे यह पद दो स्थानो पर है। एक तो ५५वी सख्या पर है जिसमे 'चेतन अपा कैसे लोई' से आरभ हुआ है तत्पश्चात्– 'सत्ता एक अखड तत सोई' तक ऊपर जैसा ही है। दूसरे ८९वी सख्या पर ऊपर जैसा है वैसा ही है। हमारी 'आ प्रति मे उक्त पद की दूसरी और तीसरी पक्ति नही है।

पाठान्तर— होई = दोट (श्रा)। परजाय = परजय (क वु वि)। जोई = दोइ (क वु), होइ (वि) मिद्ध त = सिधत (आ), सिद्धात (उ क वु वि)। पच्छ = पछ (आ, इ), पख (क वु वि)। पथ (उ)। जोइ = होइ (श्रा, क, नु)। दोई (उ)। श्रन्वय अरु व्यतिरेक = श्रनवय व्यतिरेक (आ, क वु)। हेतु को = हेतु कउ (आ)। ममझि = ममजी (क वु वि)। और है = श्रोराहि (आ)।

शब्दार्थ—वियापक = व्यापक। गुण = आत्मगुण ज्ञानदर्शनादि। परजाय = पर्याय। (सहभावी धर्म गुण और क्रमोपभावी धर्म पर्याय कहलाते है) परिणति = परिणमन शीलता, श्रात्मा के गुण पर्यायो का मन ही आत्म परिणति है, सिद्धो के स्वभाव परिणति है। भाउ = भाव, पारिणामिक, औदयिक औपशमिक, क्षयोपशमिक तथा क्षायिक। सुभाउ = स्वभाव। गात = श्रवस्था, ढग। जोई = देखकर, विचार कर। स्व = निज, आत्मा की। पर = श्रन्य की, जड की। रूप = स्वरूप। सत्ता = अस्तित्व। सीझे = सिद्ध होती है। सिद्ध त पच्छ = शास्त्रीय पक्ष। अन्वय = कार्य कारण सबध। व्यतिरिक = जहाँ कार्य का अभाव वहा कारण का भी अभाव। हेतु = कारण। श्रारापित = एक वस्तु मे अन्य वस्तु के गुण की कल्पना। तत = तत्व, सार वस्तु।

श्रर्थ—यह चेतन राज सर्व व्यापक बना है अर्थात् कर्म-मल के नाश होने पर उसके ज्ञान मे सर्व ज्ञेय (जानी जाने वाली वस्तु) भासते है। लोक, अलोक की सब स्थिति वह (आत्मा) जानता है, देखता है। इस अपक्षा से चेतन सर्व व्यापक होता है। अथवा केवली समुद्घात के समय यह आत्मा लोक प्रमाण अपने आत्म प्रदेशो को फैलता है—इस प्रकार भी वह सर्व व्यापक होता है। अन्यथा तो यह श्रात्मा शरीर प्रमाण ही होता है। यह दोनो अवस्थाये पूर्ण ज्ञान--केवल ज्ञान प्राप्ति पर ही होती है। योगीराज आनदघनजी वही स्थिति प्राप्त करने के लिये कहते है—हे चेतन! सर्व व्यापक बनो। ऐसा उद्यम करो जिससे केवल ज्ञान प्राप्त हो।

इस चेतन मे सत-असत--अस्ति, नास्ति दोनो धर्म है। स्व-द्रव्य की अपेक्षा इसमे अस्ति धर्म है, पर-द्रव्य की अपेक्षा नास्ति धर्म है। आत्मा अपने ज्ञानादि गुण, मनुष्यादि पर्याय-इन गुण-पर्याय की परिणति-परिणमन, क्षायिकादि भाव तथा निज चेतन स्वभाव की गति से यह चेतन सत है व जड धर्म की अपेक्षा से असत है, अर्थात् जड पदार्थ के गुण वर्ण गध रस स्पर्श इसमे (चेतन मे) नही है ॥१॥

स्व एव पर वस्तु का स्वरूप व सत्ता एक ही सिद्ध नही होती, वह भिन्न-भिन्न है, दो है। अर्थात् चेतन की स्व सत्ता चेतन रूप है तथा जड की सत्ता जड रूप है। यह जड भाव व चेतन भाव दोनो एक वस्तु मे सिद्ध नही होते। यह सिद्धान्त पक्ष है कि चेतन एक अखड व अबाधित सत्ता है ॥२॥

उस चैतन्य सत्ता को अन्वय और व्यतिरेक हेतु से समझकर, स्वरूप सम्बन्धी सम्पूर्ण भ्रम मिटा देने चाहिये। मानसिक, वाचिक और कायिक धर्म भिन्न है। ये आत्मा के धम नही है। इन सब आरोपित धर्मों को भिन्न समझ कर आनद के समूह रूप ज्ञान दर्शन स्वरूप आत्मा को जानना चाहिये, यही तत्व रूप परम सत्य है। इस चेतन शक्ति की पूर्णता प्राप्त करना ही सर्व व्यापाक होना है ॥३॥

प्रियतम उपालंभ **८३** **राग—व**

प्यारे, अब जागो परम गुरु परम देव।
मेटहु हम तुम बीच भेद ॥

आली लाज निगारो गमारी जात, मोहि आन मनावत विविध भांति ॥प्यारे०॥१॥

आली पेर निमूली चूनडी कानि, मोहि तोहि मिलन बिच देत हानि ॥प्यारे०॥२॥

आली पति मतवाला और रंग, रमे ममता गणिका के प्रसग
॥प्यारे०॥३॥

अब जड ते जडता घात अंत, चित फूले 'आनंदघन' वसत
॥प्यारे०॥४॥

(८३) यह पद केवल हमारी 'अ' प्रति मे है। इस पद की भाषा और शैली भिन्न है और शीर्षक पद मे पति को सबोधित किया गया है, और आगे सखी से बात चीत होती है। पूर्वापर का सबध नही है। तीसरा और चौथा पद तो ऊपर के पदो से सर्वथा भिन्न पड जाते हैं। सग्रहकार ने कोई पद कही का और कोई पद कही का मिलकार यह पद बना दिया हो, ऐसा लगता है। अत शकास्पद है।

पाठान्तर—मुद्रित प्रतियो मे 'प्यारे' शब्द 'परमदेव' के पीछे है। आली पेर कानि = अली पर निर्मू ली कुलटी कान (क बु वि)। मोहि तोहि = मुनि तुहि (क बु)। मतवाला = मतवारे (क बु वि) तीसरे पद के आदि मे जो 'आली' शब्द है, वह मुद्रित प्रतियो मे नही है। अब 'अ त = जव जडतो जडवास अ त (क वि) अब जडतो जडवास अ त (बु)।

शब्दार्थ—आली = सखी। गमारी = गवार। आन = आज्ञा। पेर = पेलना, सताना। घात = प्रहार, चोट।

अर्थ—सुमति कहती है—हे परम गुरु देवादिदेव! अब तो सचेत होवो। आपके और मेरे मध्य जो अन्तर पड रहा है उसे मिटा डालो॥

हे सखी! लाज निगोडी गवार जाति है। वह मुझे तरह तरह की आज्ञाये देकर उनका पालन कराना चाहती है॥१॥

हे सखी! वह निर्मू ली लज्जा चूनडी पहिनकर, सजधजकर (शृ गार करके) आपके और मेरे मिलन मे बाधा उत्पन्न करती है। मे अपनी लज्जावश आपके पास नही आ रही हू॥२॥

हे सखी ! स्वामी तो ममता रूपी गणिका के फद मे (जाल मे) पडकर मतवाले हो रहे हैं और उसी रग मे रम रहे है ॥३॥

अव तो जडवस्तु के ममत्व का अ त होने पर ही—पौद्गलिक भाव का नाश होने पर ही आत्मज्ञान रूप वसंत का आगमन होकर मेरा चित्तरूपी पुष्प खिलेगा और अतिशय आनदप्राप्त होगा ॥४॥

अव ऐसे शकास्य पद दिये जाते है जो हमारी प्रतियो मे तो है नही, किन्तु मुद्रित प्रतियो मे है। इनकी भाषा और शैली आनद-घन जी के पदो से भिन्न है। ये पद किसी अन्य जैन कवि के या और कवियो के हो सकते हैं। भविष्य मे शोधकरने वालो को अन्य कवियो के पद मिलेगे तो वहुत कुछ वाते स्पष्ट होजावेगी।

८४ राग—आशावरी

बेहेर बेहेर नहि आवे रे अवसर, बेहेर बेहेर नहि आवै ॥अव॥१॥
ज्यू जाणों त्यू करले भलाई, जनम जनम सुख पावै ॥अव०॥२॥
तन धन जोवन सबही झूठो, प्राण पलक मे जावै ॥अव०॥३॥
तन छुटे धन कौन काम को, कायकू कृपण कहावै ॥अव०॥३॥
जाके दिल मे साच बसत है, ताकू झूठ न भावै ॥अव०॥४॥
'आनदघन' प्रभु चलत पथ मे, समरि समरि गुण गावै ॥अव०॥५॥

(८४) शब्दार्थ—वेहेर वेहेर = वारवार। अवसर = समय, मौका। पलक मे = क्षण मे, पल मे। कायकू = किस लिये। भावै = अच्छी लगती है। समरि समरि = वरावर स्मरण करके।

नोट—यद्यपि यह पद हमारी 'अ' प्रति मे एक स्थान पर लिखा हुआ है। किन्तु उस स्थान पर इस पद पर कोई क्रम सख्या नही है। मुद्रित पुस्तको के पाठ से भी भिन्नता नही है अत पाठान्तर नही दिये गये। यह पद

मुद्रित प्रतियो मे क्रम सख्या १०० पर है। इस पद पर श्री कापडिया जी ने भी आनदघनजी के होने मे शका की है।

अर्थ—ऐसा समय बार बार नही आवेगा ऐसा सयोग फिर फिर नही मिलेगा। अर्थात् यह मानव जन्म फिर नही मिलेगा। इसलिये जिस समय भलाई करने का अवसर हो उस समय भलाई करलो, जिससे जन्म जन्मातरो मे भी सुख प्राप्त हो ॥१॥

शरीर, धन-दौलत और यौवन अवस्था ये सब झूठे है, क्षणभगुर है क्यो कि यह प्राण पल मात्र मे ही उड जाता है ॥२॥

जब शरीर ही नही रहे तो धन किस काम आता है फिर किस लिये कृपण कहलाता है ॥३॥

जिसके हृदय मे सत्य का निवास है, उसे झूठ कभी भी अच्छी नही लगती है ॥४॥

कविराज आनदघनजी कहते है—मार्ग मे चलते चलते बार बार आनदघन प्रभु का स्मर्ण करके उनका गुणगान करले ॥५॥

८५ राग—बेलावल

दुल्हन री तू बडी बावरी पिया जागै तू सोवे ॥
पिया चतुर हम निपट, अग्यानी, न जानू क्या होवे।
'आनदघन' पिया दरस पियासे, खोल घु घट मुख जौवे ॥१॥

नोट—यह पद हमारी किसी प्रति मे नही है। मुद्रित प्रतियो मे इसकी क्रम सख्या १९ है। श्री कापडियाजी ने इस पद को श्री आनदघनजी की कृति होने मे शका की है। वास्तव मे इस पद की भाषा और शैली आनदघनजी की भाषा-शैली से भिन्न है अत यह विवाद है।

अर्थ—हे दुल्हन-नई नवेली स्त्री ! (चतुर्थगुण स्थान मे प्राप्त श्रद्धा, सम्यक्त्वी आत्मा) तू बडी ही पगली है क्यो कि तू जानती है कि पति वहुत ही कठिनता से मिलेगा तोभी तू ता सो रही है और पति जागरहा है। पति विभाव दशा मे है।

दुलहन जवाव देती है मेरा स्वामी वहुत ही चतुर है और मै बिल्कुल अज्ञानी हू मै नही जानती कि मुझे क्या करना चाहिये।

आनद के समूह प्रियतम के दर्शनो के लिये यह दुलहन तृपातुर है। लाज शर्म को त्यागकर-घू घट (परदा) हटाकर प्रियतम का मुख देखने लग गई। और आशा करने लगा कि अव यह प्रियतम मेरी ओर देखेगे। (विभावदशा त्याग कर स्वभाव दशा मे आवेगे)।

शृंगार धारण ८६ राग—गौडी आसावरी

आज सुहागन नारी अवधू ॥
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी निज अँग चारी ॥अवधू॥१॥
प्रेम प्रतीत राग रुचि रगत, पहिरे जीनी सारी।
महिंदी भक्त रग की राची, भाव अजन सुखकारी ॥अवधू॥२॥
सहज सुभाव चूरिया पेनी, थिरता कगन भारी।
ध्यान उरवसी उर मे राखी, पिय गुन माल आधारी ॥अवधू॥३॥
सुरत सिंदूर मॉग रँग राती, निरते वेनी समारी।
उपजी ज्योत उद्योत घट त्रिभुवन, आरसी केवल कारी ॥अवधू॥४॥
उपजी धुनि अजपाकी अनहद, जीत नगारे वारी।
झडी सदा 'आनन्दघन' वरखत, वन मोर एकन तारी ॥अवधू॥५॥

(८६) यह पद मुद्रित प्रतियो मे २० वी सख्या पर है। भाषा-शैली आनन्दघन जी की न होने से शकास्पद है। यहाँ थोडा पाठ भेद है वह दिया जाता है—चूरिया पेनी = चूरी मैं पेनी (क)। कगन = ककन (क वि)। मोर एकन तारी = विन मोरे एक तारी (वु)।

शब्दार्थ— सुध = खवर । अँगचारी = सहचरी, दासी । प्रतीत = विश्वास, आस्था । रुचि = चाह, इच्छा । जीनी = झीनी, वारीक, महीन । भारी= मूल्यवान । उर वसी = गले मे पहिनने का एक आभूषण । उरमे = हृदय मे । आधारी = धारण की । सुरत = स्मरण, शुद्ध उपयोग । राती = रक्त । निरतै= लवलीन, एकाग्रता । समारी = सुधारी, गू थी । उद्योत = प्रकाश । आरसी = दर्पण । कारी = वना कर । धुनि = ध्वनि । झडी = मघ धारा । एकन तारी= एक तार, एकाग्र होकर ।

अर्थ— चेतना चेतन से कह रही है—हे अवधूत –आत्मन्–हे अविनाशी चेतन ! आज आपने मेरे सुधि-खबर ली है, मैं वडी सौभाग्यशालिनी हू कि आपने मुझे अपनी सहचरी—सेवा करने वाली वना ली है। ममता का साथ छोड कर आज आपने मुझे स्वीकार कर लिया है। इससे अधिक मेरा सौभाग्य क्या होगा ? ।।१।।

सौभाग्यशालिनी चेतना ने सद्गुणो के प्रेम व श्रद्धा के रग मे रगी रुचिकर रगवाली वारीक साडी पहन ली (पति के सद्गुणो मे एक रस हो गई) । भक्ति रूपी राचनी मेहदी लगाई और भाव रूपी सुखदायक अजन (काजल) आखो मे लगाया ।।२।।

सहज स्वभाव रूप (ज्ञान दर्शन चारित्रादि) चूडिये और स्थिरता रूप मूल्य वान कगन हाथो मे पहिने। ध्यान रूप उरवशी माला प्रियतम के गुणो से पिरोई हुई अपने गले मे धारण की ।।३।।

अनुभव ज्ञान रूपी दर्पण मे प्रतिविम्व देख कर शुद्धोपयोग रूपी सुन्दर रग वाला सिन्दूर माग मे लगाया और पति के गुणो मे लवलीनता रूपी वेणी (चोटी) को सजाया। इससे हृदय मे एक नवीन ज्योति का प्रकाश फैल गया ।।४।।

इस प्रकार श्रृगार करने के पश्चात् हृदय मे अजपा जाप की ध्वनी उत्पन्न हो गई और अनहद नाद के विजय नगारे दरवाजे पर

वजने लगे। इससे आनन्द-मेघ की झडी लग गई और मन-मयूर उस आनन्द मे एक तार हो गया—लव लीन हो गया ॥५॥

उपदेश ८७ राग—काफी

ए जिनके पाय लागरे, तूने कहिये ये केतो ।
आठोइ जाम फिरे मद, मातो, मोह निंदरियाशूं जागरे ॥तूने०॥१॥
प्रभु जी प्रीतम विन नही कोई प्रीतम, प्रभु जी नी पूजा घणी मांग रे ॥तूने०॥२॥
भव फेरा वारी करो जिनचदा, आनन्दघन पाय लाग रे ॥तूने०॥३॥

(८७) यह पद मुद्रित प्रतियो मे क्रम सख्या १०२ पर है। इस पद की भाषा-शैली आनन्दघन जी की भाषा-शैली से भिन्न है। जिस प्रकार से आनन्दघनजी ने अपने भाव अन्य पदो मे व्यक्त किये हैं, उस प्रकार इसमे नही है अत यह पद उनका नही दिखाई देता। श्री कापडिया जी ने भी इसे शकास्पद माना है। हमारे विचार मे सह पद 'जिनदच' नामक किमी कवि = का होना चाहिये।

शब्दार्थ—केतो = कितना। जाम = याम, प्रहर। निंदरियाशू = नीद से। घणी = अधिक। माग रे = माग ले। वारी = निवारण, दूर। पाय = पद, चरण।

अर्थ—हे मन तुझे कितना कहा, कितना समझाया, तू जिनेश्वर भगवान के चरणो मे लग जा। आठो ही प्रहर—दिन—रात तू मोह—नीद मे मस्त होकर फिरता है। अरे अब तो इस मोह—नीद से जागृत हो ॥१॥

यह जिनेश्वर देव ही सबसे प्रिय है इनके बिना ससार मे और कोई प्रियतम नही है। अत इन प्रभुजी के चरणो की पूजा अधिक से अधिक याचनकर, उसमे लग जा ॥२॥

अरे जिनचद आनन्द के समूह जिनेश्वर देव के चरणो मे लग कर इस ससार के आवागमन को दूर कर ॥३॥

निराधार विरहिणी ८८ राग–सोरठ या रामेरी

निराधार केम मूकी, श्याम मुने निराधार केम मूकी ।
कोई नहीं हूँ कुरणशू बोलू , सहु आलम्बन टूकी ॥श्याम०॥१॥
प्राण नाथ तुमे दूर पधार्‍या, मूकी नेह निरासी ।
जण जणना नित्य प्रति गुण गाता, जनमारो किम जासी
॥श्याम०॥२॥
जेहनो पक्ष लहीने बोलू , ते मन मा सुख आणे ।
जेहनो पक्ष मूकी ने बोलूं, ते जनम लगे चित ताणे ॥श्याम०॥३॥
बात तमारी मन मां आवै, कोण आगल जइ बोलू ।
ललित खलित खल जो ते देखू , आम माल धन खोलू ॥श्याम०॥४॥
घटें घटें छो अन्तरजामी, मुज मां कां नवि देखू ।
जे देखू ते नजर न आवै, गुणकर वस्तु विसेखू ॥श्यामा०॥५॥
अवधें केहनी वाटडी जोऊं, विण अवधें अति झूरू ।
'आनदघन' प्रभु वेगे पधारो, जिम मन आशापूरू ॥श्याम०॥६॥

(८८) यह पद मुद्रित प्रतियो मे क्रम सख्या ९४ पर है। यह पद भी शकास्पद है। क्योकि भाषा व शैली भिन्न है। इस पद को श्री बुद्धि सागर जी ने शकास्पद माना है।

पाठान्तर— कोई नही बोलू = कोई न नेहु ने कुण सु बोलु (क)। लहीने = ग्रहीने (क)। तमारी = तुमारी (क)। देवू = देवु (ख)। केहनी = कहीनी (क)।

शब्दार्थ— निराधार = बिना सहारे। केम = किस प्रकार, क्यो। कुणशू = किन से। मूकी = छोडी। सहु = सब। आलबन = अवलंब सहारा। टूकी = टूट गये। निराशी = निराश करके, ना उम्मीद करके। जण जगणा = प्रत्येक व्यक्ति के। जनमारो = जीवन। जेहनो = जिसका। लहीने = लेकर। सुख आणे = सुख मानेगा प्रसन्न होगा। चित ताणे = मन मे खिचा हुआ रहेगा, वैर रखेगा। तमारी = तुम्हारी। आगल = आगे, सन्मुख। जइ = जाकर। ललित = सुन्दर। खलित = स्खलित, पतित। खल = दुष्ट। आम = इस प्रकार। माल धन = सम्पत्ति, रहस्य। घटे घटे = प्रत्येक हृदय की। का = क्या। गणकर = भलाई करने वाले। विमेसू = वास कर के। अवघे = अवधि, मियाद। वाटडी = मार्ग, प्रतीक्षा। झूरू = दुःख उठाती हूँ, विलापात करती हूँ।

अर्थ— चौथे गुण स्थान से च्युत चेतन राज को दुखित सुमति या चेतना कह रही है—हे श्याम! हे नाथ! आपने मुझे बिना आधार (सहारे) के ही क्यो छोड दिया। मुझे निराधार छोडने का क्या कारण है। मेरा तो अब कोई नही है। मै किससे हृदय खोल कर बात चीत करू? मेरे तो सब अवलबन (आश्रय) दूर हो गये है—भ्रष्ट हो गये हैं ॥१॥

हे प्राण नाथ! आप तो मुझे छोड कर दूर चले गये हो। (चौथे गुण स्थान से प्रथम गुण स्थान मे) मै आपके स्नेह (प्रीति) की प्राप्ति मे निराश हो गई हू। अब मै क्या करू। आपके बिना, आपके विरह मे हर रोज हरेक के (मुझ से जिनका मेल नही—कुत्सित मनो-वृत्तिये) गुण गाते हुये मेरा जीवन किस प्रकार व्यतीत होगा? ॥२॥

हे प्राणनाथ चेतन ! मै जिसका पक्ष लेकर बोलती हू—जिस की तरफ दारी करती हू वह तो मन मे प्रसन्न होता है, जिसके विपक्ष मे–विरोध मे कुछ कहती हु वही जीवन पर्यन्त बैर भाव रखने लगता है ॥३॥

(चेतन और सुमति या चेतना का अभेद है जहाँ चेतन है वहाँ चेतना है प्रथम गुणस्थान मे गए हुए चेतन के साथी मिथ्यात्व को ही वढाते है। इसलिए चेतना कहती है कि इस अवस्था–मिथ्यात्व में प्राप्त हरेक (मनोवृत्ति) के अनकूल बोलती हूँ तो वे प्रसन्न होते है अर्थात् मिथ्यात्व बढता है और यदि विरोध मे कुछ हू कहती तो वे मनोवृत्तियाँ तन जाती हैं) ।

विरहिणी चेतना कहती है—हे स्वामिन् ! मेरे मन मे तो आपके सबध की ही बाते आती है। मै आपकी याद जरा भी भूलती नही हू। आपके बिना आपकी बाते किसके आगे–सामने जाकर कहू! सुन्दर और पतित दुष्टो को (पतित करने वाली मनो वृत्तियो को) अपने सामने जब देखती हू तो उनके सम्मुख अपना रहस्य कैसे खोलू ? (चेतन की जब सम्यक्त्व दृष्टि हो तभी मैं उससे अपना रहस्य कह सकती हू) ॥४॥

हे स्वामिन् आप तो घट-घट के अन्तरयामी हैं किन्तु मै तो अपने मे आपके दर्शन कर पाती ही नही हू। जब मै अपने मे देखने लगती हू तो आप कही नजर ही नही आते है। मै तो आपको गुणमय मानती हू—ज्ञान दर्शनादिमय मानती हू । वे गुण मुझे कही नजर नही आते है ॥५॥

हे नाथ ! कोई मुद्दत बताकर जाते तो मैं आपकी सतोप से तीक्षा करती—राह देखती रहती किन्तु आपने मुद्दत-समय की

अवधि भी नही वताई इससे मैं विलापात करती हू । (चौथे गुण-स्थान से प्रथम गुणस्थान मे जाकर चौथे मे आने का कोई निश्चित समय नही है, अत चेतना—सुमति विलापात करती है) मेरी इस निराधार दशा को देख कर हे आनद के समूह स्वामी ! आप जल्दी से जल्दी पधारो जिससे मेरे मन की आशा पूर्ण हो। (चेतन मिथ्यात्व त्यागकर सम्यक्त्वी होवे और क्षपक श्रेणी चढ कर शुद्धबुद्ध बने तो मेरी सब आशाये—अभिलाषाये पूण हो) ॥५॥

मदन विजय ८९ राग–सूरति टोडी

प्रभु तो सम अवर न कोई खलक मे ।
हरि हर ब्रह्मा विगूते सो तो, मदन जीत्यो तैं पलक मे ॥प्रभु०॥१॥
ज्यो जल जग मे अगन बुझावत, वडवानल सो पीये पलक मे ।
'आनदघन' प्रभु वामारे नदन, तेरी हाम न होत हलक मे ॥प्रभु०॥२॥

(८९) यह पद मुद्रित प्रतियो मे ८२वा पद है। श्री आनदघनजी की चौवीसी प्रसिद्ध है। इस चौवीसी मे उनके २२ही पद कहे जाते हैं। जिस शैली मे चौवीसी के पद हैं। इस पद मे वह शैली नही है। अतः यह पद उनका मानने मे बाधा उपस्थित है। सभव है यह पद किसी अन्य जैन कवि का हो और आनदघनजी के नाम पर चढ गया हो।

शब्दार्थ—अवर = दूसरा। खलक मे = ससार मे। विगूते = असम-जस मे डाल दिया, बुद्धि भ्रष्ट करदी। अगन = अग्नि। वडवानल = समुद्र की आग। हाम = हिम्मत, शक्ति हामी, स्वीकृति। हलक मे = कठ मे। तेरी····हलक मे = तू अनिर्वचनीय है।

अर्थ—हे अश्वसेन राजा और वामा देवी के पुत्र पार्श्वनाथ प्रभो ! आपकी बराबरी करनेवाला इस ससार मे दूसरा कोई भी

नही है। विष्णु, महादेव और ब्रह्मा ये तीनो महान् देव कहे जाते है। इन तीनो महान् देवो को कामदेव ने धर दबाया, भ्रष्ट कर दिया अर्थात् सरस्वती जो ब्रह्मा की पुत्री कही जाती है, उसे देखकर ब्रह्मा कामातुर हो गये, विष्णु लक्ष्मी के सहवास मे सदा रहते हैं और महादेव भीलनी का रूप देखकर मोहित हो गये। इस प्रकार तीनो महान् देवो को कामदेव ने भ्रष्ट कर दिया। उस कामदेव को आपने हे प्रभो! एक क्षणमात्र मे विजय कर लिया—जीत लिया ॥१॥

ससार मे जिस प्रकार अग्नि को जल—पानी शमन कर देता है—बुझा देता है और अग्निशामक जल को बडवानल एक क्षण मे पी जाता है इसी प्रकार आपने भी कामाग्नि को पी लिया है—शमन कर लिया है। आनदघनजी कहते है—हे वामा देवी के पुत्र पार्श्वनाथ भगवान! आपकी शक्ति का वर्णन कठो से नही कहा जा सकता है अर्थात् आपकी काम विजय शक्ति अनिर्वचनीय है। अर्थात् आपने जो ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया है उसका वर्णन वाणी से नही किया जा सकता है, वह अनिवचनीय है ॥२॥

बिरह व्यथित उद्गार ९० राग—मालसिरी

वारे नाह सग मेरो यूंही जोबन जाय।
ए दिन हसन खेलन के सजनी, रोते रैन विहाय ॥वारे०॥१॥
नग भूषण सें जरी जातरी, मो तन कछु न सुहाय।
इक बुद्धि जीय मे ऐसी आवत है, लीजैरी विष खाइ ॥वारे०॥२॥
ना सोवत है लेत उसासन, मनही मे पिछताय।
योगिनी हुय कै निकसू घर तैं 'आनदघन' समजाय ॥वारे०॥३॥

(९०) मुद्रित प्रतियो का यह पद ३६वाँ है। भाषा-शैली श्री आनदघनजी की भाषा शैली से भिन्न होने से शकास्पद है।

शब्दार्थ—वारे = वाल, छोटे। रैन = रात्रि। विहाय = व्यतीत होती है। नग भूषण = आभूषण।

अर्थ –शुद्ध चेतना अपनी सखी समता से कह रही है–हे सखी ! छोटे पति के साथ (बालभाव छद्मस्थ अवस्था वाले चेतन के साथ) मेरा यह यौवन व्यर्थ ही जा रहा है। यह समय तो—यौवनावस्था तो हमने खेलने मौज-मजा करने के दिन है किन्तु पति के छोटे होने के कारण मेरी रात्रि तो रोते रोते ही व्यतीत होती है। अर्थात् यौवन अवस्था रूप धर्म साधनाकाल तो हमने-खेलने रूप ज्ञान ध्यान तप आदि करने का समय है। किन्तु यह समय चेतन प्रमाद-कषायो मे व्यतीत कर रहा है। उस दुख से दुखित मेरी शांति रूप रात्रि रोते हुये वियोग मे व्यथित व्यतीत हो रही है ॥१॥

क्षमा, शील, संतोष आदि रत्नो से जटित व्रत रूप आभूषण चेतन स्वामी के बालभाव मे होने के कारण, अच्छे नही लगते है—व्यर्थ हो जाते है। ऐसी अवस्था से तो (चेतन के स्व–भाव अवस्था मे नही आने से) मेरे मन मे ऐसी आती है कि इस दुख से छुटकारा पाने के लिये विष पान करलू ? ॥२॥

हे सखी ! मुझे सोना भी नसीब नही है। स्वामी के बालभाव मे दुखित निश्वासे डालती रहती हू और मन ही मन पश्चात्ताप करती रहती हू । स्वामी चेतनराज पर-भाव दशा त्यागकर स्व–भाव दशा मे नही आ रहे है। यह दुख मुझे बहुत बडा है। सखी ! उन आनंद के घर चेतनराज को समझाओ, नही तो मै योगिनी बन कर घर से निकल जाऊँगी। कुछ भी करने योग्य नही रहूगी ॥३॥

सच्ची लगन **९१** **राग–ईमन**

लागी लगन हमारी, जिनराज सुजस सुन्यो मैं ॥लागी०

काहूके कहे कबहू नहि छूटे, लोकलाज सब डारी।

जैसे ॥ अमल करत समे, लाग रही ज्यू खुमारी ॥जिन०॥१॥

जैसे योगी योग ध्यान मे, सुरत टरत नहि टारी ।
तैसे 'आनदघन' अनुहारी, प्रभु के हूँ बलिहारी ।।जिन०।।२।।

(९१) मुद्रित प्रतियो मे इस पद की सख्या ८४वी है। यह पद शकास्पद है, क्योकि इस पद की भाषा-शैली आनदघनजी की भाषा-शैली भिन्न है।

पाठान्तर—कबहू = कबहो (बु)। नहि = न (बु) टारी = मारी॥

शब्दार्थ—लगन = दृढ प्रीति। अमली = अफीम खाने वाला, नशाबाज अमल = अफीम खाना। समे = समय। खुमारी = नशे का प्रभाव। सुरत = स्मरण की तल्लीनता। टरत = टालने प भी, दूर करने पर भी। अनुहारी = अनुरूप, समान, अनुकरण करने वाला, अनुसरण करने वाला।

अर्थ—हे जिनराज! हे जिनेश्वर देव! मैने जब से आपक सुयश सुना है—आपकी विषय-कषायो की विजय और मैत्री प्रमोद कारुण्य तथा मध्यस्थ भावना के सबध मे सुना है तब से ही मेरी दृढ प्रीति आप मे लग गई है।

यह आप मे लगी हुई मेरी लगन किसी के कहने से भी नही छूट सकती है। इस आपकी प्रीति के पीछे मैने सब लोक लज्जा का त्याग कर दिया है। जिस प्रकार अफीम का नशा करने वाले पर नशा करते समय, नशे का प्रभाव बढता जाता है, उसी प्रकार मेरी लगन आप मे बढती जा रही है।।१।।

जिस प्रकार योग मुद्रा मे ध्यानस्थ योगी की स्मर्ण मे लगी तल्लीनता दूर करने पर भी दूर नही होती है, उसी प्रकार आनदघन प्रभु जिनेश्वर देव मे लगी हुई मेरी लगन (दृढ प्रीति) अमली और योगी की तल्लीनता की अनुसरण करने वाली है। जिस आनद की वर्षा करने वाले प्रभु मे मेरी लगन लगी हुई है उस प्रभु की मै बार-

वार वलिहारी हूँ अर्थात् मैं उन पर आत्मोत्सर्ग करता हूँ। उनके अनुरूप बनना चाहता हूँ ॥८॥

बालपति एवं स्वार्थी कुटुम्ब ९२ राग-धनाश्री

अरी मेरो नाहेरो अनिवारो, मै ले जोबन कित जाऊं ।
कुमति पिता बंभना अपराधो, नउवा है वजमारो ॥अरी०॥१॥
भलो जानि के सगाई कीनी, कौन पाप उपजारो ।
कहा कहिये इन घर के कुटुम्ब ते, जिन मेरो काम बिगारो
॥अरी०॥२॥

(९२) यह पद मुद्रित प्रतियों में ९६वीं संख्या पर है। इस पद में आनन्दघनजी का नाम नहीं है। भाषा और शैली भी भिन्न है अतः शंकास्पद है। इस पद को श्री कापडियाजी भी शंकास्पद मानते हैं।

पाठान्तर—नउवा है वजमारो = न उवाहै व जमरो (क), नउ वाहै व जमारो (ख)।

शब्दार्थ—नाहरो = पति, प्रथम गुणस्थान वाला चेतन। अनिवारो = अत्यन्त छोटा। कित = कहाँ। नउवा = नाई। वजमारो = वज्र गिरे सिर पर। सगाई = सबध। उपजारो = उत्पन्न हुआ, प्रकट हुआ। बिगारो = बिगाड दिये, नष्ट कर दिये।

अर्थ – अन्तरमुखी शुद्ध चेतना कह रही है-अरी सखी समता! मेरा पति तो अत्यन्त ही छोटा है अर्थात् प्रथम गुणस्थान मे ही है। मैं अपनी यह यौवन अवस्था (धर्म साधन का समय) लेकर कहाँ जाऊँ? मेरे पिता (सम्यक्त्व) की बुद्धि पर तो पडदा छा गया। वह सबध कराने वाला पुरोहित ही अपराधी है। उस नाई के सिर पर वज्र गिरे जिसने यह सबध जुडाया है—मिलाया है। अर्थात् सम्यक्त्व

से च्युत करने वाले विचार तथा शुभ अध्यवसायो से दूर हटाने वाली वृत्तियो पर वज्र गिरो जिन्होने मेरा सबध अशुद्ध चेतन से कराया है ॥१॥

मेरे पिता सम्यक्त्व और माता श्रद्धा ने तो चेतन को भला व्यक्ति (अनत ज्ञान दर्शन चारित्र का धनी) समझ कर ही सबध किया था किन्तु अब यह कौनसा पाप उदय मे आया है। अशुद्ध चेतन के परिवार वाले लोगो (कषायादि) को क्या कहा जाये—क्या उपालभ दिया जावे, इन्होने तो मेरा सारा ही कार्य बिगाड दिया है। अर्थात् मुझे चेतन से मिलने ही नही दिया जाता है। मै चेतन को अपनी ओर खेचती हू—शुद्धता की ओर (ज्ञान दर्शन चारित्र तप की ओर) लाना चाहती हू किन्तु ये दुष्ट कुटुम्बी (कषायादि) चेतन को छोडते ही नही है। इस दुख से व्यथित हो रही हू। चेतन को शुद्ध बुद्ध बनाने वाली क्षमता रूप जवानी को लेकर मै कहाँ जाऊँ ? ॥२॥

ऋषभ देव स्तुति ९३ राग–आसावरी

मनु प्यारा मनु प्यारा रिखभदेव प्रभु प्यारा ॥
प्रथम तीर्थंकर प्रथम नरेसर, प्रथम यतिव्रत धारा ॥रिखभ०॥१॥
नाभिराया मरुदेवी को नदन, जुगला धर्म निवारा ॥रिखभ०॥२॥
केवल लही मुगते पोहोता, आवागमन निवारा ॥रिखभ०॥३॥
'आनदघन' प्रभु इतनी विनती, आ भव पार उतारा ॥रिखभ०॥४॥

(९३) यह पद मुद्रित प्रतियो मे १०१वा पद है। भाषा शैली की भिन्नता होने से यह पद शकास्पद है। इस पद को श्री कपाडिया जी भी शकास्पद मानते हैं।

शब्दार्थ—मनु = मन को। नरेसर = राजा, नरेश्वर। तीर्थंकर = तीर्थ—साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका तीर्थों की स्थापना करने वाले। यतिव्रत =

अर्थ—मेरे मन को भगवान ऋषभदेव बहुत ही प्यारे लगते है।

वे भगवान ऋषभदेव सबसे प्रथम होने वाले प्रथम तीर्थंकर (तीर्थों की स्थापना करने वाले) है। सबसे प्रथम होने वाले राजा है। उन्होने ही सर्वप्रथम साधु व्रतो को धारण किया है, स्वीकार किया है ॥१॥

वे ऋषभदेव भगवान महाराजा नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र है। उन्होने ही एक साथ जोडा (पुत्र पुत्री) उत्पन्न होने के नियम का निवारण किया है ॥२॥

भगवान ऋषभदेव ने साधु व्रतो का पालन कर केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की और ससार में आने-जाने का क्रम दूर किया है ॥३॥

आनदघनजी प्रार्थना करते है हे ऋषभदेव भगवान ! मेरी इतनी ही विनय है कि मुझे इस ससार के पार उतार दो। मुझे भी जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा दिला दो ॥४॥

निजमन उद्बोधन ९४ राग—केरबो

प्रभु भजले मेरा दिल राजी रे ॥प्रभु०॥

आठ पहोर की साठज घडियां, दो घडिया जिन साजी रे ॥प्रभु०॥१॥

दान पुण्य कछु धर्म करले, मोह माया कू त्याजी रे ॥प्रभु०॥२॥

"आनदघन' कहे समज समज ले, आखर खोवेगा बाजी रे॥प्रभु०॥३॥

अर्थ—मेरे मन को भगवान ऋषभदेव बहुत ही प्यारे लगते हैं।

वे भगवान ऋषभदेव सबसे प्रथम होने वाले प्रथम तीर्थंकर (तीर्थों की स्थापना करने वाले) हैं। सबसे प्रथम होने वाले राजा हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम साधु व्रतो को धारण किया है, स्वीकार किया है ॥१॥

वे ऋषभदेव भगवान महाराजा नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र हैं। उन्होंने ही एक साथ जोडा (पुत्र पुत्री) उत्पन्न होने के नियम का निवारण किया है ॥२॥

भगवान ऋषभदेव ने साधु व्रतो का पालन कर केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की और ससार में आने-जाने का क्रम दूर किया है ॥३॥

आनदघनजी प्रार्थना करते हैं हे ऋषभदेव भगवान ! मेरी इतनी ही विनय है कि मुझे इस ससार के पार उतार दो। मुझे भी जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा दिला दो ॥४॥

निजमन उद्‌बोधन — ९४ — राग–केरबो

प्रभु भजले मेरा दिल राजी रे ॥प्रभु०॥

आठ पहोर की साठज घडियां, दो घडिया जिन साजी रे ॥प्रभु०॥१॥

दान पुण्य कछु धर्म करले, मोह माया कू त्याजी रे ॥प्रभु०॥२॥

"आनदघन' कहे समज समज ले, आखर खोवेगा बाजी रे॥प्रभु०॥३॥

(९४) यह पद मुद्रित प्रतियो मे १०३वा पद है। यह पद भी भाषा-शैली भिन्न होने से शकास्पद है। श्री कापडियाजी भी इसे शकास्पद मानते है।

पाठान्तर—साठज = चोसठ (का)।

अर्थ—हे चेतन ! हे मेरे मन ! तू प्रभु जिनेश्वरदेव का भजन कर, स्मर्ण कर, इससे—स्मर्ण करने से प्रसन्नता प्राप्त होगी।

दिन-रात के आठ प्रहर होते है और आठ प्रहर मे आठ घडिया (एक घडी २४ मिनिट की) होती है। इन साठ घडियो मे से कम से कम दो घडी (एक मुहुर्त) तो तू श्री जिनेश्वरदेव की भक्ति-भावना मे लगा ॥१॥

अरे चेतन मेरे ! मोह माया को छोड कर—ससार के भ्रमजाल को छोडकर—कुछ दान-पुण्य कार्य और आत्म शुद्धि के लिये धर्म कार्य करले ॥२॥

आनदघनजी कहते है—हे चेतन ! अच्छी तरह सोच विचार करले, यदि तूने दान पुण्य और धर्म नही किया तो अन्त मे मानव भव की बाजी खो बैठेगा—मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जायेगा ॥३॥

श्री आनदघनजी के पदो मे अन्य कवियो के वे पद जो 'आनदघन' नाम की छाप के है और हमारी प्रतियो मे भी है। यहाँ मूल मात्र दिये जाते है—

दिव्य प्रकाश मे भवान्तर दर्शन ९५ राग—मारू

व्रजनाथ से सुनाथ बिन हाथोहाथ बिकायो।
बीचको कोउ जन कृपाल, सरन नजरि नायो ॥टेक॥
जननी कहु जनक कहु, सुत सुता कहायो।

भाई कहु भगिनी कहु, मित्र शत्रु भायो ।।व्र०।।१।।

रमणी कहु रमण कहु, राउ रज तुलायो ।
सेवक पति इन्द चन्द, कीट भृ ग गायो ।।व्र०।।२।।

कामी कहु नामी कहु, रोग भोग मायो ।
निसपति धरि देह गेह विविध विधि घरायो ।।व्र०।।३।।

विधि निषेध नाटक धरि, भेष ठाट छायो ।
भाषा षट् वेद चारि, साग सुध पठायो ।।व्रज०।।४।।

तुम्ह से गजराज पाइ, गर्दभ चढि धायो ।
पायस सुगृह को विसारि, भीख नाज खायो ।।व्रज०।।५।।

लीला मुँह टुक नचाइ, कहौ जु दास आयो ।
रोम रोम पुलकित हु, परमलाभ पायो ।।व्रज०।।६।।

(९५) पाठान्तर—विन = विण (आ) । हाथो हाथ = हाथ हाथ (आ), हाथा हाथ (उ) । जन = जिन (उ) । नजरि = नजर (अ), निज (उ) । कहु = कहौ (अ), कहू (उ) । रमण = रमणि (आ) । राउ = राव (अ), रहू (उ) । मायो = गमायो (उ) । विधि = विध (आ) । नाटक = नाटिक (उ) । ठाट = ठाठ (अ) = वाट (उ) । सुगृह = सु गको (उ) । लीला = जीला (उ) भुँह = मुँह (आ) । जु = ज (उ) । दाम = दीस या यो (उ) । पुलकित हु = पुलकित कहु (आ),

शब्दार्थ—जन = भक्त व्यक्ति । जननी = माता । जनक = पिता । सुत = पुत्र । सुता = पुत्री । भगिनी = वहिन । भायो = हुआ । रज = मिट्टी । तुलायो = तुलना किया गया । कीट = कीडा । भृ ग = भवरा । मायो = समाया हुआ, लिप्त । निसपति = सम्बन्ध, विवाह । गेह = घर । धरायो = पकडा गया, वद्ध हुआ, धारण किया । ठाट = वनाव-शृ गार, तडक भडक । भाषा षट = छै भाषा । सस्कृत, महाराष्ट्री, सौरशेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश ।

साग = स्वाग । सुध = शुद्ध । पठायो = भेजा । गजराज = हाथी । गदभ = गधा । पायस = खीर । बिसारि = भूलकर नाज = अन्न । लीला = कौतुक से । मुँह = मोहे । टुक = थोडा ।

पद स० ९५वा—'ब्रजराज मे ' 'अ' प्रति मे ११वा, 'आ' मे ९वा और 'उ' मे १८वा पद है । 'इ' प्रति मे यह पद नही हैं ।

पतित की पुकार ९६ राग--झिंझोरी दादरा

हरि पतित के उधारन तुम्ह, कैसो पावन नामी ।
मोसो तुम्ह कब उधार्‌यो, क्रूर कुटिल कामी ॥ह०॥१॥

और पतित केइ उधारे, करनी बिन करता ।
एक काहू नाम लेहु झूँठे विरद धरता ॥ह०॥२॥

करणी करि पार भये, बहुत निगम साखी ।
सोभा दई तुम्ह को नाथ, आपनी पत राखी ॥ह०॥३॥

निपट अगति पापकारी, मोसो अपराधी ।
जानु जो सुधारि होऽब, नाव लाज साधी ॥ह०॥४॥

और को उसापक हौ, कैसे के उधारौं ।
दुविधा यह रावरी न, पावरी विचारौं ॥ह०॥५॥

गई सो गई नाथ, फेरि नई कीजै ।
द्वारि पर्‌यो ढींगदास, आपनो करि लीजै ॥ह०॥६॥

दास को सुधारि लेहु, वहुत कहा कहीयै ।
'आनदघन' परम रीति, नाव को निवहियै ॥ह०॥७॥

पद स० ९६वे 'हरि पतितन—' 'अ' प्रति मे १०वाँ, 'आ' प्रति मे १०वा, 'इ' प्रति मे ७०वा और 'उ' प्रति मे ८८वाँ

ये दोनों पद व्रज भाषा में हैं। श्री आनंदघनजी की भाषा 'व्रज' नहीं है, राजस्थानी है। दोनों पद जैन मान्यता से मेल नहीं खाते हैं। जैन दर्शन ईश्वर को सुख दुःख देने वाला, पाप-पुण्य का फल देने वाला नहीं मानता है। आत्मा स्वयं के सुख-दुख की कर्त्ता है, पाप-पुण्य की भोक्ता है और स्वयं के ही पुरुषार्थ से इनसे छुटकारा प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध बन जाती है, ऐसा मानता है। इन दोनों पदों में ही 'ईश्वर' से भक्त प्रार्थना कर रहा है कि मुझ पापी का भी उद्धार अपने नाम के विरुद्ध को ध्यान में

रखकर कर दीजिये। श्री ग्रानदघनजी के किसी भी पद मे इस तरह का किंचित भी सकेत नही है और न जैन दर्शन की यह मान्यता है कि ईश्वर ही पापियो का उद्धार करता है। ग्रत' ये दोनो पद आनंदघनजी के नही हो सकते हैं। ये दोनो पद किसी व्रज भाषा के टकसाली भक्त कवि के हैं। बहुत सभव है ये दोनो पद महात्मा सूरदासजी के हो क्योकि इन की शैली ग्रौर भाषा उन से मिलती है। सूरसागर बहुत वडा ग्र थ है उसमे से खोज निकालना इस समय सभव नही है। फिर पुराने सस्करण हर जगह उपलब्ध भी नही है। किन्तु इसमे सदेह नही कि ये पद आनदघनजी के नही हैं।

गुरुगम मताग्रह व ग्राशाजय ९७ राग--ग्राशावरी

ग्रवधू राम नाम जग गावै, बिरला ग्रलख लखावै ॥

मतवाला तो मत मे माता, मठवाला मठ राता।
जटा जटाधर पटा पटाधर, छता छताधर ताता ॥ग्रवधू०॥१॥

ग्रागम पढि ग्रागमधर थाके, मायाधारी छाके।
दुनियाधार दुनी सो लागे, दासा सब ग्रासा के ॥ग्रवधू०॥२॥

वहिरातम मूढा जग जेता माया के फद रेता।
घट ग्रन्तर परमातम भावै, दुरलभ प्राणी तेता ॥ग्रवधू०॥३॥

खगपद गगन मीन पद जल मे, जो खोजे सो बोरा।
चित 'पकज' खोजै सो चीन्है, रमता ग्रतर भँवरा ॥ग्रवधू०॥४॥

पाठान्तर—मतवाला = आ मतवाला (उ)। पटाधर = दटाधर (उ)। छता = राजा (उ)। माया = माघा (उ)। दुनी = दुनियाँ (उ)। रेता = राता (उ)। घट = घर (उ)। परमातम = वरमातम (उ)।

दुरलभ = दुरल (आ), दुर्लभ (अ,उ)। खोजै = खोलै (आ), चोले (उ)। चीन्है = चीने (उ)। अतर = आनद (इ)। भँवरा = भौंरा (इ), अतर रनता भमरा रे (उ)।

शब्दार्थ—विरला = कोई। अलख = अलक्ष (ब्रह्म) मे ध्यान लगाने वाला। राता = अनुरक्त। पटाधर = सिहासन वाले। छताधर = छत्र धारन करने वाले। ताता = तप्त। दुनी = ससार। रेता = रहता है। तेता = ऐसे। गगन = आकाश। वोरा = पागल।

यह पद 'अ' प्रति मे ८१वा, 'आ' प्रति मे २८वा, 'इ' प्रति मे २०वा, और 'उ' प्रति मे १३वाँ तथा मुद्रित प्रतियो २७वा पद है। मुद्रित प्रतियो मे और 'इ' प्रति मे आनदघनजी का पूरा नाम नही है। केवल 'आनद' नाम है। अ, आ, और उ प्रतियो मे आनदघनजी का नाम नही है और न आनद शब्द ही है, इसके स्थान पर 'अ तर' शब्द है जो समीचीन लगता है। अत यह पद आनदघनजी का नही है। यह पद, 'पकज' नामधारी कवि का है। जैसा कि पद की अ तिम पक्ति मे "चित 'पकज' खोजै" मे स्पष्ट दिया है। सग्रहकर्त्ता ने 'आनद' नाम देखकर ही इस पद को आनदघनजी का समझने की भूल की है। आनदघनजी के किसी पद मे भी 'आनद' शब्द अपने नाम के लिये उपयोग नही किया है।

श्री कृष्ण के रूप मे इष्ट दर्शन — ९८ — राग—सोरठ मुलतानी, नट रागिणी, सहेली

साइडा दिल लगा वसीवारे सु, प्राण पियारे सुं ॥
मोर मुकट मकराकृत कु डल, पीतावर पटवारे सु ॥सा०॥१॥
चद्र चकोर भये प्रान पपइया, नागरि नद दुलारे सु ।
इन सखा के गुण ग्रधप गावै, 'आनंदघन' उजियारे सु ॥सा०॥२॥

(९८) पाठान्तर—साइडा = सारा (क वु)। पपइया = पपैया (क), पपईया (वु)। दुलारे = डुलारे (वु)। सखा = सखी (क वु)।

शब्दार्थ—मोरमुकट = मयूर के पखो का ताज। मकराकृत = मगर के आकार का। कुडल = कान मे पहिनने का एक जेवर। पीताम्बर = पीले वस्त्र। पटवारे = वस्त्र वाले। नागरि = चतुर। ग्र धप = गधर्व।

यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति मे ही है जिमकी सख्या ६ है और मुद्रित प्रतियो मे ५३ वी सख्या पर है। जैन महात्मा के लिये श्री कृष्ण का उपासक होना असभव है। इस पद की भाषा व्रज है और शैली आनदघनजी के पदो की शैली से मेल नही खाती है। अत यह पद जैन महात्मा आनदघनजी का नही है। 'आनदघन' नामक एक भक्त कवि और हुये है जिनकी पदावली तथा कुछ और ग्र थो को प्रकाश मे श्री विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र 'घनानद और आनदघन' नामक ग्र थ मे ला चुके है। इस पुस्तक के पृ० २६१ पर पद स० २८६ ऊपर के पद से कुछ कुछ मिलती है। अत यह पद उन भक्त कवि आनदघनजी का मान लेने मे कोई आपत्ति दृष्टिगत नही होती। पूरा पद इस प्रकार है—
राग—ईमनकाफी

मन लाग्यौ री वसीवारे सो, व्रजमोहन छवि गतिवारे सो।
दृग चकोर भए प्रान पपीहा, आनदघन उजियारे सो॥

सग्रहकर्त्ता ने तो आनदघन का नाम देख कर ही जैन महात्मा आनदघन का पद समझकर आनदघन जी के पदो मे समिलित कर दिया किन्तु वास्तव मे यह पद कोई पक्ति किसी की, कोई पक्ति किसी की लेकर जन मुख पर चढ गया प्रतीत होता है। इस पद' मे सारा दिल लागा वसीवारेसु' तो "मन लाग्योरी वसीवारे सो" का प्रतिविम्ब है। "मोर मुकट आदि पद किसी अन्य कवि के पद से लिये हुये प्रतीत होते है। अतिम पक्ति "आनदघन उजियारे सु" भक्ति कवि आनदघन से मिलती ही है अत यह पद जैन महात्मा आनदघनजी का नही होसकता।

प्रिया प्रालाप ९९ राग–कान्हरो

भमरा किन गुन भयो रे उदासी ।
पख तेरी कारी मुख तेरा पीरा, सब फूलन को वासी ।।१।।
सब कलियन को रस तुम लीनो, सो क्यू जाय निरासी ।
'ग्रानदघन' प्रभु तुम्हारे मिलनकु जाय करवत ल्यू काशी ।।२।।

(९९) पाठान्तर—तुम्हारे = तुमरे (ङ उ क बु) भमरा – यह शब्द अन्य प्रतियो मे 'उदासी' शब्द के पश्चात है।

शब्दार्थ –भया = हुआ । वासी = बसने वाला । निरासी – निराश, अनासक्त ।

यह पद हमारी 'अ' प्रति मे २८ वा, 'ङ' प्रति मे ७७ वा, 'उ' प्रति मे ८१ वा तथा मुद्रित प्रतियो मे १०६ वा पद है। इस पद की भाषा की ओर दृष्टि दे तो यह भाषा आनदघनजी की चौबीसी और उनके अनेक पदो से नही मिलती है। यह भाषा तो निर्गुण पथी कबीर आदि की भाषा जैसी है। शैली भी वैसी ही है। साथ ही एक बात इस पद मे और है। इस पद की अतिम पक्ति मे 'कासी करवत' लेने का उल्लेख जैन दर्शन के अनुकूल नही है। जैन दर्शन इस प्रकार की आत्महत्या को प्रश्रय नही देता है। इस प्रकार की क्रियाये जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल है। आनदघनजी जैसे विद्वान वैराग्य भावना से ओतप्रोत सत की लेखनी से इस प्रकार आत्महत्या को मुक्ति-साधन प्रचारित किया जाना असभव है। अत यह पद आनदघनजी का नही है।

अब इससे आगे वे पद दिये जा रहे है जो हमारी किसी प्रति मे नही है और मुद्रित प्रतियो मे है किन्तु वे पद आनदघनजी के नही है, अन्य कवियो के है।

शब्दार्थ—मोरमुकट = मयूर के पखो का ताज। मकराकृत = मगर के आकार का। कु डल = कान मे पहिनने का एक जेवर। पीताम्बर = पीले वस्त्र। पटवारे = वस्त्र वाले। नागरि = चतुर। ग्र धप = गधर्व।

यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति मे ही है जिमकी सख्या ६ है और मुद्रित प्रतियो मे ५३ वी सख्या पर है। जैन महात्मा के लिये श्री कृष्ण का उपासक होना असभव है। इस पद की भाषा व्रज है और शैली आनदघनजी के पदो की शैली से मेल नही खाती है। अत यह पद जैन महात्मा आनदघनजी का नही है। 'आनदघन' नामक एक भक्त कवि और हुये हैं जिनकी पदावली तथा कुछ और ग्र थो को प्रकाश मे श्री विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र 'घनानद और आनदघन' नामक ग्र थ मे ला चुके है। इस पुस्तक के पृ० २६१ पर पद स० २८६ ऊपर के पद से कुछ कुछ मिलती है। अत यह पद उन भक्त कवि आनदघनजी का मान लेने मे कोई आपत्ति दृष्टिगत नही होती। पूरा पद इस प्रकार है—
राग–ईमनकाफी

मन लाग्यौ री वसीवारे सो, व्रजमोहन छवि गतिवारे सो।
दृग चकोर भए प्रान पपीहा, आनदघन उजियारे सो॥

सग्रहकर्त्ता ने तो आनदघन का नाम देख कर ही जैन महात्मा आनदघन का पद समझकर आनदघन जी के पदो मे समिलित कर दिया किन्तु वास्तव मे यह पद कोई पत्ति किमी की, कोई पक्ति किसी की लेकर जन मुख पर चढ गया प्रतीत होता है। इस पद' मे सारा दिल लागा वसीवारेसु' तो "मन लाग्योरी वसीवारे सो" का प्रतिविम्ब है। "मोर मुकट आदि पद किसी अन्य कवि के पद से लिये हुये प्रतीत होते है। अतिम पक्ति "आनदघन उजियारे सु" भक्ति कवि आनदघन से मिलती ही है अत यह पद जैन महात्मा आनदघनजी का नही होसकता।

प्रिया प्रालाप ९९ राग—कान्हरो

भमरा किन गुन भयो रे उदासी ।
पख तेरी कारी मुख तेरा पीरा, सब फूलन को वासी ॥१॥
सब कलियन को रस तुम लीनो, सो क्यू जाय निरासी ।
'आनदघन' प्रभु तुम्हारे मिलनकु जाय करवत ल्यू काशी ॥२॥

(९९) पाठान्तर—तुम्हारे = तुमरे (उ उ क बु) भमरा—यह शब्द अन्य प्रतियो म 'उदासी' शब्द के पश्चात है ।

शब्दार्थ -भयो = हुआ । वासी = बसने वाला । निरासी – निराश, अनासक्त ।

यह पद हमारी 'अ' प्रति मे २८ वा, 'ट' प्रति मे ७७ वा, 'उ' प्रति मे ८१ वा तथा मुद्रित प्रतियो मे १०६ वा पद है । इस पद की भाषा की ओर दृष्टि दे तो यह भाषा आनदघनजी की चौबीसी और उनके अनेक पदो से नही मिलती है । यह भाषा तो निर्गुण पथी कबीर आदि की भाषा जैसी है । शैली भी वैसी ही है । साथ ही एक बात इस पद मे और है । इस पद की अतिम पक्ति मे 'काशी करवत' लेने का उल्लेख जैन दर्शन के अनुकूल नही है । जैन दर्शन इस प्रकार भी आत्महत्या को प्रश्रय नही देता है । इस प्रकार की क्रियाये जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल है । आनदघनजी जैसे विद्वान वैराग्य भावना से ओतप्रोत सत की लेखनी स इस प्रकार आत्महत्या को मुक्ति-साधन प्रचारित किया जाना असभव है । अत यह पद आनदघनजी का नही है ।

अब इससे आगे वे पद दिये जा रहे है जो हमारी किसी प्रति मे नही है और मुद्रित प्रतियो मे है किन्तु वे पद आनदघनजी के नही है, अन्य कवियो के है ।

१०० राग–सारंग या आशावरी

अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारण मिथ्यात दियो तज क्युं कर देह धरेंगे ॥अब०॥१॥

राग दोस जग बध करत हैं, इन को नास करेंगे।
मर्‌यो अनंत काल ते प्राणी, सो हम काज हरेंगे ॥अब०॥२॥

देह निवासी हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे है निखरेंगे ॥अब०॥३॥

मर्‌यो अनत बार बिन समझे अब सुख दुख विसरेंगे।
' दघन' निपट निकट अक्षर दो, नहि समरे सो मरेंगे ॥अब०॥४॥

पाठान्तर—सारग या आशावरी=आसावरी (द्या)। क्यु =क्यों (द्या)। कर=करि (द्या)। मर्‌यो 'हरेंगे=उपजै मरै काल तें प्रानी, ताते काल हरेंगे (द्या), यह पक्ति द्यानतरायजी के पद मे दूसरे पद की पहिली पक्ति है और दूसरी पक्ति, इस पद की पहिली पक्ति है। हूँ=मै (द्या)। अपनी गति=भेद ज्ञान (द्या)। मर्‌यो=मरे (द्या)। सुख दुख= सब सुख (द्या)। आनदघन=द्यानत (द्या)। नहि''' मरेंगे=विन सुमरे सुमरेंगे गे (द्या)।

यह पद द्यातनरायजी का है। द्यातन विलास मे पद सख्या ८८ पर है। सग्रहकर्त्ता के दोप से आनदघनजी के पदो मे सम्मिलित कर लिया गया है। यह पद श्री भीमसिंह माणक, श्री कापडियाजी, तथा श्री बुद्धिसागरजी की पुस्तको मे सख्या ४२ पर है। हमारे पास वाली किसी प्रति मे नही है।

१०१ राग–आशावरी

अवधू ऐसो ज्ञान विचारी, वामे कोण पुरुष कोण नारी ॥अवधू०॥

वम्मन के घर न्हाती धोती, जोगी के घर चेली।
कलमा पढ पढ भई रे तूरकडी, तो आप ही आप अकेली ॥अव०॥१॥

ससरो हमारो वालोभोलो, सासू बाल कुमारी।
पियुजी हमारो पोढे पारणीये, तो मै हु झुलावन हारी ॥अव०॥२॥

नहीं हु परणी नही हु कुवारी, पुत्र जणावन हारी।
काली दाढी को मैं कोई नही छोड्यो, तो हजु हु बाल कुमारी
॥अव०॥३॥

अढी द्वीप मे खाट खटूली, गगन ओशीकु तलाई।
धरती को छेडो आभकी पिछाडी, तोय न सोड भराई ॥अव०॥४॥

गगन मडल मे गाय बीआणी, वसुधा दूध जमाई।
सउरे सुनो भाई वलोणू वलोवे, तो तत्व अमृत कोई पाई
॥अवधू०॥५॥

नही जाउ ससरीए ने नहीं जाउ पीयरीए, पीयुजी की सेज बिछाई।
'आनदघन' कहे सुनो भाई साधु, तो ज्योति मे ज्योति मिलाई
॥अवधू०॥६॥

(१०१) शब्दार्थ—विचारी = विचारो। वम्मन = ब्राह्मण। न्हाती धोती = स्नान आदि करती। वालोभोलो = भोला मनुष्य, भद्रीक, सीधासाधा। पियुजी = प्रिय, पति। पोढे = सोते हैं। पारणीये = पालन मे, झूले मे। परणी = विवाहिता। पुत्र = लडका, अहकार। काली दाढी = युवक, कामासक्त। हजु हु = अभी तक। अढीद्वीप = मनुष्य लोक। खाट = पलग। खटूली = शय्या। ओशीकु = तकिया। तलाई = बिछावण। छेडो = धोती। आभ = अकाश। पिछोडी = पछेवडी, ओढने का खादी का वस्त्र।

सोड = मोटी रजाई। तोयन = तोभी। वियाणी = प्रसूता हुई, बच्चा बच्ची दिया। बलूणो = विलोवना, जमा हुआ दही। बलोवे = मथना, बिलोना। सासरिये = ससुराल, पति का घर। पीयरीये = पिता का घर।

यह पद मुद्रित प्रतियो मे किसी मे ९८वा और किसी मे ९९वाँ पद है। इस पद की भाषा सत कवीर की भाषा से मिलती है साथ ही शैली भी। इसके अतिरिक्त "आनन्दघन कहे 'सुनो भाई साधो" इस प्रकार से-आनन्दघनजी ने-प्राप्त पदो मे कही भी-नही लिखा है। यह शब्दावली तो केवल कवीर की है। कवीर ने स्थान स्थान पर अपने पदो मे 'कहत कवीर सुनो भाई साधो' लिखा है। अत यह पद सन्त कवीरदास का है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी के कवीर नामक ग्र थ मे पृ० ३०१ पर—इस पद की प्रथम पक्ति-'अवधू ऐसो ज्ञान विचारी'-पद सख्या ११९ की पक्ति है—"अवधू ऐसा ज्ञान विचार"। इसके आगे की पक्तिया 'कवीर' के पद सख्या ११८ की है। इस पद की पक्तिया है—

'बूझहु पडित, कबहु विचारी, पुरुष अहै की नारी ।
वाम्हन के घर वाम्हनि होती, योगी के घर चेली ॥
कलमा पढि पढि भई तुरकिनी, कलि मे रही अकेली ।
बर नहि वरै व्याह नहि करई, पुत्र जन्म होनि हारी ॥
कारे मूडे एक नहि छाँडै, अब ही आदि कु वारी ।
रहै न मैके जाइ न ससुरे साइ के सग सोवे ॥'

इसी प्रकार और पक्तियाँ किसी दूसरे पद की है। लोक गायको ने "किसी की ई ट किसी का रोडा, भानमती ने कुनवा जोडा" के अनुसार पद को बना कर आनन्दघनकी का नाम रखकर उनका पद प्रसिद्ध कर दिया है। वास्तव मे यह पद आनन्दघनजी का नही है। यह पद कवीरदासजी का है।
— कबीर ग्र थावली पृ० १६६ पद ३२१ वीजक शब्द ४८।

१०२ राग–आशावरी

अवधू वैराग बेटा जाया, याने खोज कुटब सब खाया ।।अवधू०।।

जेणे माया ममता खाई, सुख दुख दोनो भाई ।
काम क्रोध दोनो कुं खाइ, खाई तृष्णा बाई ।।अवधू०।।१।।

दुरमति दादी मत्सर दादा, मुख देखत ही मुआ ।
मगल रूप बधाई बाची, ए जब बेटा हुआ ।।अवधू०।।२।।

पाप पुण्य पडोसी खाये, मान लोभ दोउ मामा ।
मोह नगर का राजा खाया, पीछे ही प्रेम ते गामा ।।अवधू०।।३।।

भाव नाम धर्यो बेटा को, महिमा वरण्यो न जाई ।
'आनन्दघन' प्रभु भाव प्रकट करो, घट घट रहो समाई ।।अवधू०।।४।।

(१०२) शब्दार्थ—जाया = उत्पन्न हुआ, जन्म लिया । याने = इसने । जेणे = जिसने । दुरमति = कुबुद्धि । मत्सर = ईर्षा, गर्व, । दादा दादी = पिता के पिता और मा । मुआ = मर गये, मृत्य को प्रा त हो गये । वाँची = गवाई गई, मागलिक गाने किये । पीछे ही = तत्पश्चात । गामा = चला गया । समाई = व्याप्त ।

यह पद मुद्रित प्रतियो मे १०५वा पद है । यह पद श्री आनन्दघनजी का नही है । महाकवि बनारसीदासजी आगरे वाले के 'बनारसी विलास' में यह पद पृ० २५० पर इस प्रकार है —

मूलन बेटा जायो रे साधो, मूलन, जाने खोज कुटव सब खायो रे
।।साधो।।मूल०।।

जन्मत माता ममता खाई, मोह लोभ दोइ भाई।
काम क्रोध दोइ काका खाये, खाई तृष्णा दाई ।। साधो०।।१।।

पापो पाप परोसी खायो, अशुभ करम दोइ मामा ।
मान नगर को राजा खायो, फैज परो सब गामा ।।साधो०।।२।।

दुरमति दादी ' दादो, मुख देखत ही मूआ ।
मगलाचार वधाये वाजे, जब यो वालक हूओ ।।साधो०।।३।।

नाम धर्‌यो बालक को सूधो, रूप वरन कछु नाही ।
नाम धरते पाडे खाये, कहत 'बनारसी' भाई ।।साधो०।।४।।

पाठकगण स्वय निर्णय करे कि यह पद किसका है ।

१०३ राग–आशावरी

अवधू ! सो जोगी गुरु मेरा, इन पद का करे रे निवेडा ।।अव०।।

तरुवर एक मूल बिन छाया, बिन फूले फल लागा ।
शाखा पत्र नहीं कछु उनकु, अमृत गगने लागा ।।अव०।।१।।

तरुवर एक पछी दौउ बैठे, एक गुरु एक चेला ।
चेले ने जुग चुण चुण खाया, गुरू निरतर खेला ।।अव०।।२।।

गगन मडल मे अधविच कूवा, उहाँ हे अमीका वासा ।
सगुरा होवे सो भर भर पीवे, नगुरा जावे प्यासा ।।अव०।।३।।

गगन मडल मे गउआ बिहानी, धरती दूध जमाया ।
माखन थासो विरला पाया, छासें जग भरमाया ।।अव०।।४।।

धड विनु पत्र, पत्र विनु तु बा, विन जीभ्या गुण गाया ।
गावन वाले का रूप न रेखा, सुगुरू मोही बताया ।।अव०।।५।।

आतम अनुभव विन नही जाने, अ तर ज्योति जगावे ।
घट अन्तर परखे सोही मूरति, 'आनन्दघन' पद पावै ।।अव०।।६।।

(१०३) शब्दार्थ—निवेडा = फैसला, विचार। तरुवर = वृक्ष, पेड। शाखापत्र = टहनियें और पत्ते। गुरु = ब्रह्म। चेला = जीव। जुग = चारा, ससार। गगन = आकाश, ब्रह्माड। अमी = अमृत। सगुरा = सद्गुरुवाले। नगुरा = बिना गुरु वाले, गुण रहित। गउआ = गाय, सात्विक वृत्तिया। माखन = मक्खन, सारतत्व। छासे = छाछ से, निस्सार तत्व। भरमाया = मोहित हो गया। थड = डठल, मूल, जड। तुम्बा = फल विशेष।

यह पद मुद्रित प्रतियो मे ९८वा पद है। पद की भाषा, शैली और भाव अभिव्यक्ति से तो शका उत्पन्न होती है कि यह पद श्रीमदानदघनजी का नही हो सकता। 'घनानद और आनदघन' के सम्पादक श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस पद की टिप्पणी मे इस पद को सत कबीर का लिखा है। उन्होने 'कबीर ग्रथावली पृ० १४३ पर १६५वा पद और बीजक, शब्द २४, पर इस पद का होना लिखा है। हमारे पास उक्त ग्रथ तो है नही, किन्तु कबीर शब्दावली है। उसके पृ० ८४–८५ से हम यह पद नीचे दे रहे हैं—

अवधू सो जोगी गुरु मेरा या पद का करै निवेरा ॥टेर॥

तरवर एक मूल विन ठाढा, विन फूले फल लागे।
साखा पत्र नही कछु वाके, अष्ट कमल दल गाजै ॥१॥

चढ तरवर दो पछी बैठे, एक गुरु एक चेला।
चेला रहा सो चुन चुन खाया, गुरु निरतर खेला ॥२॥

विन करताल पखावज बाजे, विन रसना गुन गावै।
गावन हार के रूप न रेखा, सतगुरु मिलै बतावै ॥३॥

गगन मडल मे उर्ध मुख कुइया, जहाँ अभी को वासा।
सगुरा होय सो भर भर पीवे, निगुरा जाय पियासा ॥४॥

सुन्न सिखर पर गइया वियानी, धीर छीर जमाया।
माखन रहा सो सतन खाया, छाछ जगत भर माया ॥५॥

पछी खोज मीन को मारग, कहै कवीर दोउ भारी ।
अपरम्पार पार पुरुपोत्तम, मूरत की बलिहारी ॥६॥

इस पद मे और ऊपर के 'आनन्दघन पदावली' के पद मे वहुत साम्यता है । केवल इस पद का छठा पद और आनदघन पदावली का छठा पद पृथक-पृथक है । एक मे कवीर का नाम है और और एक मे आनन्दघन का नाम है । भाव भी अलग अलग हैं । वास्तव मे यह पद सत कवीर का ही है । इसमे भापा और शैली कवीर की ही है । अतिम छठा पद आनन्दघनजी का ही प्रतीत होता है । यह आनदघनजी के किसी अन्य पद का है, वह इस पद मे सम्मिलित कर इस पद को आनदघनजी का वना दिया गया है ।

१०४ राग–बेलावल

ता जोगे चित ल्याऊ रे वहाला ।

समकित दोरो शील लगोटी, घुलघुल गाठ घुलाऊ ।
तत्व गुफा मे दीपक जोऊ, चेतन रतन जगाऊ रे वहाला
॥ ता जोगे० ॥१॥

अष्ट करम कडे की धूनी, ध्याना अगन जलऊँ ।
उपशम छनने भसम छगाऊँ, मलि मलि अग लगऊ रे बहाला
॥ ता जोगे० ॥२॥

आदि गुरु का चेला होकर, मोह के कान फराऊँ ।
धरम सुकल दोय मुद्रा सोहै, करुणा नाद वजाऊँ रे वहाला
॥ ता जोगे० ॥३॥

इह विध योग-सिहासन वैठा, मुगतिपुरी कू ध्याऊँ ।
आनन्दघन देवेन्द्र से योगी, वहुरि न कलि मे आऊँ रे वहाला
॥ ता जोगे० ॥४॥

(१०४) शब्दार्थ—म्हाला=हे प्रिय । दोरी=डोरी, रस्सी । जोऊ=जलाऊ । अष्ट करम=आठ कर्म, ज्ञानावरणी आदि । कडे की=छाणे की, गाय भैसे के गोवर से वनी हुई वस्तु । उपसम=निवृत्ति भाव । छनने=छानने का वस्त्र । धरम सुकल=धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ।

यह पद मुद्रित प्रतियो मे ३७वा पद है । इस पद को श्री कापडियाजी ने शकास्पद माना है । सही वात यही है कि यह पद आनन्दघनजी की भाषा और शैली से नही मिलता है । इस पद मे 'आनदघन' शब्द ही मतिभ्रम करता है । यह शब्द नाम वाची न होकर विशेषण है । इसका सम्बन्ध देवेन्द्र शब्द से है । यह 'देवेन्द्र' ही इस पद के कर्त्ता मालूम पडते हैं । भविष्य मे 'देवेन्द्र' के और पद मिलने पर ही इसका पूर्ण रूपेण निर्णय हो सकता है ।

१०५ राग—सारंग

चेतन शुद्धातम कु ध्यावो ।
पर परचे धामधूम सदाई, निज परचे सुख पावो ॥चेतन०॥१॥

निज घर मे प्रभुता है तेरी, पर सग नीच कहावो ।
प्रत्यक्ष रीत लखी तुम, ऐसी, गहियें आप सुहावो ॥चेतन०॥२॥

यावत तृष्णा मोह है तुमको, तावत मिथ्या भावो ।
स्व सवेद ग्यान लहीं करवो, छडो भ्रमक विभावो ॥चेतन०॥३॥

समता चेतना पतिकु इण विध, कहे निज घर आवो ।
आतम उच्छ सुधारस पीये, 'सुख आनंद' पद पावो ॥चेतन०॥४॥

(१०५) शब्दार्थ—ध्यावो=ध्यान करो । परचे=परिचय, विभाव-दशा मे । धामधूम=भारी हलचल, अत्यन्त कोलाहल । परसग=दूसरो के साथ से । यावत=जब तक । तावत=तव तक । स्व सवेद=अपनत्व की

प्रीतीति करना, अपने पन की अनुभूति करना। छडो=छोडो। भ्रमक= भ्रामक, भ्रम करनेवाले। उच्छ=गन्ना, अत्यन्त मिष्ठ।

यह पद मुद्रित प्रतियो मे ८०वा पद है। इस पद मे आनदघनजी का नाम भी नही है। 'आनद' शब्द देख कर ही इसे आनदघनजी का पद मान लिया गया है किन्तु इस पद मे कर्त्ता का पूरा नाम है। कर्त्ता का नाम 'सुखानद' है जो सधि विच्छेद होकर दिया मया है—"सुख आनद"। आनदघनजी ने अपने किसी भी पद मे "आनद" या 'सुखानद' शब्द का प्रयोग नही किया है। उन्होने तो केवल "आनदघन" का प्रयोग किया है। यह पद आनदघनजी की भापा और शैली से भी नही मिलता है।

१०६ — राग–सारग

चेनन ऐसा ग्यान विचारो।
सोह सोह सोह सोह, सोह अणु न बीया सारो ॥चेतन०॥१॥

निश्चय स्व लक्षरण अवलबी, प्रज्ञा छैनी निहारो।
इह छैनी मध्य पाती दुविधा, करे जड-चेतन फारो ॥चेतन०॥२॥

तस छैनी कर ग्रहि ये जो धन, सो तुम सोह धारो।
सोह जानि दटो तुम मोह ह्वै है समको वारो ॥चेतन०॥३॥

कुलटा कुटिल कु बुद्धि कुमता, छ डो ह्वै निज चारो।
"सुख आनद" पदे तुम वेसी, स्व परकु निस्तारो ॥चेतन०॥४॥

(१०६) शब्दार्थ—सोह=सोऽह, वह मै हूँ। अणु=छोटा, अशमात्र। बीआ=दूसरा। सारो=सारभूत, श्रेष्ठतम। अवलबी=सहारा लेकर। प्रज्ञा=बुद्धि। छैनी=छनी, पत्थर तोडने का लोहे का औजार। निहारो=देखो। पाती=पडते ही। दुविधा=दो टुकडे।

फारो = विभाग, फाड टुकडा, पृथक्करण । दटो = दवादो । समको = ममता का । वारो = प्रहार । चा ो = उपाय, इलाज, प्रवृत्ति, आचरण करो । वेसी = वैठ कर । निस्तारो = छुटकारा, उद्धार, मुक्ति ।

यह पद मुद्रित प्रतियो मे ८१ वा है । यह पद भी 'सुखानन्द' का ही है ।

१०७ राग कल्याण

या पुद्गल का क्या विसवासा, है सुपने का वासारे ।।या०।।
चमत्कार विजली दे जैसा, पानी विच्च पतासा ।
या देही का गर्व न करना, जगल होयगा वासा ।।या०।।१।।
जूठे तन धन जूठे जोवन, जूठे है घर वासा ।
'आनन्दघन' कहे सब ही जूठे, सांचा शिवपुर वासा ।।या०।।२।।

मुद्रित प्रतियो मे यह पद ९७ वा है । यह पद भी आनन्दघन जी की भाषा और शैली से नही मिलता है । श्रीकापडियाजी ने इस पद को शका-स्पद माना है । श्रीविश्वनाथ प्रसादजी मिश्र ने भूधरदास (दिगम्बर जैन कवि) का माना है । उनके "जैन शतक" मे दस पक्तियो मे यह पद हेरफेर के साथ मिलता है ।

(१०७) शब्दार्थ—विसवासा = विश्वास, भरोसा । वासा = वास-स्थान । दे = का । विच्च = वीच, मध्य । पतासा = वताशा, चीनी का वना उठाहुआ पदार्थ, वुलवुला । देही = शरीर ।

१०८ राग- त

तुम ज्ञान विभो फूली वसत, मन मधुकर ही सुख सो रसत ।।तुम०।।१।।
दिन वडे भये वैराग्य भाव, मिथ्या मति रजनी घटाव ।।तुम०।।२।।

बहु फूली फली सुरुचि बेल, ज्ञाता जन समता सग केल ।।तुम०।।३।।
जानत बानी पिक मधुर रूप, सुरनर पशु आनदघन सरूप ।।तुम०।।४।।

यह पद मुद्रित प्रतियो मे १०७ वा है, इसकी भाषा और शैली भी आनदघन जी से भिन्न है। इस पद की भाषा 'व्रज' है जबकि आनदघन जी की भाषा 'राजस्थानी' है। यह पद 'द्यानत विलास' मे ज्यो का त्यो ५८ वा पद है, फर्क केवल इतना ही है कि इसकी चतुर्थ पक्ति का आदि शब्द 'जानत' उसमे (द्यानत विलास) 'द्यानत' है वह ठीक है। 'आनदघन' शब्द देखकर ही सग्रहकर्ता ने आनदघन जी का यह पद मानकर 'द्यानत' के स्थान पर 'जानत' कर दिया है। वास्तव मे यह पद आगरा निवासी द्यानतराय जी का ही है।

१०६ राग- च

तज मन कुमता कुटिल को सग।
जाके सगतें कुबुद्धि उपजत है, पडत भजन मे भग ।।तज०।।१।।
कौवे कू क्या कपूर चुगावत, श्वान ही न्हावत गग।
खर कु कीनो अरगजा लेपन, मरकट भूषण अग ।।तज०।।२।।
कहा भयो पय पान पिलावत, विषहु न तजत भुजग।
'आनदघन' प्रभु काली कावलिया, चढत न दूजो रग ।।तज०।।३।।

यह पद श्री कापडिया जी की पुस्तक मे १०८ वा पद है और श्री बुद्धिसागर जी की पुस्तक मे भूमिका मे दिया है। इन दोनो मे पाठ भेद भी है जो इस प्रकार है—

कुमता कुटिल = हरविमुखन। क्या = काहा। श्वान ही न्हावत = श्वान नाहावत। कीनो = कहा। विषहु न तजत भुजग = विष न तजे भुजग। आनदघन प्रभु काली कावलिया = आनदघन वे हे काली कवल।

श्री कापडिया जी की पुस्तक मे "ज्यु पाषाण वाण नहिं भेदत, पीतो भयो निपग" पक्ति और है।

इस पद को भी श्री कापडिया जी ने महाकवि सूरदास का मानकर ही व्याख्या की है। श्री विश्वनाथ प्रसाद जी भी इसे 'सूरदास' का ही मानते हैं। वास्तव मे यह पद महाकवि सूरदास का ही है। सूरसागर तथा अन्य सूरदास के पदो के सग्रह मे यह पद इस प्रकार आरभ होता है—

'छाडि मन हरिविमुखन को सग'

और पद की समाप्ति—"सूरदास की काली कवलिया चढत न दूजो रग" से होती है। वीच के पद भी ऐसे के ऐसे ही हैं।

यहा वे पद दिये जा रहे हैं जो हमारे पास हस्तलिखित प्रतियो मे तो हैं किन्तु अव तक की प्रकाशित प्रतियो मे नही हैं। पद सख्या ११०, १११, ११२ और ११३ हमारी 'आ' प्रति के क्रमश १६, १७, १८ और ८० सख्या पर हैं। पद सख्या ११४ के दोनो रूप और पद सख्या ११५ किन्ही हस्त लिखित प्रतियो से स्व० श्री उमराव चद जी जरगड ने एक पत्र मे प्रतिलिपि कर रखी थी और पद सख्या ११६ हमारी प्रतियो मे 'अ', 'इ', 'उ' में क्रमश २९, ७३, ८० पर है। पद सख्या ११७ भी इसी प्रकार एक अलग पत्र मे लिखा मिला है। ये सव ही पद महाभाग योगीराज आनदघन जी के प्रतीत नही होते हैं।

कवि या लेखक आरभ से जो भाषा और शैली (कहने या लिखने का ढग) अपनाता है वह अन्त तक वना रहता है। श्री आनदघन जी ने जिस भाषा का प्रयोग अपनी चौवीसी और पदो मे किया है, वह राजस्थान की है। जो शैली और भावो की अभिव्यक्ति चौवीसी के पदो मे प्राप्त हैं, वह ही भाषा और शैली इस सग्रह के अनेक पदो मे है, जिन्हें हम इन्ही का मानते हैं। ये सम्पूर्ण नये आठ पद और श्रीमद् वुद्धिसागर सूरीश्वर जी के तीन नवीन पद श्री आनदघन जी की शैली और भाषा से मेल नही खाते हैं, अत ये इनके नही है। इनमे आनदघन जी का नाम होने से ही आनदघन जी के मान लेना गलती होगी। इन पदो की भाषा एक नही है। कही राजस्थानी मिश्रित है, कही कवीर आदि सत कवियो ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वैसी है।

श्री आनदघन जी ने जिस ढग से चौबीसी और अनेक पदो मे अपने भाव व्यक्त का चमत्कार दिखाया है, वह इन पदो मे सर्वथा नही है। इन पदो मे साधारण भाषाभिव्यक्ति है, अत ये पद उनके नही हैं। अब प्रश्न हो सकता हैं कि आखिर ये पद किसके हैं ? इसके लिये स्पष्ट कुछ कहा नही जा सकता है। यह कार्य आगे की शोध से ही निश्चित हो सकेगा।

११०

प्रिय माहरो जोसी, हुं पीयरी जोसण कोई पडोसण पूछौ जोस।
जे पूछौ ते सगलौ कहिसी, सौसौ रहै न रहै कोई सोस ॥प्रीय०॥१॥

तन धन सहज सुभाव विचारै, ग्रह युति दृष्टि विचारौ तोस।
शशि दिशि काल कला बल धारै, तत्व विचारि मनि नाणै रोस
॥प्रीय०॥२॥

सौंण निमित सुर विद्या साधै, जीव धातु मूल फल पोस।
सेवा पूजा विधि आराधै, परगासै 'आनदघन' कोस ॥प्रीय०॥३॥

(११०) **शब्दार्थ**—माहरो = मेरा। जोसी = ज्योतिषी। जोसण = ज्योतिषी की पत्नि। जोस = ग्रहफल। सगलो = सम्पूर्ण। सोसो = सशय, शका। सोस = शोषण करने वाली बात, चिन्ता। तोस = सतोष। मनि = मनमे। नाणै = न लावै। रोस = क्रोध। सौंण = शकुन। सुरविद्या = स्वर विज्ञान। कोस = कोष, खजाना।

१११

दग्यो जु महा मोह दावानल, उबरूं पार ब्रह्म की ओट।
कृपा कटाक्ष सुधारस धारा, वचै विसम काल की चोट ॥द०॥१॥

फारो = विभाग, फाट टुकडा, पृथक्करण। दटो = दवादो। ममको = ममता का। वागे = प्रहार। चारो = उपाय, इलाज, प्रवृत्ति, आचरण करो। वेसी = बैठ कर। निस्तारो = छुटकारा, उद्धार, मुक्ति।

यह पद मुद्रित प्रतियों में ८१ वां है। यह पद भी 'सुखानन्द' का ही है।

१०७ राग कल्याण

या पुद्गल का क्या विसवासा, है सुपने का वासारे ॥या०॥
चमत्कार विजली दे जैसा, पानी विच्च पतासा।
या देही का गर्व न करना, जगल होयगा वासा ॥या०॥१॥
जूठे तन धन जूठे जोवन, जूठे है घर वासा।
'आनन्दघन' कहे सब ही जूठे, साचा शिवपुर वासा ॥या०॥२॥

मुद्रित प्रतियों में यह पद ९७ वां है। यह पद भी आनन्दघन जी की भाषा और शैली में नहीं मिलता है। श्रीकापडियाजी ने इस पद को शकास्पद माना है। श्रीविश्वनाथ प्रसादजी मिश्र ने भूधरदास (दिगम्बर जैन कवि) का माना है। उनके "जैन शतक" में दस पंक्तियों में यह पद हेरफेर के साथ मिलता है।

(१०७) शब्दार्थ—विसवासा = विश्वास, भरोसा। वासा = वासस्थान। दे = का। विच्च = बीच, मध्य। पतासा = बताशा, चीनी का बना उठाहुआ पदार्थ, बुलबुला। देही = शरीर।

१०८ राग-[illegible]त

तुम ज्ञान विभो फूली वसंत, मन मधुकर ही सुख सो रसत ॥तुम०॥१॥
दिन बडे भये वैराग्य भाव, मिथ्या मति रजनी घटाव ॥तुम०॥२॥

वहु फूली फली सुरुचि बेल, ज्ञाता जन समता संग केल ॥तुम०॥३॥
जानत बानी पिक मधुर रूप, सुरनर पशु आनदघन सरूप ॥तुम०॥४॥

यह पद मुद्रित प्रतियो मे १०७ वा है, इसकी भाषा और शैली भी आनदघन जी से भिन्न है। इस पद की भाषा 'व्रज' है जबकि आनदघन जी की भाषा 'राजस्थानी' है। यह पद 'द्यानत विलास' मे ज्यो का त्यो ५८ वा पद है, फर्क केवल इतना ही है कि इसको चतुर्थ पक्ति का आदि शब्द 'जानत' उसमे (द्यानत विलास) 'द्यानत' है वह ठीक है। 'आनदघन' शब्द देखकर ही सग्रहकर्ता ने आनदघन जी का यह पद मानकर 'द्यानन' के स्थान पर 'जानत' कर दिया है। वास्तव मे यह पद आगरा निवासी द्यानतराय जी का ही है।

१०६ राग–खमाच

तज मन कुमता कुटिल को सग।
जाके सगतें कुबुद्धि उपजत है, पडत भजन मे भग ॥तज०॥१॥
कौवे कू क्या कपूर चुगावत, श्वान ही न्हावत गग।
खर कु कीनो अरगजा लेपन, मरकट भूषण अग ॥तज०॥२॥
कहा भयो पय पान पिलावत, विषहु न तजत भुजग।
'आनदघन' प्रभु काली कावलिया, चढत न दूजो रग ॥तज०॥३॥

यह पद श्री कापडिया जी की पुस्तक मे १०८ वा पद है और श्री बुद्धिसागर जी की पुस्तक मे भूमिका मे दिया है। इन दोनो मे पाठ भेद भी है जो इस प्रकार है—

कुमता कुटिल = हरविमुखन। क्या = काहा। श्वान ही न्हावत = श्वान नाहावत। कीनो = कहा। विपहु न तजत भुजग = विप न तजे भुजग। आनदघन प्रभु काली कावलिया = आनदघन वे हे काली कवल।

श्री कापडिया जी की पुस्तक मे "ज्यु पापाण वाण नहि भेदत, पीतो भयो निपग" पक्ति और है।

इस पद को भी श्री कापडिया जी ने महाकवि सूरदास का मानकर ही व्याख्या की है। श्री विश्वनाथ प्रसाद जी भी इसे 'सूरदास' का ही मानते हैं। वास्तव मे यह पद महाकवि सूरदास का ही है। सूरसागर तथा अन्य सूरदास के पदो के सग्रह मे यह पद इस प्रकार आरभ होता है—

'छाडि मन हरिविमुखन को सग'

और पद की समाप्ति—"सूरदास की काली कवलिया चढत न दूजो रग" से होती है। बीच के पद भी ऐसे के ऐसे ही है।

यहा वे पद दिये जा रहे हैं जो हमारे पास हस्तलिखित प्रतियो मे तो है किन्तु अव तक की प्रकाशित प्रतियो मे नहीं हैं। पद सख्या ११०, १११, ११२ और ११३ हमारी 'आ' प्रति के क्रमश १६, १७, १८ और ८० सख्या पर हैं। पद सख्या ११४ के दोनो रूप और पद सख्या ११५ किन्ही हस्त लिखित प्रतियो से स्व० श्री उमराव चद जी जरगड ने एक पत्र मे प्रतिलिपि कर रखी थी और पद सख्या ११६ हमारी प्रतियो मे 'अ', 'इ', 'उ' मे क्रमश २९, ७३, ८० पर है। पद सख्या ११७ भी इसी प्रकार एक अलग पत्र मे लिखा मिला है। ये सव ही पद महाभाग योगीराज आनदघन जी के प्रतीत नही होते हैं।

कवि या लेखक आरम से जो भाषा और शैली (कहने या लिखने का ढग) अपनाता है वह अन्त तक वना रहता है। श्री आनदघन जी ने जिस भाषा का प्रयोग अपनी चौवीसी और पदो मे किया है, वह राजस्थान की है। जो शैली और भावो की अभिव्यक्ति चौवीसी के पदो मे प्राप्त है, वह ही भाषा और शैली इस सग्रह के अनेक पदो मे है, जिन्हें हम इन्ही का मानते हैं। ये सम्पूर्ण नये आठ पद और श्रीमद् बुद्धिसागर सूरीश्वर जी के तीन नवीन पद श्री आनदघन जी की शैली और भाषा से मेल नही खाते हैं, अत ये इनके नही हैं। इनमे आनदघन जी का नाम होने से ही आनदघन जी के मान लेना गलती होगी। इन पदो की भाषा एक नही है। कहीं राजस्थानी मिश्रित है, कही कवीर आदि सन्त कवियो ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वैसी है।

श्री आनदघन जी ने जिस ढग से चौबीसी और अनेक पदो मे अपने भाव व्यक्त का चमत्कार दिखाया है, वह इन पदो मे सर्वथा नही है। इन पदो मे साधारण भाषाभिव्यक्ति है, अत ये पद उनके नही हैं। अब प्रश्न हो सकता है कि आखिर ये पद किसके है ? इसके लिये स्पष्ट कुछ कहा नही जा सकता है। यह कार्य आगे की शोध से ही निश्चित हो सकेगा।

११०

प्रिय माहरो जोसी, हुं पीयरी जोसरण कोई पडोसरण पूछौ जोस ।
जे पूछौ ते सगलो कहिसो, सोसो रहै न रहै कोई सोस ।।प्रीय०।।१।।

तन धन सहज सुभाव विचारै, ग्रह युति दृष्टि विचारौ तोस ।
शशि दिशि काल कला बल धारै, तत्व विचारि मनि नाणै रोस
।।प्रीय०।।२।।

सौंण निमित सुर विद्या साधै, जीव धातु मूल फल पोस ।
सेवा पूजा विधि आराधै, परगासै 'आनदघन' कोस ।।प्रीय०।।३।।

(११०) शब्दार्थ—माहरो = मेरा। जोसी = ज्योतिषी। जोसरण = ज्योतिषी की पत्नि। जोस = ग्रहफल। सगलो = सम्पूर्ण। सोसो = सशय, शका। सोस = शोषण करने वाली बात, चिन्ता। तोस = सतोष। मनि = मनमे। नाणै = न लावै। रोस = क्रोध। सौंण = शकुन। सुरविद्या = स्वर विज्ञान। कोस = कोष, खजाना।

१११

दग्यो जु महा मोह दावानल, उबरू पार ब्रह्म की ओट ।
कृपा कटाक्ष सुधारस धारा, बचै विसम काल की चोट ।।द०।।१।।

अगज अनेक करी जीय बांधी, दूतर दरप दुरित की पोट ।
चरन सरन आवत तन मनकी, निकसि गई अनादि को खोट ॥द०॥२॥

अव तो गहै भाग वड पायौ, परमारथ सुनाव दृढ कोट ।
निरमल मानि साच मेरी, कही, 'आनंदघन' घन सादा अतोट
॥द०॥३॥

(१११) शब्दार्थ—दग्यो = प्रज्वलित हुआ । उवरू = मुक्त होना, छूटना, निकलना । ओट = आड, शरण । वचै = वचना, रक्षा प्राप्त करना । अगज=मूर्खता । दूतर = दुस्तर, कठिन । दरप = दर्प, गर्व । दुरित = पाप । पोट = गठरी । अतोट = अटूट ।

११२

कुण आगल कहुं खाटु मीठुं, राम सनेही नुं मुखडु न दीठु ।
मन विसरामी नु मुखडु न दीठु, अतर जामी नु अतर जामी नु ॥

जे दीठा ते लागइ अनीठा, मन मान्या विण किम कहुँ मीठा ।
धरणी अगास विचै नहीं ईठा ॥कुण ०॥१॥

जोतां जोता जगत विशेषु, उण उणिहारइ कोइ न देखु ।
अणसमझ्यु किम मांडु लेखु ॥कुण०॥२॥

कोहना कोहना घर मे जावु, कोहना कोहना नितगुण गावु ।
जो 'आनदघन' दरसन पावु ॥कुण०॥३॥

(११२) शब्दार्थ—आगल = आगे । दीठुं=देखा । अनीठा = अनिष्ट-कारी, अप्रिय । धरणी = पृथ्वी । ईठा = इष्ट, प्रिय । जोता जोता = देखते देखते । विशेषु = परीक्षा की । उण = उस । उणिहारइ = अनुसार, समान । कोहना कोहना = किस किसके ।

११३ राग–ललित

मिलणरो बाणक आज बण्यौ छै जी ॥मि०॥
देराणी जेठानी म्हारी, धधे लागी निणदल पुत्र जीण्यौ छै जी
॥मि॥१॥
सासु करत म्हारी पान पजीरी, आडो पडदो तण्यौ छै जी ॥मि॥२॥
'आनन्दघन' पिया भलेही पधारे, मन मे उमाहो घणो छै जी
॥मि॥३॥

(११३) शब्दार्थ—बाणक = बनाव, वेश, अवसर। धधे = काम मे। निणदल = ननद। पुत्त = पुत्र। जिण्यौ = जन्म दिया। पान पजीरी = खाने का मिष्ठान।

११४

सुण चरखा वाली चरखो बोले तेरो हु हु हु।
जल मे जाया थल मे उपना, बस गया नगर मे आप।
एक अचभा, ऐसा देखा, बेटी जाया बाप रे ॥सु०॥१॥
भाव भगतिकी रुइ मगाइ, सुरत पीजावरण चाली।
ज्ञान पींजारो पींजरण बेठो, तात पकड भरणकाइ रे ॥सु०॥२॥
बावल मेरो व्याव कीजो हे, अरण जाण्यो वर आप।
अरणजाण्यो वर नहि मिले तो, बेटी जाया बाप रे ॥सु०॥३॥
सासु मरेजो नरणद मरेजो, परण्यो वी मरजाय।
एक बुढीओ नहि मरे तो तिरण चरखो दीजो बताय रे ॥सु०॥४॥
चरखो मारो रग रगीलो, पुणी हे गुलजार।
कातनवाली छेल छबीली, गीन गीन काढे तार रे ॥सु०॥५॥
इणी चरखामे हु हु लिख्यो हे, हु हु लिखे नहि कोय।
'आनदघन' या लिखे विभुति, आवागमन नहि होय रे ॥६सु०॥
(गुजराती से प्रभावित)

(११६) शब्दार्थ—दिलव्यो = लिपट गया, लटक गया, चित्तलगाकर फस गया। समके = समान, बराबर। कल = चैन, आराम। आनन = मुख, चहरा।

११७

मगरा ऊपर कबुआ वोल्यो, पहुँणा आया तीन।
पहुंणा थारी मू छा बालू, छाणा क्यो नही ल्यायो।
करकशा नार मिली छैजी, धन्य पियाजी थारा भाग ॥ करकशा०॥
पहुणा आया देखिने, चूल्हो दियो बुझाय।
दो लात पहुँणा कै मारी, आप बैठी रीसाय ॥करकशा०॥१॥
मोठ बाजरी को पीसणो, ले बैठी भर सूँप।
अब जो पहुंणा मुझनै कहसी, तो जाय पडूँगी कूप ॥कर०॥२॥
घर मे घट्टी घर मे ऊँखल, पर घर पीसण जाय।
पाडोसण सेती वात करता, चून कूतरा खाय ॥कर०॥३॥
माँचो बाल्यो बरलो बाल्यो, बाली ढोलाकी डांडी।
छपरो बाल्यो मूँपरो बाल्यो, तो न चढ्ढी इक हाँडी ॥कर०॥४॥
तीन पाव की सात बनाई, सात पाव की एक।
परण्यो डाकी सातो खागयो, हू सुलच्छनी एक ॥कर०॥५॥
गगा न्हाई गोमती न्हाई, बिच मे आई घाटी।
घर मे आई जोवियो तो, अजहि न मूओ भाटी ॥कर०॥६॥
न्हाइ घोइ वेस वणाई, तिलक कर्‌यो अपार।
सूरज सामी अरज करै छै कद मरसी भरतार ॥कर०॥७॥
'आनदघन' कहे सुन भाई साधू ! एह पद है सुख दाई।
इस पद की निन्दा करै तो नरक निगोद निसाणी ॥कर०॥८॥

(११७) यह पद भी श्री आनन्दघन जी का नहीं है। शैली तो मिलती ही नहीं है साथ ही एक और बात है कि अन्तिम पद ८ वें की तुकात नही मिलती और न ऊपर के पदों से उसका कुछ सम्बन्ध प्रकट होता है। 'आनद

११६

निरजन यार मोय कैसे मिलेगे
दूर देखु मे दरियाडु गर उ ची वादर नीचे जमी यु तले ॥निर॥१॥
धरती मे घडुता न पिछानु,अग्नि सहु तो मेरी देही जले निर०॥२॥
'आनदघन' कहे जस सुनो वाता, ये ही मिले तो मेरो फेरो टले
॥निर०॥३॥

(११९) शब्दार्थ—डु गर = पहाड । तले = नीचे । घडुता = प्रवेश कर। पिछानु = पहिचाना। देही = शरीर। फेरो = ससार मे आवागमन, जन्म–मरण का चक्र। टले = दूर हो जावे। जस = यशोविजयजी

१२० राग–आशावरी

अब चलो सग हमारे, काया चलो सग हमारे ।
तोये वहोन यत्नकरी राखी, काया अब चलो० ॥१॥
तोये कारण मे जीव सहारे, बोले जूंठ अपारे ।
चोरी करी पर नारी सेवीं जूंठ परिग्रह धारे ॥काया०॥२॥
पट आभूपरा सुंधा चुआ, अशनपान नित्य न्यारे ।
फेर दिने खट रस तोये सुन्दर, ते सब मल कर डारे काया०॥३॥
जीव सुणो या रीत अनादि, कहा कहत वारवारे ।
मे न चलू गी तोये संग चेतन, पाप पुण्य दोय लारे ॥काया०॥४॥
जिनवर नाम सार भज आतम, कहा भरम संसारे ।
सुगुरू वचन प्रतीत भये तब, ' दघन' उपगारे ॥काया०॥५॥

(१२०) शब्दार्थ—पट = वस्त्र। सु धा = सुगन्धित पदार्थ। चुआ = चोवा चदन, इत्र। अशन पान = खाने पीने की वस्तु। दिने = दीने, दिये। मल – विप्ठा। लारे = पीछे।

(१२१) यह पद श्री साराभाई मणिलाल नवाव द्वारा सम्पादित "श्री आनन्दघन पद्य रत्नावली" नामक पुस्तक से साभार उद्धृत किया गया है। पद की भाषा बिलकुल गुजराती है, जबकि श्री आनन्दघनजी भाषा सभी पदो मे राजस्थानी है। अत निश्चयपूर्वक कहा नही जा सकता कि प्रस्तुत पद उन्ही का है अथवा किसी अन्य का। इस पद का राजस्थानी रूप प्राप्त होने पर ही निश्चय हो सकता है।

पांच समिति–ढाल १

१ इर्या समिति

दोहा– पच महाव्रत आदरो, आतम करो विचार।
अहो अहो मुझ प्रत्यक्ष थवो, धन्य धन्य अवतार ॥

विनती अवधारो रे, इरियाये चालो रे, शक्ति संभालो आतम स्वभावनी रे ॥१॥

इरिया ते कहिये रे, _मति सुं भेट लहिये रे, पुंठ तव बाली कुमती सग थी रे ॥२॥

द्रव्य थी पण सार रे, किलामणा लगार रे, रखे नवि ऊपजे हुवे पर प्राण नै रे ॥३॥

मुनि मारग चालो रे, द्रव्य भाव सु म्हालो रे, आतम नै उजवालो भव-दव-चक्रथी रे ॥४॥

एम सुमति गुण पामी रे, परभाव नै वामी रे, कहै हवै स्वामी "आनदघन' ते थयोरे ॥५॥

पाच समिति की पाचो ढालें श्री आनन्दघन जी की ही है। इसमे शका की कोई गुंजाइश नही है। स्व० श्री उमरावचन्दजी ने ये ढाले कहा से ली इसका कोई उल्लेख नही मिलता। ये ढाले श्री अगरचन्दजी नाहटाने 'श्रीमद्देवचन्द्र सज्झाय माला भाग १ मे प्रकाशित कराई है। कुछ पाठ भेद हैं वह यहा दिया जाता है।

(ढाल १)पाठांतर— करो=करे। मुफ=हु। प्रत्यक्ष थयो=थयो प्रत्यक्ष। धन्य-धन्य=घन धम। इरिया..भेट लाहियेरे के आगे पाठ है- "निज लक्ष गहियेरे, गमनागमन महिरे ॥२॥

'पुठ सगथी रे' से पूर्व'—'सुमति जव भाली रे, तव लागी प्यारे रे ॥३॥-पाठ है। सुमति=मुनि। स्वामी=स्वामी रे। उजवालो=उगारो रे। श०-अवधारो=ध्यान पूर्वक ग्रहण करो। पुठ=पीछा। वाली=जलाकर, त्याग कर। किलामणा=तकलीफ, कष्ट। लगार किंचित भी। म्हालो=आनन्द से चलो। उजवालो=उज्जवल करो। भव-दव=ससार रूपी दावाग्नि। वामी=वाये देकर, दूर कर।

ढाल २

२ भाषा समिति

बीजी समिति साभलो, जयवता जी, भाषा को इग नामरे गुण-वताजी ॥
भाखे भाषण स्वरूपनु जय० रूपी पदारथ त्याग र गुणवताजी ॥१॥
निज स्वरूप रमणे रह्या जय०, नवी परनो प्रचार रे गुण० ॥२॥
भाषा समिति थी सुख थयो रे जय०, ते जाने मुनिराय रे गुण० ॥३॥
ज्ञानवत निज ज्ञान थी जय०, अनुभव भाषक थाय रे गुण० ॥४॥
भाषा समिति स्वभाव थी जय०, स्व-पर विवेचन थाय रे गुण० ॥५॥
हवे द्रव्य थी पण महामुनि जय०, सावद्य वचननो त्याग रे गुण० ॥६॥
सावद्य विरम्या जे मुनि, जय०, ते कहिये महाभाग रे गुण० ॥७॥
पर-भाषण दूरे करी जय०, निज स्वरूपने भास रे गुण० ॥८॥
'आनन्दघन' पद ते लहे, जय०, आतम ऋद्धि उल्लास रे गुण० ॥९॥

(ढाल २) पाठा-त्याग रे=वामरे। रह्या=चञ्या। थयो=थयु राय=सार। शब्दार्थ—बीजी=दूसरी। साभलो=सुनो। भाषक=बोलने वाला। विवेचन विचार करना। हवे=अब। सावद्य=पाप युक्त कार्य। विरम्या=रुकना।

३-एषणा समिति

ढाल ३, (राग बंगालो–राजा नही ..)

त्रिजु समिति एषणा नाम, तेणे दीठो आनदघन स्वाम, चेतन सांभलो।
जव दीठो आनदघन वीर, सहज स्वभावे थयो छै धीर ॥
॥ चेतन साभलो ॥१॥

वीर थई अरि पूठे धाय, अरि हतो ते नाठो जाय, गयो आमलो ।
वीरजी सन्मुख कोई न थाय, रत्न त्रय सु मलवा जाय ॥चे०॥२॥

अरि वल हवे नथी कांई रे, निज स्वभाव मां म्हाल्यो विशेष ।चे०।
निरखण लाग्यो निज घर माय, तव विसामो लीधो त्याय ॥चे०॥३॥

हवे पर घर मा कदिय न जाऊ, परने सन्मुख कदिय न थाऊं ।चे०।
एम विचारी थयो घर राय, तव पर परणति रोती जाय ॥चे०॥४॥

मुनिवर करुणारस भंडार, दोष रहित हवे ले छै आहार ।चे०।
द्रव्य थकी चाले छै एम, पर परणति नो लीधो नेम ॥चे०। ५॥

द्रव्य भाव सु जे मुनिराय, समिति स्वभाव मां चाल्या जाय ।चे०।
'आनदघन' प्रभु कहिया तेह, दुष्ट विभाव ने दीधो छेह ॥चे०॥६॥

(ढाल ३) पाठा०–त्रिजु = त्रीजी। तेणे = तिणे। वीरजी = वीररी। अरि ... काइर = अरिनुबल्ल हवे नथी काइ रेप। कहिया = कहिए।

शब्दार्थ—त्रिजु = तीसरी। दीठो = देखा। पूठे = पीछे। धाय = दौडना। हतो = था। नाठो = दौडना। विसामो = विश्राम। त्याय = वहा। कदिय = कभी। नेम = नियम। छेह = छिटकाना, दूर करना।

४ आदान-निक्षेप समिति

ढाल ४ (जगत गुरु हीरजी रे...)

चोथो समिति आदरो रे, आदान निखेवण नाम ।
आदान ने जे आदर करे रे, निज स्वरूप ने तेम ।

पारिठावणिया नामे वली जे कह्यु रे, ते तो परिहरवो परभाव रे
।सुधा०

आदर करवो निज स्वभाव नो रे ए तो अकल स्वभाव कहेवाय रे
॥सुधा०॥२॥

पर पुद्गल मुनि परठवे रे, विचार करी घट माय रे ।सुधा०।
लोक सज्ञा ने मुनि परिहर रे, गति चार पछे वोसिराय रे
॥सुधा०॥३॥

अनादिनो सग वलि जे हतो रे तेनो हवे करे मुनि त्याग रे सुधा०।
विकल्प ने सकल्प ने टालवा रे, वलि जे थया उजमाल रे ॥सुधा०॥४॥
अनाचीर्ण मुनि परठवे रे, ते जाणी ने अनाचार रे ।सुधा०।
आचार ने वलि जे मुनि आदरे रे, कर्त्ता कार्य स्वरूपी थाय रे
॥सुधा०॥५॥

खट् द्रव्यनु जाणपणु कह्यु रे, ते जे जाणे आप स्वभाव रे ।सुधा०।
स्वभावनु कर्त्ता वलि जे थयो रे, ते तो अनवगाही कहेवाय रे
॥सुधा०॥६॥

सुमति सु हवे मुनि म्हालता रे, चालता समिति स्वभाव रे ।सुधा०।
कुमति थी दृष्टि नहि जोडत रे, रे, वली तोडता जे विभाव रे
॥सुधा०॥७॥

पर परणति कहे सुण साहेबा रे, तमे मुझने मूकी केम रे ।सधा०।
कहो मुनि कवण अपराधथी रे, तमे मुझने छोडी एम रे
॥सुधा०॥८॥

मे म्हारो स्वभाव नहि छोडियो रे, नथी म्हारो कोई विभाव रे
।सुधा०।

थारा सुख विभाव कहेवाय छे रे, नही पुण्य-पापनु ख्याल रे ॥१७॥
ज्ञानी ते एहने सुख नहि कहे रे, सुख तो जाण्यु एक स्वभाव रे।
थारा पूठे पड्या ते तो आघला रे, भव-कूप मां पड्या सदाय रे ॥१८॥
थारु स्वरूप मे बहु जाणियु रे, तू तो जड स्वरूप कहेवाय रे।
जड पणू प्रगट मे जाणियु रे, तू तो पर पुद्गल मा समाय रे ॥१९॥
ते नो विवरो प्रगट हवे साभलो रे, समार समुद्र अथाह रे।
तृष्णा रूप-जल ते मध्ये घणो रे पण पीछे तृप्ति न थाय रे ॥२०॥
ते समुद्रनो अधिष्ठायक वलि रे, ते तो नामे मोह भूपाल रे।
तेना प्रधान वलि पच छे रे ते तले त्रेवीस छडी दार रे ॥२१॥
राजधानी एवी ते मेल वी रे, धर्मराय नू लूटे धन सच रे।
वाह्य धर्मी जो एने आदरे रे, ते ने मोलवे ते छडी दार रे ॥२२॥
वस करी सोपे मोहराय ने रे, मोह करावे प्रमाद प्रचार रे।
ते थी जाये नरक निगोद मां रे, तिहा काल अनादि गमाय रे ॥२३॥
हढ धर्मी एथी नहीं चले रे जेणे कीधा क्षायक भाव रे।
प्रमादी ने मोह पीठे घणो रे, अप्रमादी घरे नहीं जाय रे ॥२४॥
तेणे पच महाव्रत आदर्या रे, छोड्या सर्व अनाचार रे।
आचार थी हूँ हवे नहीं चालू रे, सुण मुज चित्तना अभिप्राय रे ॥२५॥
कुमति जो कहूँ तुमने एटलू रे, म्हारा सधर्मी छे अनन्त काय रे।
ते सवने दास पणू दियो रे ते साले छे मुज चित्त माय रे ॥२६॥
शु कीजे पूठ ते नहि करवे रे, तो पण मुजने दया थाय रे।
ते थी देशना वहुविद करू रे, जिहाँ चाले म्हारो प्रयास रे ॥२७॥
चेतन जी ने बहु परे प्रीछवु रे, तेने वनावू स्थिर वास रे।
ते तो थारे वस करी न होवे रे, ते ने वोसिरावी शिव जाय रे
धर्मरायनी आणने अनुषरे रे, ते तो "आनन्दघन" महाराय रे। २८॥

शब्दार्थ = उनमारग = उन्मार्ग कुमार्ग । परिहरो = छोडो । रूडी परे = भलि प्रकार से । अकल = स्वच्छ, सुन्दर । वोसिराय = छोडना । उजमाल = उज्ज्वल । अनाचीर्ण = जिसका आचरण न करने योग्य हो, अशुद्धाचार । अनवगाही = नही ग्रहण करने वाला । म्हालता = आनद पूर्वक चलते हुए । मूकी- = छोडी । श्यो = क्यो । कदो = कभी । केम = कैसे । थारू = तेरा । आटला = इतने । दहाडा = दिन । पूठे = पीछे । विवरो = व्योरा, विस्तार से वर्णन । अथाह = असीम । पच = पाच इद्रिय-श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रस और स्पर्श इद्रिय । त्रेवीस = तेवीस, पाच इद्रियो के तेवीस विषय । सचरे = सचय करके, एकत्रित करके । मोलवे = आर्कषित करके । एटलू = इतना । प्रीछवू रे = प्रश्न करना ।

श्री आदिजिन स्तवन*

राग–प्रभाती

आज म्हारे चयारु मगल चार ।
देख्यो मै दरस सरस जिनको सोभा सुन्दर सार ॥आज०॥१॥
छिन छिन जिन मनमोहन अरचौ, घनकेसर घनसार ।
धूप उखेवो करो आरती, मुख बोलो जयकार ॥आज०। २ ।
विवध भात के पुष्फ मगावो, सफल करो अवतार ।
समवसरण आदीसर पूजो, चौमुख प्रतिमा च्यार ॥आज०॥३॥
होयँ घरो बारह भावना भावो, ए प्रभु तारण हार ।
सकल सघ सेवक जिनजी को, 'आनन्दघन' अवतार ॥आज०। ४॥

चौवीसे तीर्थंकर नु तवन*

ऋषभ जिनेसर राजीउ मन भाय जुहारो जी ।
प्रथम तीर्थंकर[1] पति राजिउ[2] परिगह परिहारो जी ॥१॥

शब्दार्थ = उनमारग = उन्मार्ग कुमार्ग । परिहरो = छोडो । रूडी परे = भलि प्रकार से । अकल = स्वच्छ, सुन्दर । वोसिराय = छोडना । उजमाल = उज्ज्वल । श्रनाचीर्ण = जिसका आचरण न करने योग्य हो, अशुद्धाचार । अनवगाही = नही ग्रहण करने वाला । म्हालता = आनद पूर्वक चलते हुए । मूकी- = छोडी । श्यो = क्यो । कदी = कभी । केम = कैसे । थारू = तेरा । आटला = इतने । दहाडा = दिन । पूठे = पीछे । विवरो = व्योरा, विस्तार से वर्णन । अथाह = असीम । पच = पाच इद्रिय-श्रोत, चक्षु, घ्राण, रस और स्पर्श इद्रिय । त्रेवीस = तेवीस, पाच इद्रियो के तेवीस विषय । सचरे = सचय करके, एकत्रित करके । मोलवे = आकर्षित करके । एटलू = इतना । प्रीछवू रे = प्रश्न करना ।

श्री आदिजिन स्तवन*

राग—प्रभाती

आज म्हारे च्यारु मगल चार ।
देख्यौ मैं दरस सरस जिनको सोभा सुन्दर सार ॥आज०॥१॥
छिन छिन जिन मनमोहन अरचौ, घनकेसर घनसार ।
धूप उखेवो करो आरती, मुख बोलो जयकार ॥आज०। २ ।
विवध भात के पुप्फ मगावो, सफल करो अवतार ।
समवसरण आदीसर पूजौ, चौमुख प्रतिमा च्यार ॥आज०॥३॥
हीयै धरी बारह भावना भावो, ए प्रभु तारण हार ।
सकल संघ सेवक जिनजी को, 'आनन्दघन' अवतार ॥आज०। ४॥

चौवीसे तीर्थंकर नुं तवन*

ऋषभ जिनेसर राजीउ मन भाय जुहारो जी ।
प्रथम तीर्थंकर[1] पति राजिउ[2] परिगह परिहारो जी ॥१॥

विजयानन्दन वंदीए गज पाय पलायजी ।
जिम सूरयर[1] नदीए, सुरनर मन भाय जी ॥२॥

संभव भव-भय टालतो, अनुभव अगणत जी ।
मलपति गज-गति[1] चालतो सेवे सुर नर संतजी ॥३॥

अभिनन्दन जिन जयकर, करुणा[1] रस धार जी ।
सुगति सुगति नायक यक मद मदन निवार जी ॥४॥

सुमति सुमत[1] दातार हूँ प्रणमु कर जोडि जी ।
कुमति कुमति परिहार कुं, अन्तराय पटि तोडि[1] जी ॥५॥

पदम प्रभु प्रताप सू परि वादि विभगो जी ।
जिम रवि-केहरि व्याप सू अंधकार मतंग जी ॥६॥

श्री सुपास निज[1] चारा ते, मुझ पास निरास जी ।
कृपा करि निज दास नेइ, दीजइ सुखवास जी ।७॥

चंद्र प्रभु मुख चंदलो, दीठा नर सुख थाय जी ।
उपसम रस भर कंदलो दुख[10] दालिद्र जायजी ।८॥

सुविधि सुविधि विधि, दाखवइ राखइ निज पासजी ।
नवम अठम विधि दाखवइ[11] केवल प्रतिभास जी ॥९॥

सीतल सीतल जेम[12] अमी, कामित फलदाय जी ।
भाव सु तिकरण सुध नमि, भवयण निरमाइ जी ॥१०॥

श्री श्रेयास इग्यारमो, जिनराज विराजै जी ।
ग्रह नवि पीडइ बारमो जस सिर परे गाजे जी ।११॥

वासपूज वसु पूज्य नरपति कुल-कमल दिनेश जी ।
आस पूरे सुरनर[13] जती, मन तणीय जिनेश जी ॥१२॥

विमल विमल आचारनी, तुझ शासन चाहू जी ।
घट पट कट निरधार नइ, जिम दीपइ उमाहजी ॥१३।

अनन्त अनन्त न[14] पामिये गुण गण अविनास जी।
तिन तुझ पद-कज, कामीइ, गणधर पद पासि[15] जी ॥१४॥
धरम धरम तीरथ करी, पचम गति दाइ जी।
एकतक मत मद हरी, जिण बोध सवाइ[17] जी ॥१५॥
सनिक सति करी जगधणी, मृगलछ्न सोहे जी।
निरलछ्न पदवी भणी, भवियण मण मोहइ जी ॥१६॥
कु थनाथ तीरथपति धर पद धारजी।
निरमल वचन सुधा राखे[18] निज पास जी ॥१७॥
श्री अरनाथ सुहामणो, अरे सतिल साधे जी।
वछित फल दाता भणो, जे वचन आराधे जी ॥१८॥
मल्ली वल्ली कामता वर सूर तस कहीइ जी।
चरण कमल सिर नामिना, अगणित फल लाहिइ जी ॥१९॥
मुनिसुव्रत सुव्रत तणी, मणि खान सुहावइजी।
वछित पूरण सुरमणि, रमणि गुण गावइ जी ॥२०॥
नमि चरण चित राखिये, चेतन चतुराइ जी।
परमारथ सुख चाखिये, मानव भव पाइ जी ॥२१॥
नेमनाथ ने एकमना[19] साइक नवि लागिजी।
तिण कारण सूर धामणी, जण सगुण मागि जी ॥२२॥
पारस महारस दीजिये, जन जाचन आवे जी।
अभय दान फल लीजियै[21] असरण पद पावे जी ॥२३
सिद्धारथ सुत सेवियइ, सिद्धारथ होइजी।
च्याल[22] जजाल न खेवीइ[23] परमारथ जोइ जी ॥२४॥
एय चौवीस तीर्थंकरु निज मुन गुण गावु जी।
जिन मत माण सचरु 'आनन्दघन' पाउ जी ॥२५॥

आनन्दघन-चौबीसी

श्री ानन्‍ घन चौवी ी स्त न

श्री ऋषभ जिन स्तवन (१)

(राग मारू करम परीक्षा करण कुवर चल्यो, ए देशी)

ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो, और न चाहूँ कत ।
रींझ्यो साहव सग न परिहरे, भागे सादि अनन्त ।।ऋ०।।१।।
प्रीत सगाई जग मा सहु करै, प्रीत सगाई न कोय ।
प्रीत सगाई निरुपाधिक कही रे, सोपाधिक धन खोय ।।ऋ०।।२।।
को कन्त कारण काष्ठ भक्षण करै मिलस्यू कत नै धाय ।
ए मेलो नवि कदिये सभवे मेलो ठाम न ठाय ।।ऋ०।।३।।
कोइ पति रजन अति घणु तप करै, पति रजान तन ताप ।
ए पति रजन मै नवि चित धर्‌यू, रजन धातु मिलाप ।।ऋ०।।४।।
कोइ कहै लीला ललक अलख तणी, लख पूरे मन आस ।
दोष रहित नै लीला नवि घटै, लीला दोष विलास ।।ऋ०।।५।।
चित्त प्रसत्ति पूजन फल कह्यू, पूजि अखडित एह ।
कपट रहित थई आतम अरपणा, 'आनन्दघन' पद रेह ।।ऋ०।।६।।

(१) पाठान्तर—करम चाल्यो के स्थान पर 'आज नेहजोरे दीसै नाहलो (अ) । चाहूँ = चाहुरे (अ, ऊ)रीझ्यो = रीझियो (इ) साहव = माहिव (अ, आ, ई, उ, ऊ) । जगमा = जग माहि (अ), कही (मे) भी देखा जाता हैं। प्रीत = प्रीति (अ, आ,) । करै = करइ (अ, आ,) । को = कोई (अ, आ, ऊ), कोइक (उ) । काष्ठ = काठ (अ,) । मिलस्यू = मिलस्यु (अ, इ, ई) । नै = ने (आ, इ, ई, उ,) कदिइ = कहीइ (अ,) कहियै (आ, इ, उ, ऊ,) । ने = नै

सहगमन से पति के साथ शीघ्र मिलन हो जावेगा। किन्तु मिलन का कोई निश्चित स्थान न होने के कारण इस प्रकार कभी सभव नहीं है ॥३॥

कोई पति को प्रसन्न करने के लिये अनेक प्रकार के उग्र तप करती है और समझती है कि शरीर को तपाने से ही स्वामी प्रसन्न होंगे। इस प्रकार से मिलाप की इच्छा तो शारीरिक धातु (तत्व) के मिलाप की इच्छा है। शुद्ध चेतना करती है, इस प्रकार से पति को प्रसन्न करना मैंने कभी सोचा ही नहीं। वास्तव मे पति को प्रसन्न करने का तरीका तो धातु मिलाप की तरह है। जिस प्रकार धातु (सोना-चादी) मिल कर, एक रस हो जाता है उसी प्रकार पति-स्वामि को प्रसन्न करने के लिये उसकी प्रकृति मे अपने आप को मिलाकर-समर्पित कर, एक रस हो जाना है ॥४॥

"प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल ते न मिलाय।
दूध दहि सो जमत है, कांजी ते फटि जाय ॥"

कितने ही लोग कहते हैं कि ईश्वर की यह लीला है– क्रीडा है वह सब की इच्छाओ को जानता है और उन इच्छाओ को जानकर सब की आशायें वह पूर्ण करता है। शुद्ध चेतना इस प्रकार कहती है दोष रहित परमात्मा मे यह लीला-क्रीडा सभव नही होती क्योकि लीला तो दोषो की रगभूमि है ॥५॥

पति की चित्त-प्रसन्नता ही पति-भक्ति का फल है। यह सेवा (पति को प्रसन्न रखना) ही अखडित पूजा—भक्ति है। कपट रहित होकर भिन्न-भाव त्याग कर अपने आपको पति के समर्पण कर देना ही भगवान मे चित्तवृति को लीन करना ही—आनदघन के समूह-मोक्ष पद की रेखा है। अर्थात् अनत सुखो के प्राप्त करने का मार्ग है ॥६॥

श्री अजित जिन स्तवन (२)

(राग आसावरी-म्हारो मन मोह्यो श्री विमला चले रे, ए देशी)

पथडो निहालू बीजा जिन तणु , अजित अजित गुण धाम।
जे तें जीत्या तिण हूं जीतियो, पुरुष किस्यू मुझ नाम ॥प०॥१॥

=दौडना । ठाय=स्थान । अभिमत=इच्छित । वस्तु=तत्व । विरला=-कोई । वासित=गध युक्त किया हुआ । काल लब्धि=योग्य समय । लहि=प्राप्त कर । अवलव=सहारा । अम्ब=आम्र,आम ।

अर्थ–दूसरे श्री अजितनाथ जिनेश्वर के उस मार्ग की ओर देखता हूँ जिस मार्ग से उन्होने सिद्धि प्राप्त की है और जिसका उन्होने उपदेश दिया है। आप गुणनिष्पन्न नाम के धारक है अर्थात् आपका 'अजित' नाम और गुणधाम विशेषण युक्ति सगत है, क्योकि आप रागादि शत्रुओ से अजेय हैं और अनत ज्ञानादि गुणो के स्थान हैं। मेरा पुरुष नाम कैसा ? अर्थात् पुरुषार्थ न होने से मेरा 'पुरुष' कहलाना निरर्थक है क्योकि आपने जिन पर (रागादि शत्रुओ पर) विजय प्राप्त की थी, उनसे मैं जीत लिया गया हूँ अर्थात् परास्त हो गया हूँ ॥१॥

पुरुष धर्म पुरुषत्वा, विना शक्ति न लखाय ।
जल-अवधारण शक्ति ते, घट घटता प्रगटाय ॥ (श्री ज्ञान सारजी)

चमडे के नेत्रो से–बाह्य नेत्रो से आपके मार्ग को– आप द्वारा बताये हुये वीतराग मार्ग को (आध्यात्मिक मार्ग को) देखते हुये तो सर्व ससार भूला हुआ ही है–भटकता हुआ ही है। जिन नेत्रों के द्वारा आपका मार्ग देखा जा सकता है उन नेत्रो (आंखो) को तो दिव्य (अलौकिक) ही समझो। अर्थात् आपके स्याद्वाद मार्ग को देखने के लिये सम्यक् ज्ञान-चक्षु ही उपयोगी हो सकते हैं ॥२॥

गुरु परम्परा के अनुभव की ओर देखा जाय तो ऐसा लगता है कि अन्धा अन्धे के पीछे दौडता जा रहा है। अर्थात् अनेक परम्परायें परस्पर की निंदा मे राग-द्वेष वृद्धि करने वाली है। अधे के पीछे अधो की दौड जैसी हैं। उनसे सत्य मार्ग नही मिल सकता है। यदि आगमो के–सिद्धान्त वाक्यो के द्वारा मार्ग का विचार किया जाय तो पाव रखने के लिये भी स्थान नही हैं। अर्थात् आगमो के अनुसार कषाय आदि पर विजय प्राप्त करना अति कठिन कार्य है ॥३॥

उसकी सम्भाल करते रहने के पश्चात ही समय आने पर—ऋतु आने पर पकेगा। यदि सिंचाई आदि नहीं की जावेगी तो आम शुष्क हो जावेगा—सूख जावेगा उसी प्रकार आत्मार्थी पुरुष निरन्तर प्रयत्न करता रहेगा—पुरुषार्थ करता रहेगा तो काललब्धि प्राप्त कर—समय आने पर आनन्द स्वरूप मोक्ष फल प्राप्त कर लेगा। वीतराग सत् पुरुष की आज्ञा अप्रमत होकर उत्साहित होकर आराधन करना ही काललब्धि प्राप्ति का प्रमुख उपाय है अर्थात् जो जिनेश्वर की आज्ञानुसार वैराग्य भाव से श्रद्धापूर्वक मद कषायी और मद विषयी होकर महाव्रतादि पालता हुआ आत्म भाव मे मग्न रहता है वह काललब्धि शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

हे जिनेश्वर भगवान ! मैं उस ही समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि कब मेरी काललब्धि परिपक्व हो और मुझे दिव्य नयन की प्राप्ति हो जिससे मुझे दिव्य दर्शन मिले। वह प्राप्ति मुझे देर अवेर अवश्य मिलेगी। हे कृपालुदेव ! ऐसी मुझे पूरी पूरी आशा है। कारण कि आपकी परम प्रीति—भक्ति रूपी बीज को मैंने अपने चित्त रूपी क्षेत्र मे रोपण कर लिया है तो आनदघन रूप आम्र फल अवश्य काललब्धि पाकर—समय आने पर—ऋतु आने पर पकेगा ही। इसी आशा के अवलम्बन से मैं जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

श्री सम्भव जिन स्तवन (३)

(राग-रामगिरी—रातडी रमीने किहां थी आविया, ए देशी)

सभव देव ते धुर सेवो सव रे, लहि प्रभु-सेवन भेद।
सेवन कारण पहिली भूमिका रे, अभय, अद्वेष, अखेद ॥स०॥१॥
भय चचलता जे परनामनी रे, द्वेष अरोचक भाव।
खेद प्रवृत्ति करता थाकिये, दोष अबोध लखाव ॥स॥२॥
चरमावर्तन चरमकरण तथा, भव परिणति परिपाक।
दोष टलै वलि दृष्टि खुलै भली, प्राप्ती प्रवचन वाक ॥स॥३॥

हे अतिशय आनन्द के दाता [illegible] जिनेश्वर देव ! काललब्धि प्राप्त होने तक—उस समय की अवधि के परिपक्व होने तक—योग्य समय प्राप्त होने तक—मै आपके मार्ग की प्रतीक्षा करूंगा। यह सेवक-भक्त संयम रूप परमार्थ जीवन व्यतित करता हुआ और आध्यात्म गुण की निरन्तर वृद्धि करता हुआ आनन्दघन-दर्शन रूप आम्र वृक्ष से दिव्य अमृत फल की [मुक्ति की] आशा मे जी रहा है ।।६।।

यह प्रकृति का नियम है कि समय आने पर ही आम पकता है और कार्य की सिद्धि भी समय आने पर ही होती है ।

काल लब्धि की परिपक्वता पुरुषार्थ विना नही होती है । आम योग्य [illegible]त्र मे रोपण करने के पश्चात बराबर जल सिंचन, खाद डालने और बराबर

उसकी सम्भाल करते रहने के पश्चात ही समय आने पर—ऋतु आने पर पकेगा। यदि सिंचाई आदि नहीं की जावेगी तो आम शुष्क हो जावेगा—सूख जावेगा उसी प्रकार आत्मार्थी पुरुष निरन्तर प्रयत्न करता रहेगा—पुरुषार्थ करता रहेगा तो काललब्धि प्राप्त कर—समय आने पर आनन्द स्वरूप मोक्ष फल प्राप्त कर लेगा। वीतराग सत् पुरुष की आज्ञा अप्रमत होकर उत्साहित होकर आराधन करना ही काललब्धि प्राप्ति का प्रमुख उपाय है अर्थात् जो जिनेश्वर की आज्ञानुसार वैराग्य भाव से श्रद्धापूर्वक मद कषायी और मद विषयी होकर महाव्रतादि पालता हुआ आत्म भाव मे मग्न रहता है वह काललब्धि शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

हे जिनेश्वर भगवान ! मैं उस ही समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि कब मेरी काललब्धि परिपक्व हो और मुझे दिव्य नयन की प्राप्ति हो जिससे मुझे दिव्य दर्शन मिले। वह प्राप्ति मुझे देर अवेर अवश्य मिलेगी। हे कृपालुदेव ! ऐसी मुझे पूरी पूरी आशा है। कारण कि आपकी परम प्रीति—भक्ति रूपी बीज को मैंने अपने चित्त रूपी क्षेत्र मे रोपण कर लिया है तो आनदघन रूप आम्र फल अवश्य काललब्धि पाकर—समय आने पर—ऋतु आने पर पकेगा ही। इसी आशा के अवलम्बन से मैं जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

श्री सम्भव जिन स्तवन (३)

(राग-रामगिरी—रातडी रमीने किहां थी आविया, ए देशी)

सभव देव ते धुर सेवो सव रे, लहि प्रभु-सेवन भेद।
सेवन कारण पहिली भूमिका रे, अभय, अद्वेष, अखेद ॥स०॥१॥
भय चचलता जे परनामनी रे, द्वेष अरोचक भाव।
खेद प्रवृत्ति करता थाकिये, दोष अबोध लखाव ॥स॥२॥
चरमावर्तन चरमकरण तथा, भव परिणति परिपाक।
दोष टलै वलि दृष्टि खुलै भली, प्राप्ती प्रवचन वाक ॥स॥३॥

शब्दार्थ—धुर = ध्रुव, सर्व प्रथम । अभय = भयरहित, निर्भय । अद्वेप = द्वेप रहित । अखेद = खेद—दुख रहित । परणामनी = मनके भावो की । द्वेप = वैर । अरोचक = अरुचिकर । अबोध = अज्ञानता । लखाव = चिन्ह । चरमावर्तन = अन्तिम फेरा, जीव अखिल लोक के सम्पूर्ण पुद्गलो का स्पर्श व त्याग कर चुकता है, वह एक पुद्गल परावर्त्त है । इस एक पुद्गल परावर्त्त मे जीव अनन्त द्रव्य, भव, और भाव का स्पर्श व त्याग करता है। द्रव्य से अनन्त पुद्गल परमाणु, क्षेत्र से लोकाकाश के सर्व प्रदेश, काल से—

अनत अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी, भव से अनत जन्म मरण, और भाव से अनत अध्यवमाय स्थानो को यह जीव परावर्तता है। इस काल चक्र मे भ्रमण करता भव्यजीव किसी समय अतिम भ्रमण चक्र को प्राप्त कर लेता हैं। चरम करण = अतिम आत्म परिणाम विशेष, दाव । भवपरिणति = भवस्थिति। परिपाक = परिपक्व होना, पूर्ण होना । प्रवचन वाक = सिद्धान्त वाक्य । परिचय = सत्सग, प्रेम सवध। पातक = पाप। घातक = नष्ट करने वाला। अकुशल = खराब वृत्ति। अपचय = नष्ट होना । परिसीलन = भली भाति गहराई मे घुमकर पढना। मुग्ध = भोला, मूर्ख, भोगोपभोग मे आसक्त । याचना = माग, भिक्षा।

अर्थ—तृतीय जिनेश्वर देव श्री सम्भवनाथ की स्तवना करते हुये कवि कहते हैं—

मेवा का मर्म जानकर सब लोगो का पहला कर्तव्य श्री सम्भवनाथ जिनेश्वर देव की सेवा–भक्ति करना है। सेवा–भक्ति की प्राप्ति की प्रथम भूमिका—सोपान, निर्भयता, अद्वेष–प्रेम और अखेद है।

भगवान मम्भवनाथ की सेवा–भक्ति के लिए, साहस, प्रेम और आनद की अत्यन्त आवश्यकता है , इन तीनो गुणो के विना मनुष्य जीवन के किसी भी क्षेत्र मे मफल नही हो सकता। भय ईर्षा और शोक ये मनुष्य के महान शत्रु हैं। जव तक इन तीनो अतरग शत्रुओ पर विजय न प्राप्त करली जावे तव तक मनुष्य भगवद् भक्ति का अधिकारी नही हो सकता ॥१॥

मानसिक चचलता से भय, अरुचि से द्वेष और किसी प्रवृत्ति मे हतोत्साह होने से खेद–शोक उत्पन्न होता है। ये तीनो दोष अज्ञान के चिन्ह हैं। सप्त महाभयो से चित्त चचल होता है और उनके विमर्जन से अभय प्राप्त होना है। सत्कर्मो मे—धार्मिक कार्यो मे रुचि ही अद्वेष है। मैत्री भाव है। और मद्प्रवृतियो मे उत्साह पूर्वक–जागरूक होकर लगे रहना ही अखेद है, अर्थात् परमार्थवृत्तियो मे रस लेते हुए थकान न होना, दृढता न खोना ही

काज विना न करे जिय उद्यम, लाज विना रण माहि न झूझै।
डील विना न सधे परमारथ, सील विना सत सो न अरूझै॥
नेम विना न लहे निहचेपद, प्रेम विना रस रीति न बूझै।
ध्यान विना न थँमे मन की गति, ज्ञान विना शिव पथ न सूझै॥

(समयसार नाटक, महा कवि बनारसीदास)

कवि सेवा-भक्ति मार्ग की भिक्षा मागते हुये, सेवा—भक्ति मार्ग की कठिनता प्रदर्शित करते हैं—

भोले लोग सेवा-भक्ति को सुगम जानकर आदरते हैं—स्वीकार करते हैं किन्तु सेवा का मार्ग (उपासना) बडा ही अगम्य और अनुपम [बेजोड] है। हे ज्ञानानद रस से परिपूर्ण सभवदेव! मुझ सेवक को भी कभी यह सेवा (उपासना) प्रदान करना, यही इस सेवक की प्रार्थना है ॥६॥

उपासना भागवति सर्वेभ्योऽपि गरीयसी।
महापापक्षयकरी तथा चोक्त परैरपि॥ (श्रीमद्यशोविजय)

श्री अभिनन्दन जिन स्तवन (४)

(राग—धन्याश्री सिंधुओ— आज निहेजो रे दीसै नाहलो— ए देशी)

अभिनन्दन जिण दरसण तरसियै, दरसण दुरलभ देव।
मत मत भेदे जो जइ पूछियै, सहु थापे अहमेव ॥अभि०॥१॥
सामान्यै करि दरसण दोहिलूं, निरणय सकल विशेष।
मद मे घेर्यो हो आधो किम करै रवि ससि रूप विलेष ॥अभि०॥२॥
हेतु विवादे चित धरि जोइयै, अति दुरगम नयवाद।
आगम वादे, गुरु गम को नहीं, ए सबलो विषवाद ॥अभि०॥३॥
घाती डूंगर आडा अति घणा, तुझ दरसण जगनाथ।
धीठाई करि मारग सचरूं, सेंगू कोइ न साथ ॥अभि०॥४॥

शब्दार्थ—दरसण = दर्शन, देखना, साक्षात्कार। तरसिये = वस्तु प्राप्ति के लिये उत्कंठित होना या व्याकुल होना। मत मत = अलग अलग दर्शन वालो मे। मद्दु = मद। अहमेव = अहकार। दोहिलू = दुर्लभ। निरणय =निर्णय, निश्चय, फैसला। विलोय = जाच करना, बताना, विश्लेषण करना। घाती = मारक। डूगर=पहाड। घाती डूगर=चार घाती कर्म, ज्ञाना वरणी, दर्शनावरणी मोहनीय, अतराय। आडा = रुकावट, बीच मे, बाधक। धीठाई = धृष्टता। सचरू = सचरण करू, चलू। संगू = मार्ग दर्शक। रणरोझ = वन मे नील गाय की तरह, अरण्यरोदन। भाजे = भग होवे, दूर होवे, मिटै। तरस त्रास = कष्ट। सीझे = मफल हो।

अर्थ—श्री अभिनन्दन जिनेश्वर के लिए तरस रहा हूं। हे जिनेश्वर देव! आपका दर्शन बडा दुर्लभ है। (यहा 'दर्शन' शब्द मे श्लेप है) भिन्न २

दर्शन शास्त्रियो के पास जाकर पूछा, तो सबको अपने ही दर्शन के श्रेष्टत्व का गर्व करते देखा ।।१।।

दर्शन शास्त्र का सामान्य अध्ययन ही कठिन है, फिर सब का पढ कर निर्णय करना तो अत्यन्त ही कठिन है। नशे में गर्क (डूबा) हुआ अन्धा सूर्य और चन्द्रमा के बिम्ब को (रूप को) कैसे पहिचान सकता है ? ।।२।।

आपका दर्शन कैसे प्राप्त होगा ? इसके हेतुओ के विवाद मे (झझट मे) चित्त लगाकर देखा जाय तो नयवाद को समझना बहुत ही दुष्कर है। आगम के ज्ञाता सद्गुरु भी कोई नही मिल रहे हैं। इस लिए चित्त मे उद्वेग है—असमाधि है ।।३।।

हे त्रिभुवन स्वामी ! आपके दर्शन मे अन्तराय डालने वाले–बाधा डालने वाले अनेक घाती पर्वत (घाती कर्म-ज्ञाना वरणी, दर्शना वरणी, मोहनीय और अन्तराय) बाधक हो रहे है। यदि धृष्टता से (हिम्मत करके) मार्ग पर चलता हूँ तो कोई ज्ञानी का साथ भी नही मिलता है ।।४।।

हे नाथ! आपका दर्शन कैसे प्राप्त होगा ? यह लोगो से पूछता फिरता हूँ तो जगल की रोझ–गाय के समान लोग मुझे पागल समझते हैं। (रोझ गाय जगल मे प्यास से जिस प्रकार पानी के लिए भटकती फिरती है और पानी नही मिलता हैं उसी प्रकार दर्शन के लिए भटकता हुआ मैं हो रहा हूँ) जिसे आत्म साक्षात्कार रूपी अमृत पीने की इच्छा हो, उसकी पीपासा (प्यास) मतवादियो के सिद्धान्त रूपी विप से कैसे तृप्त हो सकती है ? ।।५।।

हे नाथ ! मुझे जीवन और मृत्यु से कुछ भी त्रास–कष्ट नही है। मुझे तो आपका दर्शन प्राप्त हो जाय तो मेरे सब कार्य सिद्ध हो जावें। हे अनन्त आनन्द के धनी ! यो तो आपका दर्शन बहुत ही दुर्लभ है किन्तु आपकी कृपा से तो बहुत सुलभ है ।।६।।

श्री सुमति जिन स्तवन (५)

(राग वसन्त तथा केदारो)

सुमति चरण कंज आतम अरपण, दरपण जिम अविकार । सुज्ञानी ।
मति तरपण बहु सम्मत जाणिये, परिसरपण सुविचार ॥सु०॥१॥

त्रिविध सकल तनुधर गत आतमा, बहिरातम धुर भेद ।सु०।
बीजो अन्तर-आतम, तीसरो, परमातम अविछेद ॥सु०॥२॥

आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहिरातम अघरूप ।सु०।
कायादिक नो साखीधर रह्यो अन्तर आतम रूप ॥सु०॥३॥

ज्ञानानन्दे पूरण पावनो, वरजित सकल उपाध ।सु०।
अतीन्द्रिय गुण गण मणि आगरू, इम परमातम साध ॥सु०॥४॥

बहिरातम तजि अन्तर आतमा, रूप थई थिर भाव ।सु०।
परमातमनु आतम भाववू, आतम अरपण दाव ॥सु०॥५॥

आतम अरपण वस्तु विचारता, भरम टलै मति दोष ।सु०॥
परम पदारथ सम्पति सपजै, आनन्दघन' रस पोष । सु०॥६॥

(५) पाठान्तर—राग— केदारो = कागरीयो करतार—ढाल ऐहनी (अ) कंज = कमल (अ) दरपण = दपण (अ) । तरपण = तर्पण (इ, ई) । परिसरपण = परिसपण (इ, ई) परसरपण (ऊ) । धुर = धुरि (अ, ई' उ) कायादिक = कायादिक नो (अ), अघरूप = अघभूप (अ) । आतमभूप=आतम रूप (अ, इ, ई, उ, ऊ) । वरजित = वर्जित (उ, ई) उपाध = उपाधि (अ, आ-उ, ऊ) । अतीन्द्रिय = अतिइन्द्रीय (अ) । गुण गुण = गुणि (अ) आगरू = आगरो (अ) । साध = साधि (अ, आ, उ) । तजि = तजी (अ, उ) तज (ऊ) । भाववू = वछु (ऊ) ।

शब्दार्थ—कँज = कज, कमल । अरपण = अर्पण करना, भेट करना । दरपण = मुख देखने का काँच । अविकार = विकार रहित, मलीनता रहित ।

मति = बुद्धि । तरपण = तर्पण, तृप्त करना । परिमपण = अनुगमन करना । त्रिविध = तीन प्रकार की । सकल = सब । तनुधर = शरीरधारी । गत = गई हुई, रही हुई । धुर = प्रथम । अविछेद = अखड, अविनाशी । अघ = पाप । साखीधर = साक्षी, गवाह, ज्ञाता, द्रष्टा । पावनो = पावन, पवित्र । वरजित = त्यक्त, छोडा हुआ । उपाव = उपाधि, विघ्न, बाधा । आगर = खान, खजाना । भाववू = विचारना । दाव = उपाय । भरम = भ्रम, सशय । परम पदारथ = मोक्ष । सपजे = प्रगटे, उत्पन्न होय ।

अर्थ—दर्पण के समान अविकारी और निर्मल श्री सुमतिनाथ जिनेश्वर के चरण कमलों मे आत्म समर्पण करता हूँ । यह बहुत लोगो के द्वारा मान्य और बुद्धि की तृप्ति करने वाला—सतोप करने वाला है । अत इस विचार का ही अनुगमन करना चाहिये ॥१॥

समस्त देहधारियो मे आत्मा की स्थिति तीन प्रकार से है । प्रथम बहिरात्मा, द्वितीय अन्तरात्मा और तृतीय अविछिन्न (अविनाशी-अखण्ट) परमात्मा ॥२॥

देहादिक पुद्गल पिंट को आत्म बुद्धि से ग्रहण करना (आत्मा समझना) पाप रूप वहिरात्म भाव है । देहादि के कार्यों मे साक्षी (गवाह) रूप से दर्शक हो कर रहने वाला ही राजा अन्तरात्मा है ॥३॥

सम्पूर्ण उपाधियो से रहित (अविकारी), परम पवित्र, ज्ञानान्द से परिपूर्ण (भरा हुआ) और इन्द्रियातीत (इन्द्रिये से न जाना जाने वाला) अनेक गुण रत्नो का खजाना, परमात्मा को समझो ॥४॥

वहिरात्म भाव (पुद्गलानन्द) को त्याग कर धैर्य पूर्वक अन्तराभिमुख हो अर्थात् आनन्द की खोज अपने अन्दर कर परमात्म स्वरूप का चिन्तन ही आत्म-समर्पण का श्रेष्ठ उपाय है ॥५॥

आत्मार्पण तत्व पर विचार करने से बुद्धि का महान दोप—सशय जाता रहता है । ज्ञान रूपी महान सपदा प्रगट होती है जो पूर्णानन्द-रस को पुष्ट करने वाली है ॥६॥

श्री सुमति जिन स्तवन (५)

(राग वसन्त या केदारो)

सुमति चरण कंज आतम अरपण, दरपण जिम अविकार। सुज्ञानी।
मति तरपण बहु सम्मत जाणिये, परिसरपण सुविचार ॥सु०॥१॥
त्रिविध सकल तनुधर गत आतमा, बहिरातम धुर भेद ।सु०।
बीजो अन्तर-आतम, तीसरो, परमातम अविछेद ॥सु०॥२॥
आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहिरातम अघरूप ।सु०।
कायादिक नो साखीधर रह्यो अन्तर आतम भूप ॥सु०॥३॥
ज्ञानानन्दे पूरण पावनो, वरजित सकल उपाध ।सु०।
अतीन्द्रिय गुण गण मणि आगरू, इम परमातम साध ॥सु०॥४॥
बहिरातम तजि अन्तर आतमा, रूप थई थिर भाव ।सु०।
परमातमनु आतम भाववू, आतम अरपण दाव ॥सु०॥५॥
आतम अरपण वस्तु विचारता, भरम टलै मति दोष ।सु०॥
परम पदारथ सम्पति सपजै, आनन्दघन रस पोष ।सु०॥६॥

(५) पाठान्तर—राग... केदारो = कागलीयो करतार—ढाल ऐहनी (अ) कंज = कमल (अ) दरपण = दर्पण (अ) । तरपण = तपण (इ, ई)। परिसरपण = परिसपण (इ, ई) परमरपण (ऊ) । धुर = धुरि (अ, ई' उ) कायादिक = कायादिक नो (अ), अघरूप = अघभूप (अ) । आतमभूप=आतम रूप (अ, इ, ई, उ, ऊ)। वरजित = वर्जित (इ, ई) उपाध = उपाधि (अ, आ-उ, ऊ)। अतीन्द्रिय = अतिइन्द्रीय (अ) । गुण गुण = गुणि (अ) आगरू = आगरो (अ) । साध = साधि (अ, आ, उ) । तजि = तजी (अ, उ) तज (ऊ) । भाववू = वछु (ऊ) ।

शब्दार्थ—कँज = कज, कमल । अरपण = अर्पण करना, भेट करना । दरपण = मुख देखने का कांच । अविकार = विकार रहित, मलीनता रहित ।

मति = बुद्धि । तरपण = तरंग, तृप्त करना । परिसपण = अनुगमन करना । त्रिविध = तीन प्रकार की । सकल = सब । तनुधर = शरीरधारी । गत = गई हुई, रही हुई । धुर = प्रथम । अविछेद = अखड, अविनाशी । अघ = पाप । साखीधर = साक्षी, गवाह, ज्ञाता, द्रष्टा । पावनो = पावन, पवित्र । वरजित = त्यक्त, छोडा हुआ । उपाध = उपाधि, विघ्न, वाधा । आगरु = खान, खजाना । भाववूं = विचारना । दाव = उपाय । भरम = भ्रम, सशय । परम पदारथ = मोक्ष । सपजे = प्रगटे, उत्पन्न होय ।

अर्थ—दर्पण के समान अविकारी और निर्मल श्री सुमतिनाथ जिनेश्वर के चरण कमलों मे आत्म समर्पण करता हूँ । यह वहुत लोगो के द्वारा मान्य और बुद्धि की तृप्ति करने वाला—सतोष करने वाला है । अत इस विचार का ही अनुगमन करना चाहिये ॥१॥

समस्त देहधारियो मे आत्मा की स्थिति तीन प्रकार से है । प्रथम वहिरात्मा, द्वितीय अन्तरात्मा और तृतीय अविछिन्न (अविनाशी-अखण्ड) परमात्मा ॥२॥

देहादिक पुद्गल पिंड को आत्म बुद्धि से ग्रहण करना (आत्मा समझना) पाप रूप वहिरात्म भाव है । देहादि के कार्यो मे साक्षी (गवाह) रूप से दर्शक हो कर रहने वाला ही राजा अन्तरात्मा है ॥३॥

सम्पूर्ण उपाधियो से रहित (अविकारी), परम पवित्र, ज्ञानान्द से परिपूर्ण (भरा हुआ) और इन्द्रियातीत (इन्द्रिये से न जाना जाने वाला) अनेक गुण रत्नो का खजाना, परमात्मा को समझो ॥४॥

वहिरात्म भाव (पुद्गलानन्द) को त्याग कर धैर्य पूर्वक अन्तराभिमुख हो अर्थात् आनन्द की खोज अपने अन्दर कर परमात्म स्वरूप का चिन्तन ही आत्म-समर्पण का श्रेष्ठ उपाय है ॥५॥

आत्मार्पण तत्व पर विचार करने से बुद्धि का महान दोप—सशय जाता रहता है । ज्ञान रूपी महान सपदा प्रगट होती है जो पूर्णानन्द-रस को पुष्ट करने वाली है ॥६॥

श्रीपद्मप्रभ जिन स्तवन (६)

(राग मारू तथा सिंधु चांदलिया सदेसा कहिजे म्हारा कंत ने रे, ए देशी)

पदम प्रभु जिन तुज मुज आंतरू, किम भाजे भगवन्त ।
करम विपाकै कारण जोइनै, कोई कहै मतिवन्त ।।पदम०।।१।।
पयइ ठिइ अणुभाग प्रदेशथी मूल उत्तर बहु भेद ।
घाती अघाती बंधोदयोदीरणा, सत्ता करम विछेद ।।पदम०।।२।।
कनकोपलवत पयडी पुरुष तणी, जोडि अनादि सुभाय ।
अन्य सजोगी जहं लगि आतमा संसारी कहवाय ।।पदम०।।३।।
कारण जोगे बाधे बधनै, कारण मुगति मुकाय ।
आश्रव संवर नाम अनुक्रमे हेयोपादेय सुणाय ।पदम०।।४।
जु जन करणे अतर तुझ पड्यो, गुण करणे करि भग ।
ग्रन्थ उक्ति करि पडित जन कह्यो, अन्तर भग सुअग ।।पदम०।।५।।
तुझ मुझ अन्तर अन्ते भाजसे, वाजस्यै मगल तूर ।
जीव सरोवर अतिशय वाधिस्ये आनन्दघन' रस पूर ।।पदम०।।६।।

(६) पाठान्तर—राग कतनेरे = ढाल सोहलानी (अ)। पदम = पद्म (इ, ई) प्रभ = प्रभु (अ, उ, ऊ)। आतरु = आतरो (अ, आ) भाजै = भाजे (अ, आ, ऊ)। जोइनै = जोयनै (ऊ)। पयई ठिई = पैडीठिई (अ)। वहु = विहूं (उ, ऊ)। वधोदयोदीरणा = वध उदय उदीरणा (अ) वध उदं दीरणा (आ) वधुदयदीरणा (इ, ई, उ, ऊ) सत्ता = सत (अ, उ, ऊ) पयडी = पयडि (इ, उ) पयड (ऊ)। जोडि = जोडी (अ, आ, उ, ऊ)। सुभाय = स्वभाव (ई, उ) सुभाव (ऊ)। अन्य = अनादि (अ), सजोगी = सयोगी (अ, आ, उ)। जहँ = जा (अ, आ) जिहां (उ, ऊ)। कहवाय = कहिवाय (उ, ऊ)।

जोगे = योगे (अ, आ उ)। वाधे = वधै (अ, उ)। ववनै = वध मे (उ)। कारण = मुकाय = मुगति कारण मू काय (ऊ)। हेयोपादेय = हेयोदेय (अ, आ, इ)। जु जन करणे = जै जिन कारण (अ) यु जन करणों (इ, ई) यु ज्जन (उ)। उक्ति = उकति (अ, आ, उ, ऊ)। युक्ति (ई)। अन्ते = अन्तए (अ, आ), अतर (इ ऊ)। 'उ' प्रति मे न 'अन्ते' है, न 'अतर' है। भाँजसे = भाजिस्यै (अ, आ) भाजस्ये (उ, ऊ)। वाजस्यं = वाजिस्यै (अ, आ), वाजसि (इ)। वाधिस्ये = वाघ से (इ) वावस्ये (उ)। वाधस्यै (ऊ)।

शब्दार्थ—आरू = अन्तर, फर्क। भाजै = नष्ट होय। विपाकै = फल। मतिवन्त = बुद्धिमान। पयइ = प्रकृति बध, कर्म पुद्‌गलो का स्वभाव। ठिई = स्थिति बध, कमत्त्व मे रहने का काल प्रमाण। अणुभाग=कर्म का रस, कर्म का बल। प्रदेश = कर्म समुदाय का विभाग। मूल = मुख्य। उत्तर = अवान्तर भेद। घाती = आत्मा के मूल गुणो (ज्ञानादि गुणो) को नष्ट करने वाले। अघाती = मूलगुणो को नाश न करने वाले तथा ससार मे परिभ्रमण कराने वाले कर्म। बधोदयोदीरणा = बध, उदय, उदीरणा, बध-कर्मों का आत्मा के साथ मिलाप। उदय-कर्म फल प्रवृति काल। उदीरणा=कर्मफल प्रवृति काल से पूर्व ही कर्मो को उदय के लिये खेच लेना। सत्ता=आत्मा के साथ कर्मो की मौजूदगी। विच्छेद=विच्छेद, नाश होना, अलग होना। कनकोपलवत=सोना और पत्थर के समान, सोना और पत्थर मिट्टी खान से एक साथ निकलती है उसी के समान। पयडी = कर्म प्रकृति। पुरुष तणी = आत्मा की। जोडी = साथ, सबध। सुभाय = स्वभाव से ही। आश्रव = कर्म ग्रहण का द्वारा। सवर = कर्म ग्रहण के मार्ग की रोक। हेयोपादेय = छोडने और ग्रहण करने योग्य। जु जन करणे = कर्मों से जुडना। गुण करणे = गुणो को ग्रहण करने पर। भग = नष्ट। उक्ति = कथन। सुअग = उत्तम उपाय। वाजस्यं = वजेंगे। तूर = तुरही, बाजा। अतिशय = अत्यन्त। वाधिस्यै = बढेगा।

अर्थ—हे पद्‌मप्रभ जिनेश्वर देव! आपका मेरा अन्तर किस प्रकार दूर होगा? कोई बुद्धिमान अन्तर के कारणो पर विचार कर उत्तर देता है—कर्म विपाक होने से-अर्थात् कर्म के कारण का अभाव होने पर॥१॥

स्वरूप मे स्थिरता। सुधारस = अमृतरस। जलनिधि = समुद्र। सेतु = पुल। सात महाभय = सात महान भय—इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात भय, आजीविका भय, अपयश भय, मरण भय, काम, क्रोध, मद, हर्ष, राग, द्वेष, और मिथ्यात्व भाव भय। अरिहा = कर्मशत्रु के नाशक, अर्हन्त। असमान = अनुपम, अतुल्य। निरजन = निर्लेप। वच्छलू = वत्सल, सब के हित कारी, कल्याण कारी। विसराम = विश्राम, सुख के स्थान। मद = गर्व। कल्पना = सकल्प विकल्प। दुरदसा = बुरी अवस्था, दुर्दशा, दुगछा, घृणा। विधि = विधाता, सन्मार्ग को स्थापित करने वाले। विरची = ब्रह्मा, आत्म गुणो की रचना करने वाले। विश्वभरू = विश्वम्भर, ससार मे आत्म गुणो को पोषण करने वाले। ऋषीकेस=इन्द्रियो के स्वामी। धणी = स्वामी। अभिधा = नाम, गुण निष्पन्न नाम।

अर्थ—श्री सुपार्श्वनाथ भगवान को भक्ति पूर्वक वन्दन (प्रणाम) करो। जो प्रभु सासारिक और अनन्त आत्मिक सुख और सम्पत्ति के हेतुभूत हैं। और जो शातरस (वैराग्य) रूपी अमृत के समुद्र एव ससार समुद्र को पार करने के लिए सेतु (पुल) के समान है ॥१॥

यह सातवें जिनेश्वर देव सातो ही महाभयो (सासारिक सात महा भय १ इहलोक भय, २ परलोक भय, ३ आकस्मिक भय, ४ आजीविका भय, ५ आदान भय, ६ अपयश भय, ७ मरणभय तथा आध्यात्मिक सात महा भय १ काम, २ क्रोध, ३ मद, ४ हर्ष, ५ राग, ६ द्वेष और ७ मिथ्यात्व) को टालने वाले—दूर करने वाले है। इसलिये सावधान होकर और मन लगाकर इन जिनेश्वर देव की सेवा धारण करो ॥२॥

यह जिनेश्वर देव उपद्रवो का सहार (नाश) करने वाले होने से 'शिव' हैं, कल्याणकारी होने से शकर है, आत्म साम्राज्य के शासक होने से 'जगदीश्वर' हैं, ज्ञानमय और आनन्द मय होने से 'चिदानद' हैं; अपने स्वरूप ऐश्वर्य को प्राप्त कर लिया है इसलिये 'भगवान हैं। राग—द्वेष विजयी होने से 'जिन', कर्म—शत्रुओं के नाशक होने से 'अरिहन्त', धार्मिक सस्था—चतुर्विध सघ

भगवान सुपार्श्वनाथ राग रहित हैं, मद, कामना, आसक्ति, अप्रीति, भय, शोक आदि मानसिक विकारों तथा निद्रा (नींद) तन्द्रा (ऊँघ), आलस्य आदि शारीरिक विकारों से मुक्त हैं इसलिए [illegible] योगवान् हैं अर्थात् सयोगी केवली अवस्था में मन, वचन तथा काया के योग आपको बाधा रूप नही है ॥५॥

पूजा (भक्ति) के परम पात्र होने से 'परम पुरुष', परमपद के पाने से 'परमात्मा' अनन्त शक्ति रूप ऐश्वर्य के धारण करने से 'परमेश्वर' पुरुषोत्तम हैं- 'प्रधान पुरुष' है। अत प्रामाणिक रूप से आप ही प्राप्त करने योग्य 'परम-पदार्थ है, सेवा-भक्ति करने योग्य 'परम इष्ट है और पूजने योग्य 'परम देव' स्वय सिद्ध है ॥६॥

द्वादशांगी रूप मुक्ति मार्ग के सर्जनहार होने विधि (विधाता), मोक्ष मार्ग का विधान रचने के कारण श्री सुपार्श्वनाथ भगवान ब्रह्मा हैं। आपका उपदेश आत्मिक गुणो का पोषण करता है अत आप 'विश्वम्भर' है। इद्रीय विजयी होने के कारण आप 'ऋसिकेश' एव जगत पूज्य होने से 'जगन्नाथ' है। हे स्वामी! आप पापो को हरण करने वाले है, पापो से छुटकारा दिलाने वाले हैं साथ ही परमपद-मोक्ष को प्रदान करने वाले स्वामी है ॥७॥

इस प्रकार इन अनेक अभिधाओ (नामो) के अतिरिक्त आपके अनेक गुण निष्पन्न नाम हैं, उन सब का विचार अनुभव गम्य है। जो इन अभिधाओ का यथार्थ स्वरूप जानता है उसे यह आनन्दघन सुपार्श्वनाथ भगवान आनन्द का आवतार ही कर देते हैं—आनन्द रूप ही बना देते है ॥८॥

श्री चन्द्रप्रभ जिनस्तवन (८)

(राग—केदारो, गौडी— कुमरी रोवै आक्रन्द करै, मुनै कोइ मुकावै—ए देशी)

चन्द्रप्रभ मुखचन्द सखी मुनै देखण दे, उपसम रस नो कद ।सखी०।
सेवै सुरनर इन्द सखी०, गत कलिमल दुख दद ॥सखी०॥१॥

सुहम निगोदे न देखियो सखी०, बादर अतिही विसेस ।सखी०।
पुढवी आऊ न लेखियो सखी०, तेऊ वाऊ न लेस ॥सखी०॥२॥

वनसपती अति घण दिहा, सखी०, दीठो नहीं दीदार ।सखी०।
वि ती चौरिंदी जल लीहा, सखी०, गति सन्नी पण धार ॥सखी०॥३॥

सुर तिरि निरय निवास मा, सखी०, मनुज अनारज साथ।
अपज्जता प्रतिभास मां, सखी०, चतुर न चढियो हाथ ॥सखी०॥४॥

इम अनेक थल जाणिये, सखी०, दरसण विन जिनदेव ।सखी०।
आगम थी मति आणिये, सखी०, कीजे निरमल सेव ॥सखी०॥५॥

निरमल साधु भगति लही सखी०, जोग अवचक होय ।सखी०।
किरिया अवचक तिम सही, सखी०, फल अवचक जोय ॥सखी०॥६॥

प्रेरक अवसर जिनवरू, सखी०, मोहनीय खय थाय ।सखी०।
कामित पूरण सुरतरू, सखी०, 'आनन्दघन' प्रभु पाय ॥सखी०॥७॥

(८) पाठान्तर—राग.. मुकावै=राग, केदारो गौडी (अ), कुमारी रोवे आक्रन्द करै, मुनै कोई मुकावै (आ, उ, ऊ)। यह स्तवन 'इ, ई प्रतियो मे इस प्रकार आरभ किया गया है—'देखण दे रे सखी मुनै देखण दें। चन्द्रप्रभ = चन्द्र प्रभु (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ)। मुनै = मौने (अ,) मोने (आ) । इन्द्र = वृन्द

इस मुखचन्द्र को मैंने सूक्ष्म निगोद मे नही देखा, और वादर निगोद मे तो खास तौर पर नही देखा। उसी भाति पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायू काय मे भी लेश मात्र नही देखा। (जव मैं वहाँ–इन उक्त स्थानो मे थी)। अव तो इस मनुष्य जन्म मे जहाँ मैंने उत्तम कुल, आदि प्राप्त किया है, मुझे चद्रप्रभ भगवान को देखने दे—लो लगाने दे। ॥२॥

वनस्पति मे भी दीर्घ काल तक इस मख चन्द्र के दीदार (दर्शन) नही हुए। द्वेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एव सज्ञी पचेन्द्रिय गतियो मे भी दर्शन के विना मैं जल रेखा के ममान निष्फल हो गई ॥३॥

देवलोक मे, तिर्यंच योनि मे, नर्क निवासो मे यह दिखाई नही पडा और अनार्य मनुष्यो की सगत के कारण दुर्लभ मनुष्य भव मे-जन्म मे-भी यह चतुर हाथ नही आया तो प्रतिभाम रूप अपर्याप्त अवस्था मे तो किस प्रकार हाथ आता अर्थात् किस प्रकार इस मुख-चद्र के दर्शन होते ॥४॥

इस प्रकार अनेक स्थल (स्थान) जिनेश्वर देव चन्द्रप्रभ के दर्शन विना व्यतीत हो गये। अव जिनागम से बुद्धि को निर्मल करके–चित्त शुद्धि करके प्रभु की निष्काम भाव से सेवा-भक्ति करो ॥५॥

कामना (इच्छा) रहित पवित्र साधुओ की भक्ति से अवचक (कुटिलता रहित) योग की प्राप्ति होती है। इम अवचक योग की क्रियाये (कार्य) भी उसी प्रकार अवचक–अमोघ–अचूक होती हैं और इसका फल भी निश्चय ही अवचक होता है। अर्थात् आत्म स्वरूप को प्राप्त सद्गुरु के योग से यह अवचक त्रिपुटी–निज स्वरूप को पहचानना योग, अवचकता स्वरूप की साधना, क्रिया अवचकता तथा स्वरूप को प्राप्त करना, फल अवचकता मिद्ध होती ॥६॥

एसे अवसर की प्राप्ति श्री जिनेश्वर देव के वचनो की प्रेरणा से मिलतीहै और उमकी अचिन्त्य शक्ति से प्रवल मोहतीय कर्म क्षय हो जाता है। ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान जो आनद के घन है उनके चरण कमल इच्छित फल देने वाले कल्प वृक्ष हैं ॥७॥

पूज रजीजै (अ), हरति=हरसै (अ) हरषै(आ, उ, ऊ) हरपि (उ, ई) । अहि-गम = अभिगम (उ) । घुर=धुरि (अ, आ, ई, उ) । थ[illegible]=थ[illegible] रे (उ) । अक्-खत=अक्षत (आ, इ, ई, उ, ऊ) । सुगधो = सुगधी (अ,) । मन = मनि (अ) मणि (कही कही) । अँग = अग (अ, आ, ई, उ, ऊ) । पूजा = पूज (अ) । एहनू = एहनु (अ, ई) दुइ = दो (इ, उ, ऊ) दोय (ई) । परपर रे=पारपर रे (अ) । प्रसत्ती = प्रसन्नी (आ, इ, ई) । सुगति = सुरगति (अ, आ,) सुर मदिर रे = सुन्दर रे (अ), सुम मन्दिर रे (इ) । अक्खत = अक्षत (आ, इ, उ, ऊ) । पइवो = पईवो (अ, आ, इ, ऊ) । निवेज = नेवज (अ) । नैवेद्य (आ, उ, ऊ) निवेद्य (इ, ई) । भरि रे = भर रे (अ, आ, ऊ) । तरि रे (उ) । मिलि = मिलिने (अ, उ) । भावे = भावै (अ, आ, ऊ) । तावे (उ), भविक = भुविक (उ) भवि (ऊ) । वरि रे = वर रे (अ, आ, इ, ऊ) । सतर = सत्तर (अ, उ) अठ्ठोत्तर = अठोत्तर (आ ऊ), अष्टोत्तर (इ, ई) । सत = सौ (अ,) । पुजा = पूज (अ), पूजा (आ, उ, ऊ) । तुरिय = तुरय (आ) तुरीय (उ) । उपसम = उवसम (अ) । खीण = क्षीण (इ, ई,) सयोगी रे = सँयोगी रे (इ, ई) । चउहा = चउदह (अ) । पूजा = पूज इम (अ,) पूजा इम (आ, उ, ऊ) । उतराभयणे = उत्तरभयणे (अ, आ, उ, ऊ) । सुभ = शुभ (इ, ई) । करसे = करस्सै (अ, आ, उ, ऊ) । लहसे = लहिस्यै (अ, आ, उ, ऊ) ।

शब्दार्थ—उलट = उल्लास, उमग । प्रह = प्रात काल । सुचि = पवित्र हरखि = प्रसन्नता पूर्वक, । देहरे = मदिर । दह = दश । तिग = तीन । पण = = पाच । अहिगम = अभिगम । साचवता = पूर्ण करके । धर = स्थिर । कुसुम = फून । अक्खत = अक्षत, चावल । वर = श्रेष्ट । वास = सुवास से । सुगधो = गधित । दुइ = दो । अनन्तर = अन्तर (फर्क) रहित, तुरत । परपर = परम्परा से, क्रम से । आणा = आज्ञा । प्रसत्ति = प्रसन्नता । सुगति = अच्छी गति (मनुष्य, देव) । सुर मन्दिर = वैमानिक देवो के मन्दिर (स्थान) । पइवो = दीपक । गध = केशर आदि । नेवज = नैवेद्य, वादाम आदि मेवे । अड विधि = अष्ट प्रकारी पूजा । भावे = भाव पूर्वक करो । भविक = भव्य जीव, मुक्ति मे जाने वाले प्राणी । सतर = सतरह । अठ्ठोतर = एक सौ आठ । दोहग =

सुगन्धित पुष्प, अखण्डित चावल, सुन्दर वासचूर्ण, सुगन्धित धूप, और दीपक यह पाच प्रकार की अग पूजा—जिन गुरु मुख से सुना है और आगम मे जिसके सबन्ध मे कहा गया है, मन की साक्षी से अर्थात् चित्त लगाकर करनी चाहिये ॥३॥

इस पूजा का फल दो प्रकार का होना, एक तो अनन्तर—अन्तर रहित—तत्काल प्रत्यक्ष मे, दूसरा परम्पर—परोक्ष—गत्यन्तर—भवान्तर मे। जिनाज्ञा का पालन और चित की प्रसन्नता, प्रत्यक्ष प्रथम फल है और दूसरा परोक्ष फल मुक्ति है वरना कम से कम उत्तम सामग्री युक्त मनुष्य भव या देवगति प्राप्त करना है ॥४॥

पुष्प, चावल, श्रेष्ठ धूप, दीपक, केशर चदनादि सुगधित पदार्थ, नैवेद्य (बादाम आदि) फल, और जल से भरा कलश—इस सामग्री से अग और अग्र पूजा दोनो मिलाकर आठ प्रकार की होती है।जल, गध और फूल से होनेवाली अग पूजा है और धूप दीप, अक्षत, नैवेद्य और फल से की जानेवाली अग्र पूजा है। जो भव्य प्राणी भाव पूर्वक (भक्ति पूर्वक) ये पूजाये करता है वह शुभ गति प्राप्त करता है ॥५॥

सतरह भेदी, इक्कीस प्रकारी और एक सौ आठ भेद वाली अनेक पूजाये हैं तथा भाव पूजा के भी (चैत्यवन्दन, स्तवन, जाप आदि) अनेक भेद निर्धारित किये गये हैं ये सब पूजायें दुख और दुर्गति का छेदन (नाश) करती हैं ॥६॥

इस प्रकार पूजा के तीन भेद—अग पूजा, अग्र पूजा और भाव पूजा ऊपर कही जा चुकी है। पूजा का चौथा भेद प्रतिपत्ति पूजा है । प्रतिपत्ति का अर्थ है अगीकार (स्वीकार) करना जिनाज्ञा का अनुसरण, समर्पण भाव जहाँ ध्यान, ध्यता और ध्येय का लोप हो जाता है ऐसी प्रतिपत्ति यथाख्यात चारित्र, उपशात मोह,क्षीण मोह एव सयोगी अवस्था मे होती है जिसका वर्णन (चौथी पूजा का वर्णन) केवल ज्ञान के भोगी भगवान ने उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है ॥७॥

इस प्रकार पूजा के अनेक भेद कहे हैं जिन्हे श्रवण करके जो भव्य प्राणी इस आनन्द दायक शुभ करणी (कार्य) को करेगा, वह निश्चय ही आनन्दघन पद–धरणी (मोक्ष) को प्राप्त करेगा ॥८॥

श्री शीतल जिन स्तवन (१०)

\ राग–धन्याश्री गौडी गुणह विसाला मगलिकमाला–ए देशी)

जिनपति ललित त्रिभगी, विविध भगि मन मोहे रे ।
कोमलता तीक्षणता, उदासीनता सोंहे रे ॥शी०॥१॥

सर्व जीव हित करणी करुणा, कर्म वीदारण तीक्षण रे।
हानादान रहित परिणामी, उदासीनता वीक्षण रे ॥शी०॥२॥
परदुःख छेदन इच्छा करुणा, तीक्षण पर दुःख रीझे रे।
उदासीनता उभय विलक्षण, एक ठामि किम सीझे रे ॥शी०॥३॥
अभय दान ते मलक्षय करुणा, तीक्षणता गुण भावे रे।
प्रेरण विण कृत उदासीनता, इम विरोध मति नावे रे ॥शी०॥४॥
शक्ति व्यक्ती त्रिभुवन प्रभुता, निग्रंथता संयोगे रे।
योगी भोगी वक्ता मौनी, अनुपयोगि उपयोगे रे ॥शी०॥५॥
इत्यादिक बहुभंग, त्रिभंगी, चमत्कार चित्त देती रे।
अचरज कारी चित्र विचित्रा, 'आनन्दघन' पद लेती रे ॥शी०॥६॥

(१०)पाठान्तर—राग [illegible] जु'गिर (अ), [illegible] विशाला मगलिक माल (आ, उ, ऊ) भंगि=भग (अ,आ) भंगी (उ, ऊ)। जीव= जन्तु (अ,आ,उ,ऊ)। तीक्षण = तिक्षण (अ)। [illegible] (अ)। तीक्षण = तीक्ष्यण (अ)। उदासीनता = [illegible] (अ)। पर = [illegible] (अ)। ठामि = ठामैं (अ) ठाम (उ, ऊ) ठाम (उ)। ते मल... करुणा = मलक्षय फल करुणा (अ), ते करुणा मलक्षय (उ), निम लक्षण करुणा (टीका)। विण = विनु (अ, उ) विन (आ, उ)। कृत = कृति (उ, उ)। मति = मति (अ)। शक्ती व्यक्ती = शक्ति व्यक्ति (अ, आ, उ, उ)। निग्रंथता = निग्रथता (अ, आ, ऊ)। संयोगे = संयोगी (अ,आ)। अनुपयोगि=अनुपयोगी (उ) अनुपयोग (ऊ)। उपयोगे = उपयोगी (अ, आ)। चमत्कार = चमतकार (आ, उ,ऊ)। अचरज = अचरिज (अ,) अचिरिज (उ) अचिरज (ऊ)।

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर। त्रिभंगी = तीन प्रकार की भंगीमा (झुकाव) वाले। तीक्षणता = तीक्ष्णता, उग्रता, प्रचण्डता। उदासीनता = अलिप्तता। वीदारण = चीरने फाडने मे, काटने मे। हानादान = त्याग और ग्रहण। परि-णामी = भाव वाले, विचार वाले। वीक्षण = देखना। रीझे = प्रसन्न होते हैं।

उभय = दोनो । विलक्षण = विचित्र, अद्भुत, अनूठा । ठामि = स्थान । सीझे रे = सिद्ध होना, सफल होना, रहना । मलक्षय = कर्म मल को नष्ट करना । प्रेरणा = प्रेरणा, कार्य मे लगाना ।

अर्थ—दसवें जिनेश्वर देव श्रीशीतलनाथ भगवान की त्रिभगी बडी लालित्य पूर्ण है जिसकी विविध भगिमा सब के मन को मोहित करनेवाली है भगवान श्रीशीतलनाथ मे करुणा रूपी कोमलता के साथ तीक्ष्णता भी है और इन दोनो से सर्वथा विलक्षण उदासीनता भी शोभायमान है ॥१॥

सब जीवो पर हित बुद्धि रूप करुणा भगवान शीतलनाथ की कोमलता है। ज्ञानावरणी आदि कर्मो को नष्ट करने में जो कठोरता (दृढता) है यह इनकी 'तीक्ष्णता' है। आप वस्तु के त्याग व ग्रहण परिणामो से रहित हैं अर्थात् समपरिणामी—मध्यस्थभावी है, यह आपकी अद्भुत उदासीनता है ॥२॥

दूसरो के दुख नष्ट करने की इच्छा आपकी करुणा है । पर दुख—पौद्गलिक दुखो मे प्रसन्नता, यह आपकी 'तीक्ष्णता' है। अर्थात् परिषह सहन मे प्रसन्नता ही आप की तीक्ष्णता है। कोमलता और तीक्ष्णता इन दोनो से भी विलक्षण (अद्भुत) आपकी 'उदासीनता' है। ये तीनो विरोधी भाव एक ही साथ एक स्थान मे कैसे सिद्ध हो सकते है-कैसे सभव है ? परन्तु जो आत्मानन्द मे रमण करते हैं उनमे ये सब सम्भव हैं। (यह व्याख्या है) ॥३॥ (ऊपर के पद का उत्तर है—)

कर्मरूपी मल से सब जीव त्रस्त हैं-(भयभीत हैं), जन्म मरण रोग, शोक आदि से भयभीत हैं । भगवान के उपदेश से सब अभय बनते हैं यह अभयदान रूप आपकी 'करुणा' है। आत्मिक गुणो मे—भावो मे दृढता यह आपकी 'तीक्ष्णता' है। शारीरिक कष्ट (२२ परिषह) से विचलित नही होते अपितु इन्हें प्रसन्नता पूर्वक सहन करते हैं, यह परदुख—रीझन रूप तीक्ष्णता है। ये सब करुणामय और कठोरतामय प्रवृति बिना किसी प्रेरणा के स्वाभाविक रूप से होती है यह आपकी 'उदासीनता' है ॥४॥

(१) चित्त वृत्ति के निरोध मे एव तेरहवे गुणस्थान सयोगी केवली अवस्था मे मन, वचन काया के योग होने से भगवान योगी है। (२) आत्म-रमणता रूप सुख भोगने से भगवान भोगी है। (३) मन, वचन, और काया के योग, कर्मक्षय के कारण बाधा उपस्थित नही करते अत भगवान 'अयोगी है और इन्द्रिय जन्य विषयों के त्यागी होने से अभोगी है।

(१) द्वादशागी शास्त्र के कथन से 'वक्ता', (२) पापाश्रव सबधी वचन न कहने से 'मौनी', (३) अनत तीर्थंकर देव अनत काल से जो कहते आये है, वही आपने भी कहा है, उससे न्यूनाधिक नही कहा, यह आपका 'अवक्त-पन' है और धर्म तीर्थ के प्रवर्तन के लिये देशना देना आपका 'अमौनी-पन' है।

(१) अनत पदार्थ विना उपयोग दिये आपको केवल ज्ञान से प्रत्यक्ष है अत. आप अनुपयोगवन्त है। (२) आपके ज्ञान व दर्शनोपयोग है इसलिये आप उपयोगवन्त है। (३) योग रुधन के पश्चात सिद्धावस्था मे ज्ञान दर्शन का उपयोग अनुपयोग करने का कोई हेतु नही रहता अत आप न उपयोगी, न अनुपयोगी हैं। इस प्रकार श्री शीतलनाथ भगवान मे त्रिभगियो के सयोग की सभावना बताई गई है ॥५॥

इन त्रिभगियो के और भी अनेक भेद कहे जा सकते हैं क्योकि भगवान मे अनत गुण हैं। ये त्रिभगिये चित्त मे चमत्कार उत्पन्न करती है। आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हैं। ये विविध प्रकार की चित्र-विचित्र त्रिभगियें आनन्दघन रूप मोक्ष पद को प्राप्त करती है ॥६॥

श्री श्रेयांस जिन स्तवन (११)

(राग-गौडी-अहो मतवाने साजना-ए देशी)

श्री श्रेयास जिन अतरजामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुगति गति गामी रे ॥श्री श्रे०॥१॥
सयल संसारी इद्रियरामी, मुनिगण आतमरामी रे।
मुख्य पणे जे आतमरामी, ते केवल निक्कामी रे ॥श्री श्रे०॥२॥
निज सरूप जे किरिया साधै, ते अध्यातम लहिये रे।
जे किरिये करि चउ गति साधै, ते न अध्यातम कहिये रे ॥श्री श्रे॥३॥
नाम अध्यातम ठवण अध्यातम, द्रव्य अध्यातम छडो रे।
भाव अध्यातम निज गुण साधै, तो तेह थी रढ मडो रे ॥श्री श्रे॥४॥
शब्द अध्यातम अरथ सुणी नै, निरविकलप आदरज्यो रे।
शब्द अध्यातम भजना जाणी, हान-ग्रहण मति धरज्यो रे
॥श्री श्रे०॥५॥

शब्दार्थ—आतमरामी = आत्मस्वरूप में रमण करने वाले। नामी = प्रसिद्ध, श्रेष्ठ नाम वाले। अध्यातम = आध्यात्मिक, [illegible]। मत = तत्व। पामी = प्राप्त करके। गामी = जाने वाले। परम = परम, पर। इन्द्रियरामी = इन्द्रिय सुख में रमण करने वाला। निष्कामी = निष्कामी, कामना रहित। चउगति = चारों गतियां—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। ठवण = स्थापना। रढ = रटना, प्रीति। निरविकल्प = विकल्प रहित, शंका रहित। भजना = होय अथवा न होय। हान = त्याग। मति = बुद्धि, धारणा (मति ज्ञान का भेद) बीजा = दूसरे। लबरामी = लबाड़, लबार, बकवास करने वाले। मत = मान्यता, सिद्धान्त। वासी = रहने वाले।

अर्थ—श्री श्रेयांसनाथ भगवान अन्तर्यामी हैं आत्म गुणों में रमण करने वाले सुप्रसिद्ध हैं। आपने आत्मतत्त्व को पूर्णरूप से प्राप्त करके, सहज स्वाभाविक भाव से परम गति—मोक्ष गति प्राप्त करली है ॥१॥

सम्पूर्ण ससार के प्राणी तो इद्रिय सुखो मे लीन रहते है। केवल मुनि गण ही आत्मिक सुख मे रमण करने वाले–लीन रहने वाले हैं। जो लोग पुद्गलानन्द मे रस न लेकर मात्र आत्मानन्द मे मग्न रहते हैं केवल वे ही कामना रहित–निस्पृह होते हैं ॥२॥

स्वरूपानुयायी–जो आत्मार्थी मुमुक्षु इस लोक और परलोक के सुखो की कामना त्याग कर आत्मार्थ ही क्रिया करता है वह अध्यात्म को प्राप्त करता है किन्तु जो धन, कीर्ति, पूजा, सत्कार आदि की कामना से इहलोक और परलोक सम्बन्धी क्रिया करते हैं वे चतुर्गति रूप भव–भ्रमण की साधना करते हैं, उन्हे अध्यात्मी नही कहना चाहिये ॥३॥

गुण बिना केवल नाम मात्र अध्यात्म शब्द को, कल्पित स्थापना–अध्यात्म को और दिखावे रूप–आध्यात्म क्रिया रूप–द्रव्य अध्यात्म को छोडो और आत्म गुण ज्ञान दर्शन रूप भावना, भाव अध्यात्म है उसी की साधना करो–उसमे पूर्ण रूप से लग जावो–मग्न हो जावो ॥४॥

गुरुमुख से अध्यात्म शब्द का अर्थ सुनकर, विकल्प रहित–सकल्प विकल्प रहित शुद्ध आत्म भाव को ग्रहण करो। मात्र अध्यात्म शब्द–'अह ब्रह्मास्मि', 'सोऽहं' आदि मे अध्यात्म है अथवा नही है इसे समझ कर अर्थात् अध्यात्म शब्द मे आध्यात्मिकता नही, वह भाव मे ही है इसे जानकर क्या त्यागने योग्य है, क्या ग्रहण करने योग्य है, इसमे अपनी बुद्धि लगावो ॥५॥

आत्मवस्तु के विचारक ही आध्यात्मी हैं–साधु–सत–मुनि है, शेष दूसरे तो केवल लबासी हैं–बकवास करने वाले भेषधारी हैं। वस्तु मे रहे हुये गुण व पर्यायो को स्पष्टतया यथार्थ रूप से जो प्रकट करते हैं वे ही आनन्दघन प्रभु के सप्तनयाश्रित मत के वासी हैं–रमण करने वाले है।

श्री वासुपूज्य जिन स्त (१२)

(राग–गौडी–तु गिया गिर सिखर सोहै ए देशी)

वासपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घणनामी परणामी रे।
निराकार साकार सचेतन, करम करम फल कामी रे ॥वास०॥१॥

साधु । बीजा = दूसरे, अन्य । द्रव्यलिंगी = वेशधारी, साधु का केवल भेष धरने वाले ।

अर्थ—श्रीवासुपूज्य भगवान तीनों ज्ञान के स्वामी हैं और अनेक नाम वाले हैं। भगवान ने आत्मा को परिणामी, (आत्मगुणों में परिणमन करने वाली) साकार एवं निराकार उपयोग वाली, चैतन्य रूप, कर्म का कर्त्ता और फल का भोक्ता कहा है ॥१॥

अभेद को ग्रहण करने वाले दर्शनोपयोग को निराकारोपयोग—सामान्योपयोग और भेद को ग्रहण करने वाले ज्ञानोपयोग को साकारोपयोग—विशेषोपयोग कहते हैं। इस प्रकार चेतना के 'दर्शन और ज्ञान' यह दो भेद हैं। इस चैतन्य व्यापार से ही यह आत्म वस्तु ग्रहण की जाती है—पहचानी जाती है। अथवा इस चैतन्य वस्तु से ही आत्मा वस्तुओं को देखता जानता है ॥२॥

विशेष—अभेद को ग्रहण करने वाले द्रव्य नय की अपेक्षा आत्मा निराकार औरभेद को ग्रहण करने वाले पर्याय नय की अपेक्षा आत्मा साकार है। चेतना के 'ज्ञान और दर्शन' दो भेद हैं। वस्तु के जानने और देखने का कार्य इन्हीं द्वारा सम्पन्न होता है।

प्रत्येक द्रव्य सामान्य और विशेषात्मक होता है। चेतन भी द्रव्य है, इसलिए वह भी सामान्य और विशेषात्मक है। उसके दो रूप दर्शन और ज्ञान हैं। वह दर्शन-ज्ञान को कभी त्यागता नहीं है। दर्शन उसका सामान्य स्वरूप है तथा ज्ञान उसका विशेष स्वरूप है। सामान्य उपयोग दर्शन है, विशेष उपयोग ज्ञान है।

श्री विमल जिन स्तवन (१३)

(राग मल्हार—इडर आंबा आंबली रे, इडर दाडिम दाख—ए देसी)

दुख दोहग दूरैं टल्या रे सुख सम्पत सूं भेट।
धींग धणी माथै कियो रे कुण गंजै नरखेट॥
विमल जिन दीठा लोयणे आज म्हारा सीझ्या वंछित काज
॥विमल०॥१॥

चरण कमल कमला बसै रे, निरमल थिर पद देख।
समल अथिर पद परिहरी, पंकज पामर पेख ॥विमल०॥२॥
मुझ मन तुझ पद-पंकजे रे लीनो गुण-मकरंद।
रंक गिणे मंदर धरा रे, इन्द्र चन्द नागिन्द। वमल०॥३॥
साहब समरथ तू धणी रे, पाम्यो परम उदार।
मन विसरामी बाल हो रे आतम चो आधार ॥विमल०॥४॥
दरसण दीठे जिन तणो रे संशय रहे न वेध।
दिनकर कर भर पसरता रे, अंधकार प्रतिषेध ॥ि मल० ५॥
अमी भरी मूरति रची रे उपमा घटै न कोय।
शांत सुधारस झीलती रे निरखत तृपति न होय ॥विमल० ।६॥
एक अरज सेवक तणीं रे, अवधारो जिनदेव।
क्रिपा करी मुझ दीजिये रे, 'आनन्दघन' पद सेव ॥विमल०॥७॥

(१३) पाठान्तर—'राग मल्हार' शब्द आ, उ, ऊ, प्रतियो मे नही है। 'अ' प्रति में यह स्तवन 'विमल जिनेसर' आदि से आरम्भ होता है। सूं = सु (अ, आ), स्यु (उ)। कियो रे = किया रे (अ, आ, उ, ऊ)। नरखेट = जनखेट (अ)। जिन = जिनेसर आज दीठा लोयणे (अ)। म्हारा = म्हारा (आ, ऊ)। सीझ्या = सीधा (आ, उ)। 'म्हारा सीझ्या वंछित काज'

कमल को तुच्छ, मैला, क्षण स्थायी और घृणित कीचड सहित देखकर लक्ष्मी ने उस स्थान को छोड दिया है और आपके चरण रूपी कमल को निर्मल और स्थिर स्थान वाला देखकर वहाँ अपना निवास कर लिया है ॥१॥

मेरा मन रूप भ्रमर (भौरा) आपके चरण कमल के गुण रूपी पराग मे लवलीन है–मग्न है। यह मेरा मन इन्द्र, चन्द्र और नागेन्द्र आदि के महान पदो एव मेरू पर्वत की स्वर्ण भूमियो को इन चरणो की तुलना मे तुच्छ गिनता है–समझता है ॥३॥

हे नाथ ! आप सब प्रकार से सामर्थ्यवान है। आप जैसा महान उदार स्वामी मुझे प्राप्त हुआ है। आप मनके विश्राम रूप है, जहा मेरा मन विश्राम लेता हैं–ठहरता है। आप मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी आत्मा के आधार और निज स्वरूप प्राप्ति के साधन, ध्येय हैं। मैंने आज ज्ञान-चक्षुओ से आप के दर्शन कर लिये है ॥४॥

हे जिनेश्वर देव ! जिस प्रकार सूर्य की किरणो के फैलने से अन्धकार (अन्धेरा) रुक जाता है–लुप्त हो जाता है, उसही प्रकार आपके दर्शनो से सशय अश्रद्धा, अज्ञानादि का मूलोच्छेद हो जाता है ॥५॥

आपकी मूर्ति अमृत रस से भरी हुई है जिस पर कोई उपमा घटित ही नही होती अर्थात् यह अनुपमेय है। इसमे प्रशम रस रूप सुधा रस झकोले खा रहा है–उमड रहा है जिसे निरख निरख कर–देख देख कर–कभी तृप्ति नही होती है–मन नही भरता है ॥६॥

हे जिनेश्वर देव ! इस सेवक की एक ही विनय है उसे आप स्वीकार कीजिये। हे प्रभो ! कृपा पूर्वक मुझे आनन्दघन रूप परम पद की सेवा दीजिये ॥७॥

श्री अनन्त जिन स्तवन (१४)

(राग–रामगिरी कडखो)

धार तरवार नी सोहिली, दोहिली चउदमा जिन तणी चरण सेवा।

ऊ)। नयण = नयणि (उ)। निरपेख = निरपेखि (अ), निरपेक्ष (आ, इ, ई, उ, ऊ)। सापेख = सापेखि (अ), सापेक्ष (आ, इ, ई, उ, ऊ)। आदरी = आचरी (अ)। किम = किमि (उ)। श्रद्धान = सरधान (अ)। आणो = टाणो (अ, आ)। करी = सही (अ, आ) कही (उ)। लीपणो = लीपणा (अ, आ)। तेह = सरिस (अ, आ)। जिस्यो = जिसो (अ, आ, उ, ऊ)। जग = जगि (अ)। अनुसार = अनुसारि (उ)। परिखो = परपो (ऊ)। सक्षेपथी = सखेपथी (अ)। चित्तमा = चित्त मे (अ, आ, उ, ऊ)। नित्य = नित्त (अ, आ, ऊ)। भावै = भावै (,)। ते नरा... अनुभवी = ते नरा काल बहु दिव्य सुख भोगवी (अ), ते नरा काल बहु दिव्य सुख अनुभवी (आ)।

शब्दार्थ—सोहिली = सरल। दोहिली = कठिन। देवा = देवता भी। लोचन = आख। बापडा = बेचारा, अज्ञानी। रडवडे = भटकते है। गच्छना = समुदाय के। निहालता = देखते हुये। उदर = पेट। मोह नडिया = मोह मे फँसे हुये, मोहाधीन, मोह से बधे हुये। निरपेख = निरपेक्ष, अपेक्षा रहित, तटस्थ। सापेख = सापेक्ष, अपेक्षा सहित, जिन वचन अनुसार। साँभली = सुनकर। राचो = प्रसन्न होना। आदरी = ग्रहण करके। काइ = क्या, कुछ भी। श्रद्धान = विश्वास, प्रतीति। आणो = प्राप्त करो, लावो। छारि = धूलपर। लीपणो = लीपना। उत्सूत्र = सूत्र के विपरीत, जिनवचन के विरुद्ध। सूत्र = आगम शास्त्र। सरिखो = समान। परिखो=परीक्षा करो।

उत्सूत्र-भाषण--आगम विरुद्ध भाषण-के समान ससार मे कोई पाप नही है और आगम के अनुसार कथन और आचरण के समान कोई धर्म नही है। सूत्र—आगम के अनुसार जो भव्य प्राणी क्रियाये करता है उसके चरित्र (चारित्र) को ही शुद्ध समझना चाहिये ॥६॥

(जो मनुष्य आगमो के अर्थ का मृषा उपदेश देता है उसकी शुद्धि प्रायश्चित से भी नही हो सकती है क्योकि जो व्यक्ति अपने व्रतो को भग करता है उनसे तो वह केवल अपनी ही आत्मा को मलीन करता है किन्तु जो सिद्धात ग्रन्थो का मृषा उपदेश देता है वह दूसरी अनेक आत्माओ को मलीन करता है ससार-समुद्र मे डुबोता है अत इसके समान कोई दूसरा पाप नही है।)

यह जिनेश्वर देव के कथित उपदेश का सार-सक्षेप है। जो व्यक्ति इस आर्ष धर्म का चित्त मे प्रति समय विचार रखेगा, वह बहुत समय तक दिव्य (अनोखे) सुख का अनुभव करके निश्चय ही अनन्त आनन्द का राज्य-मोक्ष प्राप्त करेगा ॥७॥

श्री धर्म जिन स्तवन (१५)

(राग—गोडी सारग रसियानी देशी)

धरम जिनेसर गाऊ रग सू भगम पडज्यो हो प्रीत।
बीजो मन मन्दिर आणू नहीं, ए अम्ह कुलवट रीत ॥धरम०॥१॥
धरम धरम करतो जग सहु फिरै, धरम न जाणै हो मर्म।
धर्म जिनेसर चरण ग्रह्यां पछी, कोइ न बंधै हो कर्म ॥धरम०॥२॥
प्रवचन अजन जो सद्गुरु करै, देखे परम निधान।
हृदय नयन निहालै जग धणी, महिजा मेरु समान ॥धरम०॥३॥
दोडत दोडत दोडत दोडियो, जेती मननी हो दौड।
प्रेम प्रतीति विचारो ढूकडी, गुरुगम लीज्यो हो जोड ॥धरम०॥४॥

शब्दार्थ—रग सू = आनन्द से, आत्म भाव मे लीन होकर। भग = बाधा। म = नही। बीजो = दूसरा। आणू = लाऊ। अम्ह = हमारी। कुल-वट = कुल (वश) परम्परा। सहु = सब। मर्म = रहस्य। पछी = पीछे। निधान = खजाना। निहालं = देखे। धणी = स्वामी। महिमा = यश, कीर्ति ढूकडी = समीप, नजदीक। एक पखी = इक तरफा, एकांगी। उभय = दोनो। सधि = मिलाप। निरवध = वध रहित। आगलै = आगे, सम्मुख। पुलाय = दौडना। रोहण = रोहणाचल। भूधरा = पर्वत। वर = श्रेष्ठ। कज = कज कमल। सांभलो = सुनो। अरदास = प्रार्थना।

अर्थ—भक्ति-रग मे रग कर मैं श्रीधर्मनाथ जिनेश्वर का स्तवन-गायन करता हूँ। हे प्रभो! आपके प्रति मेरी भक्ति है, वह कभी टूटे नही, यही मेरी प्रार्थना है। मेरे मन-मन्दिर मे आपके अतिरिक्त किसी दूसरे को कोई स्थान नही है। यही हमारा कुलधर्म है—यही आत्मस्वभाव है ॥१॥

यह ससार धर्म, धर्म-मुनि धर्म, यति धर्म, सन्यास धर्म, गृहस्थ धर्म आदि धर्म करो धर्म करो कहता हुआ फिर रहा है किन्तु यह धर्म के मर्म को-रहस्य को-जरा भी नही जानता।

'वस्तु स्वभावो धर्म'। स्वभाव परिणति ही धर्म है। अत निज स्व-रूप रूप धर्म मे परिणमन करने वाले धर्मनाथ जिनेश्वर के चरण पकडने के पश्चात-चारित्र का अनुसरण करने के बाद-कोई भी नवीन पाप कर्म नही बाँधता है ॥२॥

सद्गुरु कृपा करके प्रवचन रूपी अचन जिस किसी के हृदय रूपी नेत्रो मे आजते हैं-लगाते हैं-तो वह स्व स्वरूप रूपी परम निधान (खजाना) को देख लेता है। हृदय नेत्रो से उस जगतपति को वह देखता है जिसकी महिमा (यश) मेरू के समान है ॥३॥

मन अपनी दौड-कल्पना शक्ति के अनुसार चारो और जितना दौड सकता था-दौडा किन्तु कस्तूरीमृग के समान उसका चारो ओर दौडना व्यर्थ

शाति सरूप किम जाणिये, कहो मन किम परखाय रे ॥शाति०॥१॥
धन्य तू जेहने एहवो, हुओ प्रश्न अवकास रे।
धीरज मन धरि साभलो, कहूँ शान्ति प्रतिभास रे ॥शाति०॥२॥
भाव अविशुद्ध सविशुद्ध जे,कह्या जिनवर देव रे।
ते तिम अवितत्थ सद्दहे,प्रथम ए शान्ति-पद सेव रे ॥शा०॥३॥
आगम धर गुरु समकिती, क्रिया सम्बर सार रे।
सम्प्रदायि अवचक सदा, सुचि अनुभवाधार रे ॥शा०॥४॥
शुद्ध आलम्बन आदरै, तजि अवर जजाल रे।
तामसी वृत्ति सवि परिहरि, भजे सात्विकी साल रे ॥शा०॥५॥

फल विसवाद जेहमा नहीं, शब्द ते अर्थ सम्बन्धि रे।
सकल नयवाद व्यापि रह्यो, ते शिव साधन सधि रे ॥शान्ति०॥६॥
विधि प्रतिषेध करि आतमा, पदारथ अविरोध रे।
ग्रहण विधि महाजन परिग्रह्यू , इस्यो आगमे बोध रे ॥शान्ति०॥७॥
दुष्ट जन सगति परिहरी, भजे सुगुरु सतान रे।
जोग सामर्थ चित भावजे, धरै मुगति निदान रे ॥शान्ति०॥८॥
मान अपमान चित्त सम गिणै, सम गिणै कनक पाखान रे।
बदक निन्दकहु सम गिणै, इस्यो होय तू जान रे ॥शान्ति०॥९॥
सर्व जग जन्तु नै सम गिणै, गिणै त्रिण मणि भाव रे।
मुगति ससार बुधि सम धरै, मुणै भव-जलनिधि नाव रे ॥शा०॥१०॥
आपणो आतम भावजे, एक चेतना धार रे।
अवर सवि साथ सजोगथी, ए निज परिकर सार रे ॥शा०॥११॥
प्रभु मुख थी इम सांभली, कहै आतमराम रे।
थाहरै दरसणे निस्तर्यो, मुझ सीधा सवि काम रे ॥शां०॥१२॥

आ), नमगरो (उ)। वदक निन्दकहु = निन्दक वदक (अ), वदक निन्दक (आ, उ, ऊ) इस्यो = इसो (अ, आ, ऊ) । त्रिण = तृण (अ, आ,)। बुधि समघरे = वेउ सम गिणुं (इ, ई), वहु (उ), विहु (ऊ)। 'मुणुं' अ प्रतियो मे नहीं है। आतम = आतमा (उ)। सवि = सहु (अ)। साथ = सर्व (उ)। परिकर सार रे = परिमार रे (अ)। थाहरे = ताहरे (अ, आ, उ ऊ)। दरसणे = दरसण (इ, उ)। मुझ = मुज्झ (ऊ)। सवि = सहु (अ), सवे (ऊ)। अहो अहो हूं = अहो हु हु (अ, आ)। मुझ = मुज्झ (ऊ)। दातारनी = दातारथी (उ), दातारनि (इ, ई)। अेथी = अेहवे (अ), अेहनी (आ, उ, ऊ)। सरूप = स्वरूप (उ, ऊ)। सक्षेप = सक्षेप (आ, इ, ऊ)। कह्यो = कह्यु (इ, ई)। भावने = भावस्यै (अ, आ, उ, ऊ)। शुद्ध = सुभ (अ)। पाम से = पामस्यै (अ, आ, उ, ऊ)। ते लहसे = नहो सर (अ, आ), लहस्ये ते (उ), ते लहिस्यै (ऊ)।

शब्दार्थ—त्रिभुवनराय = तीनों लोको के स्वामी। परखाय = परीक्षा करना, पहिचानना। अवकाश = अवसर मिला, विचार आया। साभली = सुनी। प्रतिभान = स्वरूप। अविसुद्ध = असुद्ध, हीन। सविशुद्ध = शुद्ध, उत्तम। अवितत्थ = यथार्थ। सद्दहे = श्रद्धान करे, माने। सम्प्रदायि = सम्प्रदाय के रक्षक वीतराग देव की मर्यादाओं के रखने वाले। अवचक = निष्कपट। सुचि = पवित्र, अनुभवाधार = अनुभव (ज्ञान) के आधार। अवर = अन्य, दूसरे। तामसी = तमो गुण वाली, कषायों वाली। सवि = सव। परिहरी = छोड़कर। सात्त्विकी = सात्त्विक गुण वाली, समता, दया, क्षमादि गुण वाली। सार = सार, निष्कर्ष, उत्तमोत्तम। विसवाद = सशय। प्रतिषेद = निषेद। अविरोध = विरोध रहित। पाखान = पाषाण, पत्थर। वदक = वदना करने वाला। निन्दक = निंदा (बुराई) करने वाला। त्रिण = तृण, घास। परिकर = परिवार। थाहरे = तेरे। अमित = अनत। प्रणिधान = एकाग्रता, समाधि।

अर्थ—हे शान्तिनाथ प्रभो ! हे त्रिभुवन के राजेश्वर ! मेरी एक विनय युक्त प्रार्थना सुनिये। मैं आपके परम शान्त स्वरूप को कैसे जान सकता हूँ, कैसे पहचान सकता हूँ। ये सब कृपा कर बताइये—कहिये ॥१॥

त्याग कर, जो मैत्री, प्रमोद, करुणा आदि सात्विक वृत्तियो को ग्रहण करते है, वे ही शातिस्वरूप को प्राप्त करने वाले सद्गुरु है ।।५।।

गुरु उपदेश के सम्बन्ध मे कथन है—

फल का सदेह व अनिश्चितता जिसमे नही है अर्थात् जो निश्चय रूप से मुक्तिदायक है, जिन के शब्द (उपदेश) भ्राति रहित यथार्थ अर्थ के सूचक है, जिसमे पारमार्थिक रूप से सफल नयवाद की पूर्ण रूप से व्यवस्था है–सब दृष्टिकोणो का समन्वय है। ऐसा गुरुउपदेश शिवमार्ग—मोक्ष मार्ग का साधन भूत एव सधिरूप है–हेतुरूप है–मिलाने वाला है ।।६।।

आगे के सातवे पद्य मे शाति स्वरूप का साक्षात्कार के प्रकार का निर्दशन है।

आत्म पदार्थ के द्वारा ही विधि और निषेध की व्यवस्था और निर्णय होता है। जिन क्रियाओं का आत्म भाव से विरोध नही है, वह 'विधिमार्ग' है। वह उपादेय (ग्रहण) करने योग्य है। आत्म भाव से जिन कार्यो एव क्रियाओ का विरोध हो व निषिध है–करने योग्य नही है। इस ग्रहण और त्याग विधि को महापुरुषो ने अपनाया है, ऐसा आगम से बोध होता हैं ।।७।।

क्रोधादि कषाये, राग-द्वेष और अशुभ योग आत्म भाव के विरुद्ध है अत ये त्याज्य हैं और तप सयमादि विधिमार्ग है, यह ग्रहण करने योग्य है। ऐसा करते रहने से शातिस्वरूप प्राप्त करने मे कोई बाधा उपस्थित नही होती है, ऐसा आगमो (शास्त्रो) से बोध होता है।

ज्या ज्या जे जे योग्य छै, तहा समझ तू तेह।
त्या त्या ते ते आदरे, आत्मार्थी जन ऐह।। (श्रीराजचन्द्र)

दुष्ट मनुष्यो के साथ को त्याग कर जो आरम्भ परिग्रह त्यागी, निस्पृही अल्पकषायी, स्व पर समय के ज्ञाता गुरुसतान की–शिष्य परम्परा की सेवा करता है वह योग शक्ति से–इच्छा योग, शास्त्र योग तथा सामर्थ्य योग से चित्त के भावो को स्वरूपानुयायी करके अत मे मुक्ति प्राप्त करता है।

त्याग कर, जो मैत्री, प्रमोद, करुणा आदि सात्विक वृत्तियो को ग्रहण करते है, वे ही शातिस्वरूप को प्राप्त करने वाले सद्गुरु है ॥५॥

गुरु उपदेश के सम्बन्ध मे कथन है—

फल का सदेह व अनिश्चितता जिसमे नही है अर्थात् जो निश्चय रूप से मुक्तिदायक है, जिन के शब्द (उपदेश) भ्राति रहित यथार्थ अर्थ के सूचक है, जिसमे पारमार्थिक रूप मे सफल नयवाद की पूर्ण रूप से व्यवस्था है–सब दृष्टिकोणो का समन्वय है। ऐसा गुरुउपदेश शिवमार्ग—मोक्ष मार्ग का साधन भूत एव संधिरूप है–हेतुरूप है–मिलाने वाला है ॥६॥

आगे के सातवे पद्य मे शाति स्वरूप का साक्षात्कार के प्रकार का निर्दशन है।

आत्म पदार्थ के द्वारा ही विधि और निषेध की व्यवस्था और निर्णय होता है। जिन क्रियाओ का आत्म भाव मे विरोध नही है, वह 'विधिमार्ग' है। वह उपादेय (ग्रहण) करने योग्य है। आत्म भाव से जिन कार्यो एव क्रियाओ का विरोध हो व निषिध है–करने योग्य नही है। इस ग्रहण और त्याग विधि को महापुरुषो ने अपनाया है, ऐसा आगम से बोध होता हैं ॥७॥

क्रोधादि कषायें, राग-द्वेष और अशुभ योग आत्म भाव के विरुद्ध है अत ये त्याज्य हैं और तप सयमादि विधिमार्ग है, यह ग्रहण करने योग्य है। ऐसा करते रहने से शातिस्वरूप प्राप्त करने मे कोई बाधा उपस्थित नही होती है, ऐसा आगमो (शास्त्रो) से बोध होता है।

ज्या ज्या जे जे योग्य छै, तहा समझ तू तेह।
त्या त्या ते ते आदरे, आत्मार्थी जन ऐह॥ (श्रीराजचन्द्र)

दुष्ट मनुष्यो के साथ को त्याग कर जो आरम्भ परिग्रह त्यागी, निस्पृही अल्पकषायी, स्व पर समय के ज्ञाता गुरुसतान की–शिष्य परम्परा की सेवा करता है वह योग शक्ति से–इच्छा योग, शास्त्र योग तथा सामर्थ्य योग से चित्त के भावो को स्वरूपानुयायी करके अत मे मुक्ति प्राप्त करता

प्रभु के मुख से ऐसा बोधप्रद उपदेश सुनकर आत्मा--चेतन व भक्त-कवि कहता है— हे नाथ ! आपके दर्शन से मेरा उद्धार हो गया और मेरे सब काय सिद्ध हो गये ॥१२॥

(वह अब आत्म विभोर हो कर कहता है) मेरा अहो भाग्य है ! धन्य है मेरा भाग्य ! मुझको (आत्मा को) नमस्कार हो, वदन हो ! हे नाथ ! अनन्त फल देने वाले महादानेश्वर से जिसकी भेंट हो गई, वह धन्य है ॥१३॥

विशेष—जब परमात्म स्वरूप, प्रगट--अनुभव रूप प्रत्यक्ष—हो जाता है, तब ऐसे ही उद्गार निकलते हैं—"जो मैं हूँ, वह ही परमात्मा है, जो परमात्मा है सो मैं हूँ। मैं ही मेरा उपास्य हूँ।" भक्तराज देवचन्द्र जी ने भी कहा है—"जिनवर पूजारे ते निज पूजना रे" ।

पच पूज्ज थी पूज्य ए, सर्व ध्येय ये ध्येय ।
ध्याता ध्यानरू ध्येय ए, निश्चै अभेद ए श्रेय ॥९॥

अनुभव करतां एहनो, थाए, परम प्रमोद ।
एक स्वरूप अभ्यास सु , शिव--सुख छै तसु गोद ॥१०॥श्रीदेवचन्द्रजी ।

राम रसिक अरु राम रस, कहन सुनन को दोय ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नही कोय ॥ श्रीबनारसीदासजी ।

शान्ति--स्वरूप--प्राप्ति के मार्ग का यह सक्षिप्त वर्णन है। इसमे निज स्वरूप और पर स्वरूप को जानने, समझने के लिये वर्णन किया गया है। इसका आगम ग्रन्थों मे अत्यन्त विस्तार है जिसे श्री शान्तिनाथ तीर्थ कर भगवान ने कहा है। (सब तीर्थ कर भगवान के आगम उस ही आत्म धर्म का उपदेश करते हैं, इसलिए उनके आगम एक ही हैं) ॥१४॥

शान्तिनाथ भगवान के स्वरूप को जो इस प्रकार भक्ति पूर्वक निष्काम भाव से शुद्ध चित्त से एकाग्रता पूर्वक ध्यावेगे वे अतिशय आनन्द दायक परम पद को प्राप्त करेंगे और ससार मे बहुत सम्मान पावेंगे--सम्मानित होगे ॥१५॥

श्री कुन्थु जिन स्तवन (१७)

(राग–रामकली – अँबर देहु मुरारी हमारो —ए देशी)

कुन्थु जिन-मनड़ू किम ही न बाजै हो।
जिम जिम जतन करीनैं राखू, तिम तिम अलगू भाजै हो
।।कुन्थु०।।१।।

रजनी वासर वसती ऊजड, गयण पयाले जाय।
साप खायनै मुखड़ू थोथू, ए उखाणो न्याय ।।कुन्थु०।।२।।

मुगति तणा अभिलाषी तपिया, ज्ञान नै ध्यान अभ्यासैं।
बयरीडू काइ एहवू चिन्ते, नाखै अवले पासै ।।कुन्थु।।३।।

आगम आगमधर नै हाथै, नावै किण विध आकू।
किहाँ कणे जो हट करि हटकू, तो व्याल तणी पर वाँकू ।।कुन्थु।४।।

जो ठग कहूँ तो ठगतो न देखू, साहूकार पिण नाहीं।
सर्व मा हिनै सहुथी अलगू, ए अचरज मन मा ही ।।कुन्थु।।५।।

जे जे कहुं ते कान न धारै, आप मतै रहै कालो।
सुर नर पंडितजन समभावै, समझै न म्हारो सालो ।।कुन्थु।।६।।

मै जाण्यो ए लिंग नपुंसक, सकल मरद नै ठेलै।
बीजी वातै समरथ छै नर, एहने कोई न झेलै ।।कुन्थु०।।७।।

मन साध्यू तिण सघलूं साध्यूं, एह वात नहीं खोटी।
इम कहै साध्यू ते नवि मानूं, एक ही बात छै मोटी ।।कुन्थु०।।८।।

मनडो दुराराध्य ते वसि आण्यूं, आगम थी मति आणु।
"आनन्दघन" प्रभु म्हारो आणो, तो साचू करि जाणू ।।कुन्थु०।।९।।

(१७) पाठान्तर—राग हमारो = राग—सोरठ, मन्दोदरी वारदार थू आखै (अ)। कुन्थु.... वाजै हो = हो कुन्थु जिन मनडु किण ही छाजै (अ)। वाजै हो = वाझइ (उ)। जतन = जतने (अ)। करीनै = कर कर (अ)। राखू = राखु (अ, इ), राखो (उ)। अलगू = अलिगु (अ)। भाजै हो = भाजइ जी (उ)। पयाले = पयालो (अ), पयालै (आ, उ)। जाय = जायै (आ, ऊ), जाये (उ)। मुखडू = मुहडो (अ)। थोथू = थोथो (अ), थोथु (उ)। ए= एह (ऊ)। ऊखाणो = ऊखणो (उ), अखाणूं (ऊ)। ग्याय = ग्यायें (आ)। ज्ञान = ग्यान (अ)। वयरीडू = वैरीडो (अ, आ), वयरीडु (इ, ई), वयरीडो (उ)। एहवू = एहवो (अ)। चिन्ते = चिन्तवै (अ, आ)। अवले = अलवे (आ, ऊ)। आगमधर = आगमधरि (अ)। नावै = जावै (अ) किहा कणे = किण ही (अ), किहा रे किणि (आ, ऊ)। हठ करि = हठ करीनै (उ, ऊ)। पर = परि (अ, आ, उ)। कहूँ = कहु (इ, ई)। देखू = देखु (इ, उ)। पिण = पण (अ, आ, उ)। ए = एह (अ, आ)। अचरज = अचरिज (अ), अचिरिज (उ) अचिरज ए (ऊ)। कहूँ ते = कहुतो (आ, ऊ)। कान = काने (इ, उ)। धारै = धारइ (उ)। कालो = काल्हो (अ)। समझावै = समझ वै (उ)। समझै = समझइ (उ)। म्हारो = माहरो (उ)। मारो (ऊ)। मै = मै ए (अ) मइ (उ)। मकल = मयल (अ)। छै = छइ (उ)। झेनै = पैले (अ)। साध्यू = साध्यो (अ,आ)। तिण = तेणे (अ,आ), तिणे (इ,उ,ऊ), मघलू = सघलो। (अ, आ) मगलू (ऊ)। गह वात = ए कहावति (अ)। इम कहै = अमकै (अ), इमकहि (ऊ)। एक ही वात = एकहावति (अ), ए कहिवत (आ, ऊ,) एकहिवति (इ), एक हि वात (ई), ए कहवति (उ)। मनडो = मनडु (इ, ई, उ), मनडू (ऊ)। दुराराध्य = दुरासद (अ) दुरादाध्य (आ), दुराराध (इ)। वसि = वश (इ, ई)। आण्यू = आन्यौ (अ,) आण्यौ (आ,) आण्यू (ई)। मति = मन (अ)। आणू = आण्यू (अ), आणु (उ)। म्हारो = माहरो (अ, आ, उ, ऊ)। साचू = साचो (अ, आ,) साचु (उ)। जाणू = जाणो (अ), जाणु (उ)।

शब्दार्थ—मनडू = मन। किमही = किसी प्रकार से। न वाजै = वाज

नोट—'नाग्वे अवले पासे' के स्थान पर कही कही यह पाठ है—"नाखै अलवे पासै" जिसका अर्थ हैं—यह सहज ही उन्हे (ज्ञानी-ध्यानी तपस्वियो को) मोह पाश मे फँसा देता है ॥३॥

आगमधरो के (शास्त्रज्ञो के) हाथ मे आगम रूपी अकुश रहता है फिर भी यह मदोन्मत हाथी किसी भी प्रकार से उनके अकुश से वश मे नही आता। कभी किसी स्थान से वल पूवक दूर किया जाता है तो यह (मन) सर्प के समान और भी अधिक वक्र (टेडा) हो जाता है। वशीभूत नही होता है ॥४॥

जो इसे, त्याग रुपी धम को ठगने वाला ठग कहता हूँ तो इसे ठगी करते हुये नही देखता हूँ क्यो कि भोगोपभोग रूपी ठगी तो इन्द्रिया करती दिखाई देती हैं। और इसे (मनको) साहूकार भी नही कह सकता हूँ क्योंकि इसके योग विना इन्द्रिया प्रवृत्ति नही करती। अहा! अहा! यह मन की कैसी विचित्रता है? अरे! यह सब के (इन्द्रियो के) साथ रहकर भी सब से अलग है ॥५॥

परमार्थ की जो जो भी बाते कहता हूँ उस तरफ तो यह कान ही नही देता है—वे बातें तो सुनता ही नही है और अपने मते ही कलुषित रहता है। देव, मनुष्य और पडित ज्ञानी लोगो के समझाने पर भी यह कुमति स्त्री का भाई समझता नही है ॥६॥

(सस्कृत मे मन शब्द नपु सक लिंग है) अरे! मैंने तो इसे नपु सक लिंग ही समझ रखा था किन्तु यह तो वडे वडे शक्तिशाली (सामर्थ्यवान) पुरुषो को भी दूर ठेल देता है। दूसरी वातो मे मनुष्य भले ही समर्थ हो परन्तु इसके तेज को कोई भी सहन नही कर सकता है ॥७॥

(मनुष्य सिंह को वश मे कर सकता है, समुद्र पार कर सकता है, अग्नी पर भी चल सकता है और हवा मे भी उड सकता है पर मन को वश मे करना कठिन है)।

स्व पर समय समझाविये, महिमावत महन्त रे ॥धरम०॥१॥
शुद्धातम अनुभव सदा, स्व समय यह विलास रे ।
परवडि छाँहडि जे पडै, ते पर समय निवास रे ॥धरम०॥२॥
तारा नखत ग्रह चदनी, ज्योति दिनेश मझार रे ।
दरसण ज्ञान चरण थकी, सकति निजातम धार रे । धरम०॥३॥
भारी पीलो चोकणो, कनक अनेक तरग रे ।
परजाय दृष्टि न दीजिये, एकज कनक अभग रे ॥धरम०॥४॥
दरसण ज्ञान चरण थकी, अलख सरूप अनेक रे ।
निर विकलप रस पीजिये सुद्ध निरजन एक रे ॥धरम०॥५॥
परमारथ पथ जे कहै, ते रजे इक तन्त रे ।
व्यवहारे लखि जे रहै, तेना भेद अनन्त रे ॥धरम०॥६॥
व्यवहारे लख दोहिलो, काइ न आवै हाथ रे ।
शुद्ध नय थापन सेवतां, नहि रहै दुविधा साथ रे ॥धरम०॥७॥
एक पखि लखि प्रीतनी तुम साथे जगनाथ रे ।
किरपा करीनै राखज्यो, चरण तले गहि हाथ रे ॥धरम०॥८॥
चक्री धरम तीरथ तणा, तीरथ फल तत सार रे ।
तीरथ सेवे ते लहै, "आनन्दघन" निरधार रे ॥९॥

(१८) पाठान्तर—राग रयणयरु = ढाल—मन मधुकर मोही रह्यो—एहनी (अ)। जाणू = जाणु (उ)। परवडि = परपिंड (अ, आ), परवडे (उ, ऊ)। छाँहडि = छाही (अ, आ), छाहडी (उ, ऊ)। जे = जिहां (अ, आ, उ,) जिहँ (ऊ)। तारा = तार (अ)। नखत = नक्षत्र (आ, उ, ऊ,) नक्षत (इ, ई)। ग्रह = गृह (आ, उ,) चदनी = तणी (अ, आ, उ)। सकति = शकति (अ, आ, ऊ), शक्ति (इ, ई)। सकती . . धार रे = आतम ज्योति मझार रे (उ)। पीलो = पीलनो (अ)। परजाय = परजय (अ), पर्याय (आ

शुद्ध आत्म स्वरूप का निरन्तर अनुभव होता रहे, यह सव समय का विलास है–आत्म स्वरूप का मनोविनोद (आनन्दमग्नता) है। पर पदार्थ–अनात्मभाव की जहा तनिक भी छाया पडती है–असर होता है तो वह पर समय निवास है। कर्म रूप जड पुद्‌गल का प्रभाव है। अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे स्थिति स्व समय है और पुद्‌गलमय कर्म प्रदेश मे स्थिति पर समय है ॥२॥

विशेष—हे भव्य ! जो जीव दर्शन, ज्ञान और चारित्र मे स्थिर रहता है उसे निश्चय ही स्व समय जानो और जीव 'पुद्‌गल कर्म के प्रदेशो मे स्थित होता है, उसे पर समय समझो।

तारा, नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रमा की ज्योति जिस प्रकार सूर्य मे निहित है–समावेश है, उस ही प्रकार दर्शन, ज्ञान और चारित्र को निज आत्म शक्ति ही समझो ॥३॥

इसी तत्व को दूसरी तरह से बताते हैं—

सोना भारी, पीला, चिकना आदि अनेक तरग (भेद) वाला–गुण पर्याय वाला है किन्तु पर्याय दृष्टि को गौण कर देखा जाय तो स्वर्ण पदार्थ मे सव तरगो (भेदो) का अभग रूप से समावेश हो जाता है। अर्थात् सोने के भारी पन, पीला पन, चिकना पन पर दृष्टि न दे तो मात्र सोना दिखाई देता है। उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र आत्मा के साधारण तौर पर पृथक् पृथक् गुण दिखाई देते हैं किन्तु वे सव आत्मा रूप ही है ॥४॥

दर्शन, ज्ञान और चारित्र के भेद से अलख–(अलक्ष्य)–आत्मा के अनेक स्वरूप हैं। निर्विकल्प रस पान कर–विकल्प त्याग कर शाति पूर्वक सम्यक दृष्टिकोण से देखे तो शुद्ध निरजन आत्मा तो एक ही है। अर्थात् आत्म गुण पर्याय दृष्टि से–विकल्प से अनेक स्वरूप वाला है और निर्विकल्प दृष्टि से उसका स्वरूप शुद्ध निरजन – सिद्ध स्वरूप है ॥५॥

जो परमार्थ मार्ग के–आत्म मार्ग के कहने वाले है–आचरण करने वाले

निश्चयनयवादी हैं-वे तो केवल आत्मतत्व से सतुष्ट होते हैं-प्रसन्न होते है। और जो व्यवहार की ओर लक्ष रहते है अर्थात् व्यवहारनयवादी हैं उन्हे इस के (आत्मा के) अनन्त भेद (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अजर अमर, अव्याबाध आदि) दृष्टि गोचर होतेहै ॥६॥

व्यवहार नय से लक्ष्य तक पहुचना-परमार्थ प्राप्त करना-सच्चिदानन्द रूप तत्व तक पहुचना दुर्लभ है — कठिन है। व्यवहार नयवादी अन्तरग को नही जानता यह बाल दृष्टि है इसलिए परमार्थरूप कुछ भी हाथ नही आता है। किन्तु शुद्ध नय-निश्चयनय-को हृदय मे स्थापित कर के जो आचरण करता है उसे किसी प्रकार की दुविधा का सयोग नही होता है ॥७॥

हे जगत के स्वामी अरनाथ भगवान! आपके प्रति मेरी प्रीति एक पक्षीय है कारण कि मैं आप जैसा नही हूँ। क्योकि आप तो वीतरागी हैं और मैं साधक दशा मे हूँ। इस एक पक्षीय प्रीति को देखकर अर्थात् मैं साधक दशा से गिरू नही अत कृपा पूर्वक मेरा हाथ पकड कर मुझे अपने चरणो के आधीन ही रखना ॥८॥

'निरागी था रे रागनू जोडवू, लहिये भवनो पारोजी (श्रीदेवचन्द्रजी)

हे भगवान! चतुर्विध सघ रूप धर्म तीर्थ के आप चक्रवर्ती सम्राट हैं। आपही इस धर्मतीर्थ के फल रूप, तत्व रूप सार पदार्थ हैं-ध्येय हैं। जो प्राणी आपके धर्मतीर्थ की सेवा करता है-आराधना करता है, वह निश्चय ही आनन्दघन पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है ॥९॥

श्री मल्लि जिन स्तवन (१९)

(राग-काफी)

सेवक किम अवगणिपेंहो ,मल्लि जिन, ए अब सोभा सारी।
२ जेने आदर अति दिये, तेने मूल निवारी हो ॥मल्लि॥१॥

ग्यान सरूप अनादि तुमारू, ने लीधो तुम ताणो ।
जूओ अज्ञान दशा रीसाणी, जाता काण न आणी हो ॥म०॥२॥
निद्रा सुपन जागरूजागरता तुरिये अवस्था आवी ।
निद्रा सुपन दसा रिसाणी, जाणि न नाथ मनावी हो ॥म०॥३॥
समकित साथे सगाई कीधी सपरिवार सू गाढी ।
मिथ्यामति अपराधण जाणी, घर थी बाहिर काढी हो ॥म०॥४॥
हास अरति रति सोक दुगछा भय पामर करसाली ।
नोकषाय-गज श्रेणी चढतां, श्वान तणी गत भाली हो ॥म०॥५॥
राग द्वेष अविरतनो परणति ए चरण मोहना जोधा ।
वीतराग परणति परणमता ऊठी नाठा वोधा हो ॥म०॥६॥
वेदोदय कामा परणामा, काम्यक रसहू त्यागी ।
निषकामी करुणारस सागर, अनन्त चतुष्क पद पागी हो ॥म० ।७॥
दान विघनवारी सहु जनने, अभयदान पद दाता ।
लाभ विघन जग विघन निवारक, परम लाभ रस माता हो ॥म०॥८॥
वीर्य विघन पंडित वीर्ये हणि, पूरण पदवी जोगी ।
भोगोपभोग दुय विघन निवारी, पूरण भोग सुभोगी हो ॥म०॥९॥
ए अठार दूषण वरजित तनु, मुनिजन वृन्दे गाया ।
अविरति रूपक दोष निरूपण, निरदूषव मन भाया हो ॥म०॥१०॥
इण विध परखी मन विसरामी, जिनवर गुण जे गावै ।
दीनबन्धुनी महर नजर थी, "आनन्दघन" पद पावै हो ॥म०॥११॥

(१९) पाठान्तर— राग-काफी—राग मारू (अ, आ), राग काफी-सेवक किम अवगुणीइहो (उ)। 'सेवक किम अवगणियँ हो' यह वाक्य अ,

अठार = अढार (अ, आ, इ, उ, ऊ)। गाया = गायो (अ, आ)। अविरति-रूपक = अवर निरूपक (अ, आ)। भाया = भोयो (अ, आ,) नाया (उ)। इण = इणि (उ)। विध = विधि (आ, इ, ई, उ, ऊ)। महर = महिर (अ, उ, ऊ,) मिहर (आ)।

शब्दार्थ—अवगणिये = उपेक्षा करते हो अनादर करते हो। अवर = अन्य, दूसरे। निवारी = दूर करना। ताणी = खेंचकर। जुओ = देखो। रिसाणी = क्रोधित होकर, कुपित होकर। काण = कानि, मर्यादा। तुरिय = चौथी। गाढी = मजबूत। काटी = निकाल दी। दुगछा = ग्लानि, घृणा। पामर = नीच। करसाली = तीन दाँतो वाली दन्ताली, पुरुष, स्त्री नपुसक वेद, कृपक। श्वान = कुत्ता। झाली = पकडी। भाया = अच्छे लगते हो। परखी= परख कर, परीक्षा कर।

अर्थ—हे मल्लिनाथ जिनेश्वर! समवशरण रूप बाह्य शोभा और केवल ज्ञान रूप अभ्यन्तर शोभा प्राप्त करके सेवक (भक्त) की आप अव-गणना–उपेक्षा क्यो कर रहे है? क्या आपकी शोभा (महिमा) की श्रेष्ठता यही है? नही, जिस राग भाव को अन्य लोग अत्यन्त आदर देते है, उस ममत्व को तो आपने जडामूल से ही उखाड कर फेंक दिया है। (यही आप की महिमा की श्रेष्ठता है) ॥१॥

आत्मा के अनादि ज्ञान स्वरूप (जो आपका स्वरूप है) को आपने अज्ञानावरण से खेचकर बाहर निकाल लिया है। इसलिए वह अज्ञान दशा आपसे कुपित हो गई, और चली गई। उसे जाता देखकर भी आपने उसकी कोई काण–मर्यादा का विचार नही किया। अनादि काल की साथिन का भी विचार नही किया ॥२॥

निद्रा, स्वप्न, जागृति और उजागरता (हर प्रकार से विशेष जागृति) इन चारो दशाओ मे से उजागरता जो चौथी अवस्था है, उसे आपने प्राप्त करली है अर्थात् सहज आत्म स्वरूप मे सतत जागृति प्राप्त करली है। इसलिए

हे स्वामी ! शक्ति और पराक्रम मे विघ्न डालने वाले वीर्यान्तराय कर्म को अपने पंडित-चतुर आत्म बल से नष्ट कर आपने पूर्ण पदवी—अनन्त शक्ति से सम्बन्ध जोड लिया है। और भोगो मे और उपभोगो मे विघ्न उपस्थित करने वाले भोगान्तराय और उपभोगान्तराय इन दोनो को दूर करके पूर्ण भोग—आत्मानन्द को भोगने वाले है ॥९॥

ऊपर बताये हुये अठारह*दोषो से रहित आपका शरीर है। मुनियो के वडे वडे समूहो ने आपकी स्तवना की है। आप अविरति रूप दोषो को बताने वाले है, और इन दोषो से आप रहित हैं इसलिये आप मुझे अच्छे लगते हैं—प्रिय लगते हैं ॥१०॥

इन प्रकार १८ दूषण रहित तीर्थंकर की परीक्षा करके मन को विश्राम देने वाले (मन के विश्राम स्थल) श्री मल्ली नाथ जिनेश्वर देव के जो गुण गान करते हैं वे दीनबन्धु भगवान जिनेश्वर की कृपा दृष्टि से आनन्द से परिपूर्ण पद—मोक्ष को प्राप्त करते है ॥११॥

श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवत (२०)

(राग—काफी—आघा आम पधारो पूज्य, ए देशी)

मुनिसुव्रत जिनराज एक मुझ विनती सुणो ॥टेक॥

आतम तत क्यू जाणू जगतगुरु, एह विचार मुझ कहिये।

आतम तत जाण्या विण निरमल, चित समाधि नवि लहिये

॥मु०॥१॥

कोई अवध आतम तत मानै, किरिया करतो दीसै।

क्रिया तणो फल कोण भोगवै, इम पूछ्या चित रीसै ॥मु०॥२॥

* १ आशा—तृष्णा, २ अज्ञान, ३ निद्रा, ४ स्वप्न, ५ मिथ्यात्व, ६ हास्य, ७ रति, ८ अरति, ९ भय, १० शोक, ११ दुगच्छा, १२ राग, १३ द्वेष, १४ अविरति, १५ काम्यक दशा, १६ दानान्तराय, १७ लाभान्तराय और १८ भोगोपभोगान्तराय।

ऊ,) रहिओ (उ)। मानै = मानइ (उ)। किरिया = क्रिया (अ)। फल = फल कहो (उ, ऊ)। कोग = कुग (उ, ऊ)। पूछ्या = पूछ्यो (अ, आ, उ,) पूछ्यू (ऊ)। जड़. .एकज = जड चेतन एकज आतम तत (अ,) जड चेतन तत आतम एकज (उ)। थावर = स्थावर (इ)। सुख दुख = दुख सुख (अ, उ, ऊ)। लीनो = लीगो (अ, आ, उ, ऊ)। हीनो = हीणो (अ, आ, उ, ऊ)। क्षणिक = क्षिणक (ऊ)। ए आतम = आतमा (अ, आ)। मोख = मोक्ष (इ, ई, उ)। नवि घटै = तत न घटै (अ,) न घटै (आ, उ,) तने न घटै (उ)। मन = मनि (अ)। वरजी = वर्जित (इ, ई)। नजर = निजर (अ, उ, ऊ)। देखै = निरखै (अ)। स्यू = सू (अ)। मत = मति (उ)। पडियो = पडिओ (उ,) पडियौ (ऊ)। कोग = कोन (अ), कोइ न (आ, उ, ऊ)। सहु = सव (इ, ई, उ, ऊ)। मोहे = मोह (अ, आ, उ, ऊ)। वरजित = वर्जित (इ)। रढ = रती (अ, आ,) रढि (उ)। कोऊ = कोई (अ, आ)। इगमे = इतमे (अ)। इणमा (उ)। जाणै = जाणो (उ)। एह चावै = एह तत् चित भावै (अ)। जै = जिए (अ, आ, ऊ,) जिण (उ)। धरि = धर (आ, ऊ)। ए पख = ए (अ)। करो = करै (अ)।

शब्दार्थ—तत = तत्व। नवि = नही। लहिये = प्राप्त करो। अवध = वध रहित, निर्लेप। दिसै = दिखाई देता है। रीसै = रुष्ट होता है, नाराज होता है। थावर = स्थावर, स्थिर रहने वाले प्राणी। जगम = चलने फिरने वाले प्राणी। सरिखो = वरावर, समान। सकर = साकय दोप। परिखो = परीक्षा करो। नितगज = एकात, नित्य। लीनो = निमग्न। मतिहीनो = बुद्धि हीन। सुगत = भगवान बुद्ध। भूत = तत्व। चतुष्क = चार तत्व–पृथ्वि, पाणी, अग्नि और वायु। वरजी = रहित। अलगी = अलग, पृथक। सकट = शकट, गाडी। तेमाटे = इस कारण। वलतू = वापिसी मे, उत्तर मे। रढ = प्रीति। वागजाल = वाणी व्यापार, वकवास। वीजू = दूसरा। सहु = सव। विवेक = परीक्षक वुद्धि।

अर्थ—हे मुनिसुव्रत जिनेश्वर देव! मुझ सेवक की एक मात्र विनती –प्रार्थना है उसे सुनिये। हे जगतगुरु! मैं आत्मतत्व को किस प्रकार जानलू

अद्वैत मत के मुख्य तीन भेद हैं - अद्वैत, द्वैताद्वैत और विशिष्टाद्वैत। अद्वैत वालो की मान्यता है—"एक ब्रह्म द्वितीय नास्ति।" इसके अनुसार जड जगत मे कोई भेद नही है। सब ही ब्रह्म है। विशिष्टाद्वैत वालो का कथन है—"एक सर्वगतो नित्य"। इसके अनुसार जड-चेतन मे एक ही आत्मा व्याप्त है द्वैताद्वैत के मानने वाले जड जगत मे थोडा भेद मानते हैं। साराश यह है कि जड और चैतन्य दोनो आत्मा की दृष्टि से एक ही है। इस मान्यता मे सकर' नामक दोष है क्योकि सुख-दुख भी एक ही हुये। इस दृष्टिकोण से चैतन्य के कृत कर्म सुख दुख जड को भोगने पडेगे और जड के कृत कर्म सुख-दुख चैतन्य को भोगने पडेगे। यह सभव नही है। यह तो सकर दोष है। इसलिये इस प्रकार ऊहापोह करके आत्मतत्त्व की परीक्षा करो।

एक मतावलबी—एकातवादी—आत्मतत्त्व को एकसा रूप मे रहने वाला नित्यज मानते हैं क्योकि वह अपने स्वरूप दर्शन मे लवलीन है। इस मान्यता मे कृत विनाश—अपने किये हुये कर्म का फल स्वय को नही मिलता और अकृतागम-जो कर्म अभी तक किया नही गया है उसकी फल प्राप्ति—ये दो दोष आते हैं। इस बात को मतिहीन-प्रतिवारक एकान्तवादी जरा भी नही देखते है ॥४॥

ससार मे प्राणियो को सुख-दुख भोगते हुये देखा जाता है। उसका कारण पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म ही है। यदि आत्मतत्त्व को अपने स्वरूप दर्शन मे लवलीन (मग्न) नित्यज, एकरूप मे रहने वाला माना जाय तो सुख दुख का कर्त्ता और भोगता कौन है? यह प्रश्न स्वत ही उपस्थित होता है जिसका कोई उत्तर नही है।

आत्मतत्त्व की जानकारी तो सब दृष्टिकोणो से विचार करने पर हो सकती है।

बौद्ध दर्शन को माननने वाले तर्कवादी आत्मा को क्षणिक (क्षण क्षण मे बदलने वाली) कहते हैं। यदि आत्मा का रूप क्षणिक माना जाय तो बंधन

होने पर चैतन्य को नष्ट हुआ मानते है। आत्मा या चैतन्य शक्ति की कोई अलग सत्ता नही मानते हैं। विचारणीय यह है कि मृत शरीर मे भूत चतुष्क तो हैं ही, फिर उसमे चेतना क्यो नही ? यदि यह सिद्धात ठीक होता, तो मृत शरीर मे चेतना होनी चाहिये। परन्तु ऐसा नही है। चैतन्य शक्ति कोई अलग वस्तु है जिसके शरीर से निकल जाने पर शरीर कार्य करने की शक्ति से शून्य हो जाता है।

श्री आनन्दघन जी ने ऊपर उदाहरण दिया हैं—नेत्र हीन व्यक्ति गाडा नही देख सकता है तो गाडे का अभाव हो गया क्या ? इसमे दोष गाडे का है या नेत्र का। जो आत्मा-चैतन्य शक्ति का अनुभव करते हुए भी उसकी सत्ता स्वीकार नही करते हैं, उनके समझाने का क्या उपाय है ?

इस प्रकार अनेक दर्शनो की मान्यताओ के विभ्रम मे मेरी बुद्धि अथवा मैं पड गया हूँ, इस सकट के कारण मुझको आत्म तत्व की प्राप्ति नही होती है। इसलिए अपने चित्त समाधि के लिये प्रार्थना करता हूँ। आपके विना ऐसा और कौन है जो आत्म तत्व को वता सके ॥७॥

उत्तर मे ससार के गुरु श्री मुनिसुव्रतजिनेश्वर (शास्त्रवाणी द्वारा) इस प्रकार कहते हैं कि मतमतान्तरो के पक्षपात को छोड कर राग-द्वेष और मोह को उत्पन्न करने वालो से रहित होकर केवल आत्मा से प्रीति लगावो, उसमे लीन हो जावो ॥८॥

आत्मा अनुभव गम्य है वाणी का विषय नही है। आत्मानुभव होने पर सारे विवाद समाप्त हो जाते हैं चित्त समाधिष्ठ हो जाता है।

जो कोई आत्मा को ध्याता है, स्थिर चित्त से चिन्तन करता है वह फिर इन वादो के चक्कर मे नही पडता है। अन्य सव तो केवल वाग् जाल हैं—बोलने की चतुराई है—कला है। वास्तव मे तत्व वस्तु तो आत्म ध्यान—आत्म चिंतन ही है। इस ही की चित्त-अन्तकरण इच्छा करता है ॥९॥

जिन्होने सद् असद् का विवेक पूर्वक विचार कर आत्म चिन्तन के पक्ष को ग्रहण किया है, वही तत्व ज्ञानी कहलाते है। श्री आनन्दघन जी कहते हैं—

श्रुत अनुसार विचारी बोलू , सुगुरु तथा विधि न मिलै रे।
किरिया करि नवि साधी सकिये, ए विसवाद चित सवलै रे
॥षड०। १०॥

ते माटे ऊभो कर जोडी जिनवर आगल कहिये रे।
समय चरण सेवा सुध दीज्यो, जिम आनन्दघन' लहियेरे ॥षड०॥११॥

पाठान्तर — [illegible] राजा = [illegible] जीव क्षमा गुण आदर (अ), धन धन... राजा ([illegible], उ)। [illegible] = पट (अ, आ, ऊ), ए पट (उ)। दरसण = दरिसण (उ)। [illegible] (अ)। [illegible] = पवाय (आ)। दुय = दोय (अ, आ, उ, ऊ)। विवरण = विचारण (उ) [illegible] (कहीं कहीं)। लहो = लहु (अ, आ, उ,)। सुगत = [illegible] (उ)। [illegible] = कर दोय (अ), दोय-कर (आ, ऊ,) दोउ कर (उ)। लोकालोक = लोक अलोक (अ)। भजियै = भजि[illegible] ( )। गुरुगम = गुरगम (ऊ)। [illegible] = कूवि (उ), कूवि (ऊ)। विचार = विचा[illegible] (अ)। विण = विणु (अ)। जिणवर = जिनेश्वर (आ, इ, ई उ, ऊ)। उतम [illegible] = उत्त[illegible] (अ)। [illegible]री = व[illegible] ([illegible], ई उ, ऊ)। गुरु = वरि ([illegible], ई उ, ऊ)। सघला दर[illegible] = सगला दरिसण (उ)। छै = महि (इ, ई,) सही (उ, ऊ)। तटनी = तटनीमा (उ ऊ)। भजनारे = छलनारे (अ, आ)। स्वरूप = स्वरूप (उ)। षड (अ, उ)। ते सहि = तेमही (अ, आ, उ, ऊ)। इग्निकाने = ईंगिका (अ, आ), ईंगिकाने (उ, ऊ)। ते = तो (अ)। चूरणि = चूरण (अ ऊ)। निर्युक्ति = निरयुती (अ)। परम्पर = परम्परा (उ)। ते = तो (आ)। अरथ = अक्षर (अ)। किरिया अवचक = किरिय अवछक (अ), क्रिरिया अवचक (उ)। अनुसार = अनुसारै (अ)। बोलू = बोल्यो (अ)। विधि = विध (ऊ)। साधी = साध (अ)। नवि = भव (उ)। सकिये = सकीजै (अ), सकीइ (उ, ऊ)। विसवाद = विषाद (अ, आ) ऊ। चित = चिन (उ)। सबलो रे = सगले रे (अ, आ, उ, ऊ)। ऊभो = उभय (अ,) ऊभा (उ, ऊ)। सुध = सुचि (अ), शुचि (उ)। दीज्यो = देज्यो (अ, आ, ऊ), देयो (उ)। आनन्दघन = आनन्दघनपद (अ)।

(जड) रूप चरण युगल कहे गये हैं । इन दोनो दर्शनो ने आत्म-स्वरूप का विवेचन किया है अत वेगटके (निसकोच) इन दोनो दर्शनो को जिन तत्व ज्ञान रूपी कल्पवृक्ष के अग समझो ॥२॥

बौद्ध दर्शन आत्मा को अनेक भेदवाली (क्षणिक) मानता है और मीमासा दर्शन आत्मा को अभेद (एक रूपरहने वाला) मानता है । ये दोनो दर्शन जिनेश्वर कल्पवृक्ष के दो विशाल (बडे) हाथ हैं । बौद्ध दर्शन का अवलव लोक व्यवहार है अर्थात वह व्यवहार नय को प्रधानता देता है—व्यवहार नय वादी है । मीमासा वेदान्तदर्शन का आधार अलौकिक है । वह निश्चयवादी है । ये सब बाते गुरुमुख से समझनी चाहिए ।

बौद्ध दर्शन आत्मा को क्षणिक मानता है और जैन दर्शन पुद्गल पर्यायो की अपेक्षा आत्मा को बदलता हुआ कहता है । मीमासक आत्मा को एक ही मानते हैं । सूर्य और सूर्य के प्रतिबिम्बो की तरह । जैन दर्शन सब आत्माओ की सत्ता एक रूप होना मानता है । निश्चय नय से आत्मा का रूप बन्ध-बधरहित शुद्ध है । इस प्रकार ये दोनो दर्शन जिन तत्व दर्शन के अग रूप हाथ हैं ॥३॥

किसी अश से—अपेक्षा से—विचार किया जाय तो बृहस्पति प्रणीत चार्वाक दर्शन जिनेश्वर देव की कुक्षि (उदर, पेट) है । आत्मतत्व के विचार रूपी अमृत रस की धारा को सद्गुरु से समझे बिना किस प्रकार पिया जा सकता है ?

बृहस्पति प्रणीत चार्वाक दर्शन धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप स्वर्ग-नर्क और पुनर्जन्म को नही मानता है । वह तो प्रत्यक्ष प्रमाण से भूत चतुष्क (पृथ्वी, पाणी, अग्नि और वायु) के मेल से उत्पन्न चैतन्य शक्ति को मानता है । इस दर्शन ने इद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण को प्रमाणित माना है ।

जैन दर्शन ने प्रत्यक्ष (आत्म प्रत्यक्ष और इद्रिय प्रत्यक्ष), परोक्ष, आगम उपमा, और अनुमान ये पाच प्रमाण माने हैं । चार्वाक दर्शन ने आत्म प्रत्यक्ष को बिलकुल ही छोड कर इद्रिय प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना

(जड) रूप चरण युगल कहे गये हैं। इन दोनो दर्शनो ने आत्म-स्वरूप का विवेचन किया है अत बेखटके (निसकोच) इन दोनो दर्शनो को जिन तत्व ज्ञान रूपी कल्पवृक्ष के अग समझो ॥२॥

बौद्ध दर्शन आत्मा को अनेक भेदवाली (क्षणिक) मानता है और मीमासा दर्शन आत्मा को अभेद (एक रूपरहने वाला) मानता है। ये दोनो दर्शन जिनेश्वर कल्पवृक्ष के दो विशाल (बडे) हाथ हैं। बौद्ध दर्शन का अवलब लोक व्यवहार है अर्थात वह व्यवहार नय को प्रधानता देता है-व्यवहार नय वादी है। मीमासा वेदान्तदर्शन का आधार अलौकिक है। वह निश्चयवादी है। ये सब बातें गुरुमुख से समझनी चाहिए।

बौद्ध दर्शन आत्मा को क्षणिक मानता है और जैन दर्शन पुद्गल पर्यायो की अपेक्षा आत्मा को बदलता हुआ कहता है। मीमासक आत्मा को एक ही मानते हैं। सूर्य और सूर्य के प्रतिबिम्बो की तरह। जैन दर्शन सब आत्माओ की सत्ता एक रूप होना मानता है। निश्चय नय से आत्मा का रूप अबन्ध-बंधरहित शुद्ध है। इस प्रकार ये दोनो दर्शन जिन तत्व दर्शन के अग रूप हाथ हैं ॥३॥

किसी अश से—अपेक्षा से-विचार किया जाय तो बृहस्पति प्रणीत चार्वाक दर्शन जिनेश्वर देव की कुक्षि (उदर, पेट) है। आत्मतत्व के विचार रूपी अमृत रस की धारा को सद्गुरु से समझे बिना किस प्रकार पिया जा सकता है ?

बृहस्पति प्रणीत चार्वाक दर्शन धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप स्वर्ग-नर्क और पुनर्जन्म को नही मानता है। वह तो प्रत्यक्ष प्रमाण से भूत चतुष्क (पृथ्वी, पाणी, अग्नि और वायु) के मेल से उत्पन्न चैतन्य शक्ति को मानता है। इस दर्शन ने इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण को प्रमाणित माना है।

जैन दर्शन ने प्रत्यक्ष (आत्म प्रत्यक्ष और इद्रिय प्रत्यक्ष), परोक्ष, आगम उपमा, और अनुमान ये पाच प्रमाण माने हैं। चार्वाक दर्शन ने आत्म प्रत्यक्ष को बिलकुल ही छोड कर इद्रिय प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना

को) चटका देता है (भनभनाता है) और वह लट भ्रमर बन जाती है जिसे सब संसार देखता है।

भ्रमर लट को लेकर स्वनिर्मित मिट्टी के घर मे रख देता है, फिर उस घर के सामने भनभनाता है और वह लट कुछ दिवस पश्चात् भ्रमर बन कर बाहर निकलता है। इस बात को सब संसार देखता है, और जानता है। वैसे ही वीतरागी मनुष्य जिनेश्वरदेव जैसा हो जाता है।

चूर्णि (महान ज्ञानियो कृत विवेचन) भाष्य (सूत्रो का अर्थ), सूत्र (गणधर कृत आगम), निर्युक्ति (पदच्छेद पूर्वक अर्थ विवेचन), वृत्ति (टीका) एवं गुरु परम्परागत अनुभव ज्ञान ये समय पुरुष के—सिद्धान पुरुष के छै अंग है। ये जैन दर्शन के छै अंग है। जो व्यक्ति इन छओ अंगो मे से एक का भी छेदन (काट) करता है— उत्थापन करता है, वह दुरभवी है—दुष्ट भवगामी है अर्थात् नीच गति मे जाने वाला है ॥८॥

ऊपर कहा गया है कि जिनेश्वर रूप (वीतरागी) होकर जिनेश्वरदेव की आराधना करता है वह निश्चय ही जिनेश्वर बन जाता है। अपने को जैन या जिन-अनुयायी कहलाने मात्र से जिनेश्वर नही बना जा सकता। उसके लिये साधना की आवश्यकता है। उसका रूप यहा बताया जाता है—

आत्म साधना मे ध्यान का विशेष महत्व है। यहाँ आलबन ध्यान पद्धति का निरूपण है। ध्यान मे योगो (मन, वचन और काया के योगो) को स्थिर कर एकाग्र करने के लिये छै योग या अंग कहे गये हैं—

१मुद्रा, २बीज, ३धारणा, ४अक्षर, ५न्यास और ६अर्थ विनियोग। १मुद्रा का अर्थ है—बैठने, खडे होने, लेटने आदि का ढंग, हाथ, मुख नेत्रादि की स्थिति। योग मुद्रा, जिन मुद्रा। ध्यान मे हाथ, मुख, पैर, नेत्र आदि किस प्रकार रखे जावे अर्थात् शरीर व अवयवो को किस आकृति मे रखा जावे। उसके लिये किसी भी योगासन को ग्रहण करना। (सिद्धासन, पद्मासन, सुखासन, आदि, २बीज—मंत्र। (ऊँ, ह्री, श्री सहित जाप मंत्र, पंच परमेष्ठी

जाप) ३धारणा—चित्त को स्थिर करना (चित्त को बीज पर स्थिर करना)। ४अक्षर—जाप मत्र के अक्षर, पच परमेष्ठी जाप के अक्षर। ५न्याम—स्थापना अर्थात् हृदयकमल दल, अष्ट दल कमल, सहस्र दल कमल पर जाप के अक्षरो को स्थापित करना। ६अर्थविनियोग—जाप के अक्षरो के साथ उनके अर्थ का बोध होना अर्थात् अर्थोपयोग बना रहे।

जो मुद्रा (योग मुद्रा अथवा जिन मुद्रा) मे स्थित होकर, बीज—जाप मत्र पर (पच परमेष्ठी मत्र पर) धारणा करता हुआ—चित्त वृत्तियो को स्थिर करता हुआ, जाप के अक्षरो को न्याम— स्थापित करता है अर्थात् हृदय कमल वा अष्ट दल कमल वा सहस्रदल कमल पर जाप के अक्षरो को स्थापित करता है और साथ ही उसके (जाप अक्षरो के) अर्थ का विनियोग—बोध रखकर (अर्थोपयोग रखकर) ध्यान करता है वह, कभी ठगा नही जाता है अर्थात आत्मा को ठगने रूप क्रिया न होने से आत्मा ठगा नही जाता है। (आश्रव रूप क्रियाये आत्मा को ठगती हैं, जो उन्हे नही करता, वह ठगा नही जाता है)। और वह इस अवचक क्रिया का अवचक फल (अनत आत्मिक सुख) भोगता है ॥९॥

जो अवचक रूप (साधना के लिये हिंसादि का त्याग कर और कषायादि पर विजय रूप साधुवृत्ति) धारण कर, अवचक क्रिया (ध्यान साधना की क्रिया) करता है, वह निश्चय ही अवचक फल (आत्मिक सुख) भोगता है।

(वचक, अवचक क्रिया, फल और भोग को समझने के लिए इसी चौवीसी के श्री चद्रप्रभ जिन स्तवन और शाति नाथ जिन स्तवन का मनन करना चाहिये)।

श्रुत—जैन आगमो—के अनुसार पूर्ण रूप से चिन्तन करके कहता हूं कि जैसे लक्षण सद्गुरु के आगमो मे बताये गये हैं, वैसे सद्गुरु आज प्राप्त नहीं हैं। अत. ऐसे सद्गुरु के आश्रय विना क्रिया करके भी आत्म साधना नही कर सका, यह चित्त मे प्रबल विषाद (दु'ख—खिन्नता) रहता है ॥१०॥

श्री नेमि जिन स्तवन (२२)

(राग मल्हार-वलदा टोला ८ देशी)

अष्ट भवांतर वाल्ही रे वाल्हा, तू मुझ आतमराम । मनरावाल्हा ।
मुगति नारी सूं आपणे रे, वा०, सगपण कोइ न काम ॥मनरा०॥१॥
घर आवो हो वालम घर आवो, म्हारी आसारा विसराम ।मनरा०।
रथ फेरो हो साजन रथ फेरो म्हारा मनना मनोरथ साथ
। [illegible] । ॥मनरा०। २॥
नारी पखेस्यों नेहलोरे वा० सांच कहै जगन्नाथ ।मनरा०।
ईश्वर अरधंगे धरी रे वा०, तू मुझ झाले न हाथ ॥मनरा०॥३॥
पशु जननी करुणा करी रे वा०, आंणी हृदय विचार ।मनरा०।
माणसनी करुणा नहीं रे वा०, ए कुण घर आचार । मनरा०।४।
प्रेम कलपतरु छेदियो रे वा०, धरियो जोग धतूर ।मनरा०।
चतुराई रो कुण कहो रे वा०, गुरु मिलयो जग सूर ॥मनरा॥५॥
म्हारो तो एह मां क्यूं नहीं रे वा०, आप विचारो राज ।मनरा०।
राज सभा मां वैसतां रे वा०, किसडी बधसी लाज ॥मनरा०॥६॥
प्रेम करै जग जन सहू रे, वा०, निरवाहै ते ओर ।मनरा०।
प्रीत करी नै छांडि दे रे वा० तेसूं चालै न जोर ॥मनरा०॥७॥
जो मनमा एहवो हतो रे वा०, निसपति करत न जाण ।मनरा।

निसपति करिनै छाडता रे वा०, माणस हुय नुकसाण ॥मनरा०॥८॥
देता दान संवच्छरी रे वा०, सहु लहे वंछित पोख ।मनरा०।
सेवक वंछित लहै नही रे वा०, ते सेवक रो दोख ॥मनरा०॥९॥
सखी कहै ए सामलो रे वा०, हू कहू लखण सेत ।मनरा०।
इण लखणे साची सखी रे वा०, आप विचारो हेत ॥मनरा०॥१०॥
रागी सू रागी सहू रे वा०, वैरागी स्यो राग ।मनरा।
राग बिना किम दाखवो रे वा०, मुगत- दरी माग ॥मनरा०॥११॥
एक गुह्य घटतो नही रे वा०, सगलो जाणै लोग ।मनरा०।
अनेकांतिक भोगवै रे वा०, ब्रह्मचारी गत रोग ॥मनरा०॥१२॥
जिण जोणी तुमनै जोऊ रे वा०, तिण जोणी जोवो राज ।मनरा।
एक बार मुझनै जोवो रे वा०, तो सीझै मुझ काज ॥मनरा०॥१३॥
मोह दसा धरि भावता रे वा०, चित्त लहै तत्व विचार ।मनरा।
वीतरागता आदरी रे वा०, प्राणनाथ निरधार ॥मनरा०॥१४॥
सेवक पण ते आदरै रे वा०, तो रहै सेवक माम ।मनरा०।
आसय साथे चालिये रे वा०, एहिज रूडो काम ॥मनरा०॥१५॥
त्रिविध जोग धर आदर्यो रे वा०, नेमिनाथ भरतार ।मनरा०।
धारण पोखण तारणो रे वा०, नवरस मुगता हार ।मनरा०॥१६॥
कारण रूपी प्रभु भज्यो रे वा०, गिण्यो न काज अकाज मनरा०।
क्रिपा करी मुझ दीजिये रे वा०, 'आनन्दघन' पद राज

॥मनरा०॥१७॥

(२२) पाठान्तर —भवातर = भवतर (अ, आ, ई, ऊ) । वाल्ही = वालहो (ई), वालही (उ, ऊ) । तू = तु (अ) । आपणे = आपणो (अ, आ) । घर = घरि (अ, उ) । म्हारी = माहरी (अ), माहरी (आ, उ), मारी

रे = भजु रे (अ), भज्र रे (आ)। मुझ = प्रभुजी (अ, आ), प्रभु (उ)। दीजिये रे = दीयो रे (अ, आ)॥

शब्दार्थ = भावान्तर = अन्यभव, पूर्व जन्म। वाल्हो = प्रिय। सगपण = सगाई, सबध। पखै = पक्ष मे। स्यो = क्यो। नेहलो = स्नेह। ईसर = महादेव। अरधग = आधे अग मे। झालैन = पकडोगे। माणसनी = मनुष्य की। कलपतरु = कल्पवृक्ष। छेदियो = काट डाला। चतुराई रो = चतुरता का। क्यू = कुछ भी। बैसता = बैठते हुये। किमडी = कैसी। वधसी = बढेगी। निरवाहै = निर्वाह करना, निभाना। निसपति = निसवत, सगाई, सबध। पोख = पोषण। सामलो = सावला श्याम। दोख = दोष। लखणै = लक्षण से सेत = श्वेत, उज्ज्वल। दाखवो = बताना, कहना। माग = मार्ग। गुह्य = गुप्त। सगली = सब। अनेकातिक = अनेकात स्याद्वाद बुद्धि। गतरोग = रोग रहित। जोणी = योनि, जन्म। सीझै = सिद्ध होवे। माम = मर्म धम प्रतिष्ठा। रूढो = श्रेष्ठ।

श्री नेमिश्वर, महाराज उग्रसेन की कन्या राजिमती से विवाह करने के लिये बरात (शोभायात्रा) लेकर जा रहे थे। मार्ग मे उन्होने अनेक पशुओ को एक स्थान मे बद देखा और यह जानकर कि इनकी हत्या मेरे विवाह के निमित्त से होने वाली है, उनका हृदय दयार्द्र हो उठा। अत उन्होन अपने रथ को वापिस लौटाने के लिये सारथी से कहा। तत्काल ही आज्ञा का पालन हुआ। रथ वापिस जाने लगा। रथ को वापिस लौटते देखकर राजिमती कह रही है—

अर्थ—हे प्रियतम! मैं निरतन आठ भवो से—जन्मो से आपकी प्रियतमा रही हूँ अत आप मेरी आत्मा मे पूर्णरूप से रम गये है। मुक्ति-स्त्री से तो आपका कभी कोई सबध ही नही रहा है, फिर उससे सबध करने की उत्सुकता का क्या कारण? ॥१॥

हे मेरे प्राणवल्लभ! घर पधारो। हे मेरी आशाओ के विश्राम ! रथ को वापिस घुमाओ। हे साजन! अपने रथ को वापिस लाओ।

हे ियतम ! आपके रथ के साथ गई हुई मेरी आशाये भी वापिस लौट आवेंगी। अत हे नाथ ! मेरी आशाओ के साथ अपने रथ को लौटा लावो ॥२॥

आप कहते हैं कि मैं मुक्ति–नारी की ओर आकर्षित हो गया हूँ। तव मैं आपसे पूछती हूँ—हे जगत के स्वामी प्रियतम ! आप सच-सच बतलाइये। नारी के पक्ष से–नारी के प्रति आपका यह स्नेह है क्या ? नारी के प्रति तो महादेव–शकर का प्रेम देखिये जो उन्होने पार्वती को अपने आधे शरीर मे धारण कर लिया और अर्धनारीश्वर कहलाते हैं। एक नारी प्रेमी आप हैं ? जो मेरा हाथ भी नही झेलते हैं—नही पकडते हैं ।।३॥

हृदय मे विचार आते ही, हे प्रियतम ! आपने पशुओ पर दया दिखाकर उन्हे बधन मुक्त कर दिया। किन्तु आश्चर्य है, आपके हृदय मे मनुष्य के लिये कुछ भी दया नही है। हे प्रियतम ! यह किस वश–कुल का आचरण (व्यवहार) है ? यह किस खानदान–घर की मर्यादा है ? ॥४॥

हे वल्लभ ! आपने अपने हृदय से प्रेमरूपी कल्पवृक्ष को उखाडकर योग–(वैराग्य) रूपी धतूरे का वृक्षारोपण किया है। हे प्रियतम ! सच-सच बताइये कि यह चतुराई ! (बुद्धिमानी का काम !) सिखाने वाला कौनसा शूरवीर जगतगुरु आपको मिला है ? ॥५॥

हे प्रिय राजकुमार ! आप विचार तो कीजिये। आप जो मुझे छोड कर जा रहे हैं, इसमे मेरा तो कुछ अपराध है नही। मैं तो आपसे पूर्णरूप से अनुरक्त हूँ। मुझे तो यही दुख खटकता है। जब आप राजा महाराजाओ और सभ्य समाज की परिषद् मे विराजेंगे तो आपकी प्रतिष्ठा किस प्रकार बढेगी क्योकि आप तो मुझे पत्नी बनाना स्वीकार कर चुके थे। अब वचन भंग से प्रतिष्ठा बढेगी क्या ? ॥६॥

ससार मे प्रेम तो सब ही करते हैं किन्तु उसका निर्वाह करने वाले कोई और ही होते हैं अर्थात् प्रेम का निर्वाह करने वाले विरले ही होते हैं।

(प्रेम मे कोई बन्धन तो है नही) जो अपरिचित प्रीति करके छोड देते हैं उनसे कोई जबरदस्ती तो नही की जा सकती है। आप मेरे प्रेम की अवहेलना कर रहे हैं। मैं तो केवल विनती ही कर रही हू—"घर आवो हो वालम ! घर आवो" ॥७॥

जो आपके मन मे पहिले से ही मुझे छोडने की वात थी तो आपको सोच समझ कर—जानबूझ कर-सगाई-सबध ही न करना था। सगाई सबध करके और फिर उसे छोडने मे तो मनुष्य का—नारी जाति की बहुत बडी हानि होती है। ससार मे नाना प्रकार के अपवाद फैलते हैं। विवाह करने के लिये आकर भी आप वापिस जा रहे हैं, इसमे आपका भी अपयश है, अत मैं प्रार्थी हूँ—"घर आवो हो वालम ! घर आवो" ॥८॥

जैन तीर्थ कर दीक्षा से पूर्व एक वर्ष तक प्रतिदिन एक करोड और आठ लाख स्वर्ण मुद्राओ का दान देते है। जब राजिमती ने श्री नेमीश्वर के सावत्सरिक दान की वात सुनी, तब वह निराश होकर अत्यन्त खेद के साथ कहती है—

हे प्रियतम ! आपके इस सावत्सरिक दान से सब ही लोग अपनी-अपनी इच्छाओ का पोपण करते हैं। अर्थात् उनकी सब इच्छाये पूर्ण होती हैं। किन्तु मैं आठ जन्मो से आपकी चर्या करने वाली सेविका अपने इच्छित फल को प्राप्त नही कर रही हूं। यह मुझ सेविका का ही दोप—अपराध है ॥९॥

विशेप खिन्न होकर पुन राजिमती कहती है—हे प्राण वल्लभ ! मेरी सखिये कहती थी कि यह नेमिनाथ तो श्यामवर्ण के हैं किन्तु प्रत्युत्तर मे मैंने कहा था कि वर्ण श्याम (सावला) हुआ तो क्या ? गुणो के लक्षणो से तो यह उज्ज्वल श्वेतवर्ण वाले है। किन्तु आपके इन लक्षणो से—मुझे त्यागकर जाने से—तो सखिया ही सच्ची सिद्ध होती हैं। मैं क्या कहूँ, आप स्वय ही इसका कारण सोचे—समझे। अत मैं तो वारवार कह रही हूँ—"घर आवो हो वालम घर आवो, म्हारी आशारा विश्राम" ॥१०॥

हे प्रिय स्वामी । प्रेम करने वाले के साथ तो सब प्रेम करते हैं किन्तु वैरागी के साथ राग–प्रेम कैसा ? यदि आपका ऐसा मन्तव्य है तो मैं पूछती हूँ कि विना राग रुचि के आप मुक्ति–सुन्दरी के प्राप्ति का मार्ग कैसे अपना रहे हो और दूसरो को यह मार्ग कैसे बता रहे हो-कह रहे हो ? वैरागी बनकर राग–प्रेम रखना और राग करने के लिये कहना, न्याय है क्या ? इसलिये मैं विनय करती हूं —'घर आवो हो वालम, घर आवो" ॥११॥

आपके वृत्त को तो सब ही मनुष्य जानते है, इसलिये आप मे एक भी गुप्त कर्म चरितार्थ नही होता है । आप काम वासना–रोग रहित ब्रह्मचारी है, फिर भी आप अनेकातिक बुद्धि रूपी स्त्री के संग रमण करते हैं—अनेकातिक बुद्धि का उपभोग करते हैं यह बात सब जानते हैं । इसमे कोई गुप्त बात नही है । इसलिये ही मैं आठ जन्मो की अर्द्धांगिनी विनय करती हूँ—"घर आवो हो वालम घर आवो" ॥१२॥

हे प्रियतम राजकुमार ! जिस प्रेम दृष्टि से मैं आपको देखती हूँ उस ही प्रेम दृष्टि से आप भी तो मुक्ति सुन्दरी को देख रहे हो । यदि आप केवल एक बार भी मेरी ओर प्रेम दृष्टि से देख लेंगे तो मेरे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जावेंगे और मेरा अपयश दूर हो जावेगा । इस सिद्धि के लिए ही तो मैं प्रार्थना करती हूं—घर आवो हो वालम, घर आवो, म्हारी आसारा विसराम ॥१३॥

अब तक मोहावृत्त होकर राजिमती अपने मनोद्गार व्यक्त कर रही थी । एकाएक उसके विचार पलटते हैं और उसका चित्त वास्तविक स्थिति की ओर मोड खाता है । जो स्वाभाविक है । कवि इस दशा का वर्णन करता है—

मोहावृत्त दशा मे राजिमती के हृदय मे अनेकानेक भावनायें –विचार उठते-बैठते रहे । अन्त मे इसी विचार धारा के मध्य उसका चित तत्व विचार का दिव्य प्रकाश प्राप्त कर गया । (मैं कौन हूं ? स्वामी कौन है ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ?) इस दिव्य प्रकाश मे उसे (राजिमती को) वास्तविकता का ज्ञान हो गया कि प्राणनाथ जीवनधन नेमीश्वर ने तो निश्चय ही वीतरागता स्वीकार कर ली है । वे वीतरागी बन गये हैं ॥१४॥

अब तो मुझ सेविका की माग–लाज–प्रतिष्ठा इसी मे है कि मैं भी उस ही पथ पर चल पड़ू अर्थात् मैं भी वीतरागी बन जाऊँ। तभी मेरा सेवकपन चरितार्थ–सार्थक होगा। सेवक को स्वामी के आशय–इच्छा–उद्देश्य के अनुसार ही चलना चाहिये। यही सेवक के लिये सर्वश्रेष्ठ कार्य है ॥१५॥

राजिमती कहती है—"आसय साथे चालिये, एहिज रूढो काम" के अनुसार मन-वचन–कर्म से मैंने योग–वीतराग भाव धारण कर वास्तव मे श्री नेमीश्वर को भर्त्तार (भरण-पोषण कर्त्ता) रूप मे स्वीकार कर लिया है। उन श्री नेमीश्वर भर्तारने मुझे नवरस रूपी-निरूपम एव अद्वितीय आत्मिक गुणो से युवा-रति-प्रेम रूप शृ गार रस, जड जगम की भिन्नभिन्न अवस्था और रूपरग से उत्पन्न हास्य रस, पर-दुख सतप्तता रूप करुण रस, कर्म-शत्रुओ पर विजय मे, सदुपदेश दानमे, तप मे, चारित्र-पालन मे, पर दु ख हरण मे उत्साह रूप वीर रस, भव बधन मे डालने वाली कषायो पर क्रोध रूप रौद्र रस, जन्म-मरण के कष्टो से भयभीत होने स्वरूप भयानक रस,* नर्क-निगोद के दु खो से उत्पन्न ग्लानि रूप विभत्स रस, ससार की चित्र-विचित्रता मे आश्चर्य रूप अद्भुत रस और राग-द्वेष रहित निर्विकार हो, आत्म-शाति मे लीन वैराग्य भाव रूप शान्तरस रूपी-मुक्ताहार-अमूल्य मोतियो का कठा मुझे उपहार मे दिया है। (पति पत्नी को प्रथम मिलन मे उपहार देता ही है) यह अमूल्य मुक्ताहार मेरा धारण-आधार है–शोभा है। मेरे आत्मिक गुणो को पुष्ट करने वाला है और अत मे मुझे भव-सागर से तारने वाला है ॥१६॥

मेरे वीतराग भाव के निमित्त कारण प्रभु नेमिनाथ भगवान की मैंने आराधना की है। इसमे (आराधना मे) मैंने कृत्याकृत्य का कुछ भी विचार नही किया है। अर्थात् मुझे क्या करना चाहिये था और क्या नहीं करना चाहिये था, इसमे क्या हानि होगी, क्या लाभ होगा ? इसका विचार किये बिना ही उनके-श्रीनेमीश्वर के आशय के अनुसार उनकी आराधना मे तल्लीन हूँ। और अब समर्पित होकर प्रार्थी हूँ–हेकरुणासिधु ! कृपा कर मुझे परमानन्द के

* जैन आगम अनुयोगद्वार मे भयानक रस के स्थान पर 'व्रीडारस' दिया गया है। अत उसका रूप हुआ—"वीडोत्पादक (घृणोत्पादक) हिंसादि कर्म मे लज्जा रूप व्रीडारस।

मभूत मोक्ष का साम्राज्य प्रदान कीजिये ॥१७॥

(महासती राजिमती की यह प्रार्थना फलीभूत हुई और श्री नेमिनाथ भगवान से पूर्व ही उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया और अनत सुखों के साम्राज्य की अधिकारिणी बन गई) ।

इस अतिम पद मे यह व्य यार्थ है—'कवि आनदघन जी कहते हैं मैं भी आपके मार्ग (वीतराग भाव) का अनुगामी हूं । कार्य, अकार्य का–फलाफल का विचार किये बिना आपकी आराधना मे तन्मय हूं । कृपा कर मुझे अनत सुखो के साम्राज्य को प्रदान कीजिये ।

श्री पार्श्व जिन स्तवन (२३) १

(देशी–रसियाकी)

ध्रुवपद रामी हो स्वामी माहरा निःकामी गुणराय ।सुग्यानी।
निज गुण कामी हो पामी तू धणी, ध्रुव आरामी हो थाय
॥सुग्यानी ध्रु०॥१॥
सर्व व्यापी कहै सर्व जाणग पणे, पर परणमन स्वरूप
पर रूपे करी तत्वपणु नहीं, स्व सत्ता चिद्रूप ।सु० ध्रु०॥२॥
ग्येय अनेके हो ग्यान अनेकता, जल भाजन रवि जेम ।सु०।
द्रव्य एकत्व पणे गुण एकता, निज पद रमता हो खेम ॥सु० ध्रु०॥३॥
पर क्षेत्रे गम्य ग्येयने जाणवै पर क्षेत्री थयु ग्यान ।सु०।
अस्ति पणु निज क्षेत्रे तुम्हे कहो, निर्म्मलता गुणमान ॥सु० ध्रु०॥४॥
ग्येय विनाशे हो ग्यान विनश्वरू, काल प्रमा रेणे थाय ।सु०।
स्वकाले करि स्व सत्ता पणे, ते पर रीते न जाय ॥सु० ध्रु ॥५॥
पर भावे करी परता पामता, स्व सत्ता थिर ठाण ।सु०।
आत्म चतुष्कमयी परमां नही, तो किम सहूनो रे जाण ॥सु०ध्रु०॥६॥
अगुरुलघु निज गुणने देखातां द्रव्य सकल देखत ।सु०।
साधारण गुणनी साधर्म्यता, दर्पण जल दृष्टत ॥सु० ध्रु०। ७॥
श्री पारस जिनवर पारस समो, पिण इहां पारस नाही ।सु०।
पूरण रसियो हो निज गुण परसनो, 'आनन्दघन' मुझ मांहि
॥सु० ध्रु०॥८॥

(२३) १ यह स्तवन श्री ज्ञानविमलसूरिजी कृत कहा जाता है परन्तु यह उनका नही है (भूमिका देखे) इस स्तवन पर उन्होने टीका नही लिखी है। हमारे पास की अन्य प्रतियो में यह स्तवन नही है। केवल श्री ज्ञानविमल सूरिजी वाली प्रति मे है। और मुद्रित तीन प्रतियो मे है। मुद्रित तीन प्रतियो मे भी तीसरा और चौथा पद नही हैं। पाठान्तर मुद्रित प्रतियो के ही दिए हैं।

पाठान्तर—देसी रसियानी = राग सारग (म, वि०)। माहरा = हमारा (म, मा०)। कहै = कहो (वि)। परणमन = परिणमन (म, मा, वि)। वही = नही (म, मा, वि)। अथ्य खेम = यह पद म, मा मे नही है। परक्षेत्र ... गुणमान-यह पद भी म और मा मे नही है। गम्य = गत (वि)। तुम्हे = तुम (वि)। कहो = कह्यो (वि)। सत्तापणे = सदा (म, मा, वि)। सहूने = सहुने (म)। सकलने = सकन (म, मा, वि)। जलने = जल (म, मा)। जिनवर पारस समो = जिन पारस रस समो (म, मा, वि)। परसनो = परस मा (म, मा)।

शब्दार्थ—ध्रुव = अटल। पद = स्थान। रामी = रमण करने वाला। जाणगपने = ज्ञाता पन मे, ज्ञायक भाव से। पर परणमन = अन्य मे परिणमन करने वाले। चिदरूप = ज्ञान रूप। खेम = क्षेम, आनन्द। विनश्वरू = नाशमान। आत्म चतुष्क मयी = अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य रूप। समो = समान, बराबर। परसनो = स्पर्श का।

अर्थ—हे मेरे स्वामी श्री पार्श्वनाथ प्रभो! आप अचल पद-आत्म पद-मोक्ष मे रमण करने वाले हैं। आप निष्कामी-इच्छा रहित और अनन्त आत्मिक गुणो के राजा-सम्राट हैं। कोई भी भव्य प्राणी आत्मिक गुणो का इच्छुक आपको स्वामी बना लेता है, वह मोक्ष के शाश्वत सुखो मे आराम करने वाला-निवास करने वाला बन जाता है ॥१॥

सकल जड-जगम के सब गुण-पर्यायो को तीनो कालो मे आप जानते हैं, इसलिए आपको सर्व व्यापी कहा जाता है किन्तु पर द्रव्य के परि--णमन स्वरूप मे-पर द्रव्य मय होने मे वही तत्वत्व=वही स्व स्वरूपत्व (आत्मत्व)

पर्याय के समय अर्थात् त्रिकाल मे अपनी सत्ता मे ही विद्यमान रहता है। वह तो पर पर्याय रूप मे नही जाता है अर्थात् वह पर रूप नही होता है। इसलिए तो हे ज्ञानमय नाथ! आप "ध्रुवपदरामी स्वामी माहरा" हैं ॥५॥

फिर तर्क है—परभाव मे परिणमन करते समय, पर रूप बन जाने पर भी आत्मा को अपनी सत्ता मे और स्थान मे स्थिर कहते हो। (आत्मा तो चतुष्कमयी अनन्त ज्ञान दर्शन, चारित्र और वीर्य रूप चार आत्म स्वभाव वाली है और ये चारो गुण पर मे (ज्ञेयमे) होते नही, अर्थात् चतुष्कमयी सत्ता परवस्तु-ज्ञेय मे उसके नाशमान होने के कारण स्थिर नही रह सकती है। तब फिर किस प्रकार से आत्मा को सब का जानने वाला कहते हो? ॥६॥

तर्क-समाधान—आत्मा का एक गुण 'अगुरु लघु' (नही भारी नहीं हलका) है। आत्मा अपने इस 'अगुरुलघु' गुण को देखते हुए सम्पूर्ण परद्रव्यो को देखता है। सम्पूर्ण द्रव्यो मे छै साधारण गुण विद्यमान हैं—१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ प्रदेशत्व और अगरुलघुत्व। इन छै गुणो के कारण ही सम्पूर्ण द्रव्य साधर्मी-समानधर्मी हैं अर्थात् द्रव्यो मे इन सामान्य गुणो की साधर्म्यता है। इसलिये जिस प्रकार दर्पण और जल मे वस्तु प्रति-विम्बित होती है उसी प्रकार ज्ञान मे ज्ञेय प्रतिभासित होते है और वे ज्ञान से जाने जाते हैं। यही ज्ञान का सर्व व्यापकपना है। इस प्रकार वह (ज्ञान) पर-परिणति मे भी नही जाता है और न वह नष्ट ही होना है क्यो कि दर्पण मे अग्नि का प्रतिविम्ब पडने से दर्पण कभी जलता नही है—अग्नि रूप नही होता है। वह तो अपने प्रतिविम्वित गुणो मे सदा एक सा ही रहता है। यही ज्ञान का स्वभाव है ॥७॥

हे पार्श्वनाथ जिनेश्वर! आपको पारसमणी के समान कहा जाता हैं जो लोहे को छूकर सोना बनाने वाली है किन्तु आप तो वैसे पारसमणी नही हैं वल्कि आप तो ऐसे परिपूर्ण रसिक पारस है जो दूसरो को भी पारस बना देते हैं। आप उन आत्म गुणो से युक्त है जिन आत्म गुणो के स्पर्शमात्र से ही मुझ मे आनन्द का समूह आ गया है अर्थात् जो आत्म गुणो का स्पर्श करता है वह आनन्द का समूह पारस बन जाता है ॥८॥

श्री पार्श्व जिन स्तवन (२३) २

(शान्ति जिन इक मुझ वीनती—ए देशी)

पासजिन ताहरा रूपनूं, मुझ प्रतिभास किम होय रे।
तुझ मुझ सत्ता एकता, अचल विमल अकल जोय रे ॥पास०॥१॥
तुझ प्रवचन वचन पक्ष थीं, निश्चय भेद न कोय रे।
विवहारै लखि देखियै, भेद प्रतिभेद बहु लोय रे ॥पा०। २॥
बंधन मोख नहीं निश्चये, विवहारे भज दोय रे।
अखड अनादि नविचल कदा, नित्य अबाधित सोय रे ॥पा०॥३॥
अन्वय हेतु वितरेक थी, आंतरो तुझ मुझ रूप रे।
अतर मेटवा कारणे, आत्म सरूप अनूप रे ॥पा०॥४॥
आतमता परमात्मता, शुद्ध नय भेद न एक रे।
अवर आरोपित धर्मछै, तेहना भेद अनेक रे ॥पा०॥५॥
धरमी धरमथी एकता, तेह मुझ रूप अभेद रे।
एक सत्ता लख एकता कहे ते मूढमति खेद रे ॥पा०॥६॥
आतम धरम नै अनुसरी, रमै जे आतमाराम रे।
'आनन्दघन' पदवी कहे, परम आतम तस नाम रे ॥पास०॥७॥

(२३)२ यह स्तवन श्रीज्ञानसारजी कृत है। यह पद हमारी किसी और प्रतियो मे नही है केवल श्रीज्ञानसारजी वाली प्रति मे ही है। इस स्तवन का उन्होने अर्थ किया है। हमारे पास वाली मुद्रित प्रतियो मे भी यह स्तवन नही है अत. पाठान्तर नही दिये जा सके।

शब्दार्थ—पास = पार्श्वनाथ भगवान। ताहरा = तुम्हारे। प्रतिभास = प्रकर्ष आभास साक्षात्कार। अकल = निराकार। विवहारै = व्यवहारे, व्यव-

हारनय। लोय रे = जीवलोक मे। मोग = मोक्ष। अबाधित = बाधा रहित। वितरेक = व्यतिरेक, भेद, अन्तर, व्यतिरेक हेतु। आंतरो = अन्तर। अवर = अन्य, दूसरे। तेहना = उसके। तस = उसका।

अर्थ —हे पार्श्वनाथ भगवान ! आपके स्वरूप की झलक–साक्षात्कार मुझे किस प्रकार हो, यह मुझे बताइये। आपकी और मेरी सत्ता अटल, विमल (मल रहित) और निराकार के कारण एक है–अभिन्न है ॥१॥

उत्तर है—मेरे कहे हुये सिद्धान्तो के कथन के अनुसार निश्चय नय से तो कोई भेद (अन्तर) नही है। (यह परमात्मा है और यह जीवात्मा है–ऐसा भेद नही है) किन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा से तो अनेकानेक भेद हैं ॥२॥

आगे फिर—वास्तव मे निश्चय नय की अपेक्षा से न बंध है और न मोक्ष है, किन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा से बंध और मोक्ष दो कहे जाते हैं। निश्चय नय से आत्मा तीनो कालो मे सिद्धात्मा की अपेक्षा अखंड है। आत्मा अजन्मा होने से अनादि है। आत्मा के स्वरूप का कभी अभाव नही होता अत वह अविचल है। आत्मा का कभी नाश नही होता अत वह नित्य है (अमर है)। आत्मा अनादि होने के कारण उसके स्वरूप मे कोई बाधा (रुकावट) नही आती अत वह अबाधित है ॥३॥

तुम्हारे और मेरे (परमात्मा के) स्वरूप मे अभिन्नता और अन्तर* अन्वय हेतु और व्यतिरेक हेतु के कारण से है। अन्वय हेतु से आत्म सत्ता है। इसलिये परमात्म सत्ता है। यह सत्ता ही अभिन्नता है। व्यतिरेक हेतु के कारण मेरे मे (परमात्मा मे) आवरण अभाव है, वह तेरे मे भी होना चाहिये था किन्तु वह आवरण अभाव तेरे मे नही है (तू शुद्ध, बुद्ध, आत्मा नही है) इसलिये तेरे मे और मेरे मे अन्तर(भेद)है। इस अन्तर(भेद)को दूर करने का एक मात्र कारण

* अन्वय हेतु—जिसके होने पर, जो हो, वह अन्वय हेतु है और जिसके न होने पर, जो न हो, वह व्यतिरेक हेतु है। 'साधन' के होने पर 'साध्य' का होना अवश्यभावी है। यह अन्वय हेतु है। 'साध्य' के अभाव मे 'साधन' न होना, व्यतिरेक हेतु है।

अनुपम आत्मा स्वरूप ही है अर्थात् जब आवरण मुक्त हो कर अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लेवेगा तब यह अन्तर (भेद)नही रहेगा ॥४॥

आत्मत्व और परमात्मत्व मे निश्चय नय से कोइ भेद(अन्तर)नहीं है। आत्मा और परमात्मा एक ही है। (जो आत्मता है वही परमात्मता है और जो परमात्मता है वही आत्मता है। स्वरूप मे अन्तर नही है। आगम वाक्य है-'एगे आया'।)अन्य तो आरोपित स्वरूप हैं-स्याति धर्म हैं। उस आरोपित धर्म के तो अनेक भेद हैं। (आत्मा कभी मनुष्य, कभी पशु, कभी पक्षी, कभी स्त्री, कभी पुरुष, कभी पिता, कभी पुत्र, कभी भाई, कभी बहिन, रूप मे कहा जाता है। ये सब आरोपित स्वरूप है। वास्तव मे आत्मा तो आत्मा ही है)॥५॥

धर्मी(आत्मा)धर्म (आत्मत्व)मे एकता है अर्थात् धर्मी (आत्मा)को धर्म (स्वभाव)से अलग नही किया जासकता है। वे एक साथ ही रहते हैं। आत्म धर्म सहित जो आत्मा है उसके स्वरूप और मेरे मे (परमात्म स्वरूप मे) अभेद है — कोई अन्तर नही है किन्तु आत्मा की केवल सत्ता देखकर एकता बताना मूर्ख बुद्धियो का दुराग्रह है ॥६॥

जो आत्मा आत्म धर्म (स्वभाव) का अनुसरण करके-स्वीकार करके अपनी आत्मा मे रमण करता है अर्थात् अपने आत्म स्वभाव मे रहता है, वह आनन्द घन पद मे है और इस ही का नाम परमात्मा है ॥७॥

श्री पार्श्व जिन स्तवन (२३) ३

प्रणमु पाद-पकज पार्श्वना, जस वासना अगम अनूप रे।
मोह्यो मन-मधुकर जेह थी, पामे निज शुद्ध स्वरूप रे ॥प्र०॥१॥
पक कलक शंका नहि नहीं खेदादिक दुख दोष रे
त्रिविध अवचक जोग थी, लहै अध्यातम सुख पोष रे ॥प्र ॥२॥
दुरदशा दूरे टलै, भजे मुदिता मैत्री भाव रे

वरते नित चित मध्यस्थता, करूणमय शुद्ध स्वभाव रे।।प्र०।।३।।
निज स्वभाव स्थिर कर धरे, न करे पुदगलनी खच रे
साखी हुई बरते सदा, न कहा परभाव प्रपच रे ।।प्र०।।४।।
सहज दशा निश्चय जगे, उत्तम अनुभव रसरग रे
राचे नहीं परभावशुं, निज भावशुं रग अभग रे ।।प्र०।।५।।
निज गुण सब निज मे लखै, न चखे परगुणनी रेख रे।
खीर नीर विवरो करे, औ अनुभव हस शु पेख रे।।प्र०।।६।
निर्विकल्प ध्येय अनुभवे, अनुभव अनुभवनी पीस रे।
और न कबहु लखी शके, 'आनन्दघन' प्रीत प्रतीत रे ।।प्र०।।७।।

(३२) ३ श्री ज्ञानसारजी के अनुमार यह स्तवन श्री देवचन्दजी कृत का अनुजान होता है। (भूमिका देखिये) यह स्तवन श्री प० मगलजी उद्धवजी शास्त्री सम्पादित गुजराती की पुस्तक से लिया गया है। और कही देखने मे न आने के कारण पाठान्तर नही दिये जा सके।

शब्दार्थ—पाद-पकज = चरण कमल। जस = जिसकी। वासना = सुगध। अवम = अगम्य है। अनूप = अनूटी है। मन-मधुकर = मन रूपी भँवरा। पक = कीचड। दुरदशा = बुरी अवस्था, मिथ्यात्व। मुदिता = प्रसन्नता। खच = खीचातानी। राचे = घुल मिलना, मस्त होना। विवरो करे = निर्णय करना। पेख = देखना। पीस = अभ्यास। प्रतीत = विश्वास।

अर्थ—तेवीसवे तीर्थंकर भगवान श्री पार्श्वनाथ के चरण कमलो को मैं प्रणाम करता हूँ—वदन करता हूँ। जिन चरण कमलो की सुगधी अगम्य है—जो जानी नही जा सकती है और अनूठी व अनुपम है। मेरा मन रूपी भ्रमर (भँवरा) प्रभु के गुण रूपी मकरद मे मोहित हो रहा है। अनादि कालीन मलीनता छोडकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। ॥१॥

प्रभु श्री पार्श्वनाथ के चरण कमल की सेवा से कलक—अशुभ रूपी कीचड के लगने की शका भय—जरा भी नही है और न राग—द्वेष

नित दुख, भावो की चचलता, शुभ प्रवृत्तियो मे अरोचकता तथा प्रमाद से उत्पन्न खेद होने की शका नही रहती है। इनसे मन वचन, और काया के शुद्ध योग से आध्यात्मिक सुखो की प्राप्ती होती है ॥२॥

श्री पार्श्व नाथ भगवान के स्मर्ण से मिथ्यात्व दशा दूर हो जाती है और प्रसन्नता, मैत्री भाव, मध्यस्थता (समता), कारुण्य भाव आदि शुद्ध स्वभाव मन मे सदैव बने रहते हैं ॥३॥

श्री पार्श्व नाथ भगवान की भक्ति से आत्मा अपने स्वभाव मे स्थिरता सहज ही धारण कर लेती है और जडवस्तु-पुद्गल का आकर्षण नष्ट हो जाता है। इसके पश्चात आत्मा साक्षी भाव मे रहता है अनात्मिक भाव -हर्ष शोकादि पर भावो का प्रपच कदापि नही रहता है अर्थात् मोह के अनेकानेक प्रपचजाल -जजाल जरा भी नही रहते है ॥४॥

भगवान श्री पार्श्वनाथ की सेवा से आत्मा की स्वाभाविक दशा निश्चय ही जाग्रत हो जाती है और अनोखे अनुभव रस के रग मे मन झूलता रहता है। मन परभावों-पौदगलिक भावो मे जरा भी नही फसता है। वह तो केवल आत्म भाव मे मग्न रहता है ॥५॥

श्री पार्श्व नाथ भगवान के स्मर्ण से आत्मा अपने सम्पूर्ण गुणो को अपने मे देखता है-अनुभव करता है और परभाव-पौद्गलिक राग-रस का जरा भी आस्वादन नही करता है। जिस प्रकार हस पानी और दूध सहज ही अलग कर के दूध को ग्रहण करता है उसी प्रकार आत्मा अनुभव ज्ञान से विभाव दशा छोडकर अपनी स्वभाव दशा को ग्रहण करता है ॥६॥

भगवान श्री पार्श्वनाथ की भक्ति से आत्मा अनुभव ज्ञान के अभ्यास द्वारा उत्पन्न दशा से सकल्प विकल्प रहित अवस्था का अनुभव करता है। ऐसे शुद्ध स्वभवा की जाग्रति के बिना आनन्द के समूह-परमानन्दशा की कदापि प्रतीति नही होती है अर्थात् आनन्दस्वरूप परमात्मपद की प्राप्ति तो शुद्ध आत्मिक स्वभाव के बिना नही होती है ऐसा आनन्दघनजी कहते हैं ॥७॥

श्री महावीर जिन स्तवन (२४)१

(राग धन्यासिरी)

वीरजी नै चरणे लागू, वीरपणू ते मागू रे।
मिथ्यामोह तिमिरभय भाग्, जीत नगारू वागू रे ॥वीर०॥१॥
छउमत्थ वीरय लेस्या सगे, अभिसधिज मति अगेरे
सूछमथूल क्रिया नै रगे, योगी थयो उमगेरे ॥वीर०॥२॥
असख प्रदेसे वीर्य असखे, जोग असखित कखेरे।
पुद्गल सिण तिणे ल्यैसु विशेखे, यथासकति मति लेखेरे। वीर०॥३॥
उत्कृष्टे वीरय नै वेसे, जोग क्रिया नवि पेसैरे।
जोग तणी ध्रुवता नै लेसे, आतम सगति न खेसेरे ॥वीर०॥४॥
कामवीर्य वसे जिम भोगी, तिम आतम थयो भोगी रे।
सूरपणै आतम उपयोगी, थाइ तेहनै अयोगी रे ॥वीर ॥५॥
वीरपणू ते आतम ठाणे, जाण्यू तुमथी वाणे रे।
ध्यान विन णे सकीत प्रमाणे, निज ध्रुवपद पहिचाणे रे ॥वीर०॥६॥
आलबन साधन जे त्यागे, पर परणित नै भागे रे।
अक्षय दर्शन ग्यान विरागे 'आनदघन' प्रभु जागे रे ॥वीर०॥७॥

(२४) १—यह स्तवन भी ज्ञान विमल सूरि जी कृत कहा जाता है। इस स्तवन पर भी उन की टीका नही है। हमारे पास की अन्य प्रतियो मे यह स्तवन नही है। केवल श्री ज्ञान विमल सूरि जी वाली प्रति मे है और मुद्रित तीन प्रतियो मे है। पाठान्तर मुद्रित प्रतियो के दिये गये हैं (विशेष के लिये भूमिका देखें) पाठान्तर—वीर जी नै = वीर जिनेश्वर (म, मा) वीर जीने(वि) छउमच्छ = छउमत्थ (म), छउमथ्थ (मा), छउमथ (वि) वीरय = [illegible] (म मा)। सूछम = सूक्ष्म(म, मा, वि,)। जोगी = योगी (म, मा,

वि,)। असख = असख्य (म , मा, वि,)। मिण – गण (म , मा, वि,) । तिरो – तेण (ग, मा,)। लेसु = लेशु (म ; मा,) । सकति – शक्ति (म , मा,)। वीरय = वीर्ज (म, मा,) । वेसे – वेखे(वि)जोग – योग (ग , मा, वि,)। सगति – शक्ति (म , मा,) । जिम = जेम (म ,मा,) । तिम – तेम (म , मा,) । सूरपणे = सूरपणो (म ,) । थाइ = थाय (म, मा,) । थाये (वि,) । तेहने – तेह (म , मा,)। जाण्यू – जाण्यु (म, मा,)। तुमथी = तुमची (म , मा, वि,) आलवन ' भागेरे—यह पक्ति 'वि' प्रति मे नही है । परणित = परिणतिने ,)। विरागे – वैरागे (म ,मा,) ।

शब्दार्थ—तिमिर = अधकार । भागू = भागगया, दूर हो गया । वागू रे = बजरहा है । छउमचद्ध=छद्मस्थ । अभिसधिज – आत्म शुद्धि की अभिलाषा, योगभिजनित, विशेष प्रयत्न से उत्पन्न । सूछम – सूक्ष्म । थूल – स्थूल। कखरे – काक्षा, अभिलाषा करते हैं मिण = सेना । पेसेरे – प्रवेश करती है। खेसेरे – स्खलित होती है, डिगती है, खिसकती है । विनाणे = विज्ञान । विरागे – वैराग्य ।

अर्थ—मै उन अतिम तीर्थंकर वीर भगवान (महावीर भगवान) के चरणो मे वदना करता हूँ, जिनके मिथ्यात्व मोहनीय रूप अधकार का भय दूर हो गया है और जिनके कर्म-शत्रुओ पर विजय के नगारे बजे हैं। ऐसे भगवान महावीर से मैं उनके जैसा ही वीरत्व मागता हूँ जिस वीरत्व (शौर्य) से उन्होने कर्म-शत्रुओ पर विजय प्राप्त की थी ।।१।।

छद्मस्थ अवस्था मे (मदकषायी अवस्था मे) क्षायोपशमिक वीर्य (आत्मोल्लास) और शुभलेश्या के साथ अपनी अभिसधिज (सदुद्देश्य मे प्रयत्नशील) बुद्धि को उनका अग (भाग) बनाकर, सूक्ष्म (आत्मिक–ध्यान) और स्थूल (व्यवहारिक–महाव्रतादिपालन) क्रिया मे रगकर उमग से श्री महावीर भगवान योगी हुये हैं ।।२।। (यह सयोगी केवली बनने का वर्णन है)

असख्य आत्म प्रदेश मे असख्य वीर्य-आत्मबल है । इससे असख्य मन, वचन और काया के योगो की आकाक्षा होती है अर्थात् योगो की प्रवृत्ति होती

है। उस योग प्रवृत्ति के बल से आत्मा बुद्धि द्वारा यथा शक्ति पुद्गल सेना-कर्मवर्गणा को शुभ लेश्या से गणना करती है अर्थात् कर्मवर्गणा को यथा-शक्ति ग्रहण करती है ॥३॥ (यहाँ सयोगी केवली अवस्था मे योगो द्वारा कर्मवर्गणा ग्रहण का वर्णन है)

आत्मा योगो द्वारा कर्मवर्गणा को ग्रहण करती है यह ऊपर बताया गया है। किन्तु जो आत्मा उत्कृष्ट वीर्य–आत्म–बल के प्रभाव मे आ जाती है, उस आत्मा मे योग–मन, वचन और काया का व्यापार प्रवेश नही पाता है अर्थात् उस आत्मा मे योग प्रवृत्ति नही होती है, क्योकि योगो की ध्रुवता–स्थिरता से आत्मा लेश मात्र भी आत्म–बल से खिसकती नही है—डिगती नही है ॥४॥ (यहाँ चौदवे गुणस्थान मे अयोगी अवस्था का वर्णन है)

जिस प्रकार भोगी–कामी व्यक्ति उत्कृष्ट काम–वासना के वशीभूत होता है उसी प्रकार आत्मा क्षायिकवीर्य से अपने गुणो को भोगने वाला है–आत्मा मे रमण करने वाला है। इस शौर्य गुण से आत्मा उपयोगमय होकर अयोगी अवस्था प्राप्त कर लेता है। अर्थात सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेता है ॥५॥

यह वीरत्व–शौर्य आत्मा मे ही स्थित है। इस बात को मैंने आपकी (महावीर की) वाणी से–उपदेश से (जो आगमो मे है) जान लिया है। मेरी शक्ति के अनुसार मैंने ध्यान से और विशेष ज्ञान से (श्रुत ज्ञान से) अपने शाति रूप अचल स्थान–मोक्ष पद को पहचान लिया है ॥६॥

पूर्ण वीर्योल्लास से–अदम्य उत्साह से जिसने सम्पूर्ण बाह्य और अभ्यन्तर आलबनो और साधन (साधना के सहायको) को त्याग दिया और पर परणति–आत्मा से भिन्न भावो को नष्ट कर दिया है, वही अक्षय (कभी नष्ट न होने वाला), शाश्वत दर्शन ज्ञान और वैराग्य से (तटस्थवृत्ति से) आनद से भरपूर–आनदमय–प्रभु–(परमात्मा) रूप होकर जागृत रहता है। अर्थात् सिद्ध परमात्मा अरूपी द्रव्य आत्मा सदैव आत्मज्योति से दीप्यमान रहता है–जग-मगाता रहता है। ॥७॥

श्री महावीर जिन स्तवन (२४)२

(पयडी निहालू रे बीजा जिन तणी रे ए देसी)

। जिणेसर विगत सरूपनू रे, भावू केम सरूप ।
ारी विण ध्यान न सभवेरे, ए अविकार अरूप ।।चरम०।। १।।
सरूपै आतम मां रमेरे, तेहना धुर वे भेद ।
ब उक्कोसैं साकारीपदेरे, निराकारी निरभेद ।।चरम०।।२।।
मनाम करम निराकार जे रे, तेह भेदे नहीं अत ।
ाकार जे निरगत करमथीरे, तेह अभेद अनत।।चरम०।।३।।
नहीं कइयै वधन घट्यू रे, बध न मोख न कोय ।
मोख विण सादि अनतनू रे, भंग सग किम होय।।चरम ।।४।।
थविना तिम सत्ता नवि लहे रे, सत्ता विण स्यो रूप ।
र विना किम सिद्ध अनंततारे, भावू अकल सरूप ।।चरम०।।५।।
तमता परणित जे परिणम्यारे, ते मुझ भेदाभेद ।
ाकार विण मारा रूपनू रे, ध्यावूं विधि प्रतिषेद ।।चरम०।।६।।
तिमभव गहिणे तुझ भावनू रे, भावस्यू सुद्ध सरूप ।
इयें 'आनदघन' पद पामस्यूरे, आतम रूप अनूप ।।चरम०।।७।।

(२४)२—यह स्तवन श्रीज्ञानसारजी कृत है। यह पद हमारी किसी ौर प्रतियो मे नही है, केवल श्री ज्ञानसारजी वाली प्रति मे ही है। इस स्तवन ा उन्होने अर्थ किया है। एक मुद्रित प्रति गुजराती मे है, जो प० मगनजी द्रजी द्वारा सम्पादित है। उससे ही पाठातर दिया गया है। इस प्रति मे ानदघनजी के नाम के दो स्तवन श्री पार्श्वनाथ और श्री महावीर के और वे भी आगे दिये जाते हैं। पाठा०—जिणेसर = जिनेश्वर (म)। सरूप = वरूप (म)। सरूपे = स्वरूपे (म)। असख = असंख्य (म)। निरगत =

सहज सन्तोष आनन्द गुण प्रकटत, सब दुविधा मिट जावै ।
'जस' कहे सोही आनन्दघन पावत, अन्तर ज्योति जगावै ।।२।।

चतुर्थ पद

आनन्द ठोर ठोर नही पाया, आनन्द आनन्द मे समाया ।
रति अरति दोउ सङ्ग लिये, वरजित अरथ ने हाथ तपाया ।।१।।
कोउ आनन्दघन छिद्रहि पेखत, जसराश सङ्ग चढि आया ।
अ.नन्दघन आनन्दरस झीलत, देखत ही 'जस' गुण गाया ।।२।।

पचम पद, राग–नायकी

आनन्द कोऊ हम दिखलावो ।
कहँ ढूढत तू मूरख पछी, आनन्द हाट न त्रिकावो ।। १ ।।
ऐसी दसा आनन्द सम प्रकटत, ता सुख अलख लखावो ।
जोइ पावै सोइ कछु न कहावत, 'सुजस' गावत ताको बधावो ।। २ ।।

षष्ठ पद, राग–कानडो, ताल रूपक

आनन्द की गति आनन्द जाणे ।
वाहि सुख सहज अचल अलख पद, वा सुख 'सुजस' वखाने ।। १ ।।
सुजस विलास जब प्रकटे आनन्द रस, आनन्द अक्षय खजाने ।
ऐसी दशा जब प्रकटे चित अन्तर, सोहि आनन्दघन पिछाने ।। २ ।।

सप्तम् पद

एरी आज आनन्द भयो मेरे, तेरो मुख निरख निरख ।
रोम रोम सीतल भयो अ ग अ ग ।। ऐरी ।।
सुद्ध समझण समता रस झीलत, आनन्दघन भयो अनन्त रग ।। १ ।।
ऐसी आनन्द दशा प्रकटी चितअन्तर ताको प्रभाव चलत निरमल गग ।
वाही गग समता दोउ मिल रहे, 'जसविजय' सीतलता के सग ।। २ ।।

अष्टम् पद

आनन्दघन के सग सुजस ही मिले जव, तव आनन्द सम भयो 'सुजस'।
पारस सग लोहा जे फरसत, कंचन होत ही नाके कस ॥ १ ॥
खीर नीर जो मिल रहे 'आनद' 'जस' सुमति मखी के सग भयो हैएकरस।
भव खपाइ 'सुजस' विलास भये, सिद्ध स्वरूप लिये धसमस ॥ २ ॥

इस अष्टपदी से कुछ वातें ध्वनित होती है जिससे आनदघनजी की जीवन-यात्रा की झलक प्राप्त हाती है। प्रथम तो यह है कि जिस समय उपाध्याय यशोविजय जी उनसे मिले उस समय आनदघनजी अपनी उत्कृष्ट साधना मे रत थे और एकान्तवास मे थे। वे तत्कालीन जैन साधु समाज को कदाग्रह, गच्छ भेद, और सकुचित पथो के झगडो मे फँसे हुए देखकर बहुत ही खिन्न मना हो गये थे। यह खिन्नता कई प्रकार से उन्होने अपने स्तवनो मे प्रकट की है—"चरम नयन करी मारग जोवना रे, भून्यो सकल ससार"। "पुरुष परपर अनुभव जोवता रे, अन्धोअन्ध पलाय," (श्री अजितनाथ जिनस्तवन) "गच्छना ना भेद वहु नयन निहालता, तत्त्वनी वात करतां न लाजै उदर भरणादि निज काज करता थका, मोहनडिया कलिकाल राजै" (श्रीअनन्तनाथ जिन स्तवन) इस खिन्नता के साथ ही उनके यह उद्‌गार भी मनन योग्य हैं—"घाती डूगर आडा अति घणा, तुज दरसण जगनाथ। धीठाई करी मारग सचरू, सेगू कोई न साथ"। (श्री अभिनन्दन जिन स्तवन) और अन्त मे अपनी यह भावना प्रकट कर, एकान्तवासी होकर उत्कृष्ट साधना मे सलग्न हो गये—"काल लब्धि लही पथ निहाल शू रे, ऐ आसा अवलम्भ। ऐ जन जीवे जिनजी जाणज्यो रे, आनन्दघन मत अव" (श्री अजितनाथ जिन स्तवन)।

श्री आनन्दघन जी के इस प्रकार एकान्तवासी होने से तथा उनके कुछ पदो के आधार पर (वे पद उनके नहीं हैं) लोगो ने अनुमान लगाया है कि आनन्दघन जी जैन साधुवेश त्याग कर, तुम्बा लेकर और लम्बा चोला पहिन कर मस्ती मे घूमा करते थे लेकिन यह वात सर्वथा अयथार्थ, कपोल कल्पित और निराधार है। यदि वे इस प्रकार से जैन साधु-वेश त्याग कर घूमते तो

यशोविजय जी जैसे विद्वान, निष्ठावान साधु कभी भी आनन्दघन जी की स्तुति मे अष्टपदी रचकर श्रद्धाव्यक्त नही करते। इस अष्टपदी के प्रत्येक पद मे यशोविजय जी की उनके प्रति श्रद्धा और आनन्दघन जी की अपने श्रद्धेय के प्रति यथार्थ निष्ठा और उच्च साधना के दर्शन होते है।

श्री आनन्दघन जी की रचनाओ के सम्पादको ने इनका जन्म सम्वत् १६६० के आस पास तथा देहोत्सग स० १७३० के लगभग माना है। इस जन्म सम्वत् के अनुमान का कारण यह दिया है कि उपाध्याय श्री यशोविजय जी का स्वर्गवास सम्वत् १७४५ मे बडोदा के अन्तर्गत डभोई गाव मे हुआ था, जहाँ उनकी चरण पादुका है। यह उसके लेख से प्रकट होता है। इसके आधार पर उपाध्याय श्री यशोविजय जी का जन्म सम्वत् १६७० के आसपास माना गया है। श्री उपाध्याय जी से श्री आनन्दघन जी जेष्ठ थे अत इनका जन्म सम्वत् १६६० के आस-पास अनुमान किया गया है और श्री आनन्दघन जी के स्वर्गवास के सम्बन्ध मे श्री प्रभुदास बेचरदास पारेख ने आनन्दघन चौवीसी के प्रथम सस्करण की भूमिका पृष्ठ १९ मे लिखा है—"मेरी एक समय की यात्रा मे प्रणामी सम्प्रदाय के एक साधु से भेट हुई। वार्तालाप के मध्य प्रसगवश उन्होने कहा कि हमारे सम्प्रदाय के सस्थापक श्री प्राणलाल जी महाराज सम्वत् १७३१ मे मेडता गये थे, वहाँ उनकी लाभानन्द जी उपनाम आनदघन जी से भेट हुई थी और उसी वर्ष अर्थात् सम्वत् १७३१ मे उनका (आनन्दघन जी का) देहोत्सर्ग हो गया था। यह वर्णन श्री प्राणलाल जी महाराज के जीवन चरित्र मे लिखा मिलता है"। "निजानन्द चरितामृत" के पृ० ५१७ से इस वर्णन की पुष्टि होती है कि श्री प्राणलाल जी महाराज मेडता गये थे और श्री आनन्दघन जी से उनकी भेंट हुई थी। पुन जब वे स० १७३१ मे मेडता गये तब उनका स्वर्गवास हो चुका था।

उक्त अवतरण से यह तो निश्चित हो जाता है कि श्री आनन्दघन जी का स्वर्गवास स० १७३१ म हुआ था।

ऊपर के विवेचन का सार यह है कि—श्री कापडिया जी पदो की रचना पहिले और चौबीसी की रचना आयु के शेष भाग मे मानते हैं

श्री बुद्धिसागर जी स्तवनो की रचना पदो से पूर्व मानते हैं। जन्म और देहोत्सर्ग के सम्बन्ध मे दोनो के विचार समान हैं कि श्री आनन्दघन जी १७वी शताब्दी के अन्तिम चरण से १८वी शताब्दी के प्रथम तीन दशक तक थे"।

श्री आनन्दघन जी की भाषा व जन्मभूमि

चौबीसी और पदो के सब ही सम्पादको, श्री देसाई तथा आचार्य क्षितिमोहनसेन ने उक्त विषय पर अपने अपने विचार व्यक्त किये हैं। श्री बुद्धिसागर सूरिजी ने श्री आनन्दघन जी की भाषा पर विचार करते हुए लिखा है—"श्रीमद पहला चौबीसी रची। श्रीमदनी रचना मा गुजर भाषाना घरगथु (ठेठ गुजराती) शब्दो ने पेठे मारवाडी घरगथु शब्दोनो प्रयोग आव्या विना रहेन नाहि। तेथी गुजराती भाषा ना घरगथु शब्दोना प्रयोग थी ते गुजरातना हता, अेम सिद्ध थाय छे।" (भूमिका पृ० १५४)

श्री कापडिया जी इस सम्बन्ध मे लिखते हैं—"मि० मनसुख लाल रवजी भाई मेहता 'जैन काव्य दोहन' प्रथम भागना उपोदघात मा जे अनुमानो उपर आनन्दघनजीना सम्बन्ध मा दोरवाई गया छे ते बध बेसता नथी · ते ओ जे भाषा ने विशेष काठियावाडी सस्कार वाली कहे छे अने मुनि बुद्धिसागर जी जेने गुजराती कहे छे" (उपोदघात पृ० ५८) तत्पश्चात् श्री कापडिया जी ने स्तवनो और पदो के बहुत से शब्द देकर यह सिद्ध किया है कि श्री आनन्दघन जी की भाषा को काठियावाडी या गुजराती कहना भूल है। श्री कापडियाजी का कहना है कि जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग श्री आनन्दघन जी ने किया है वैसी भाषा बुन्देलखण्ड मे बोली जाती है। यह उन्होने अपने गुरु श्री गम्भीर विजय जी से सुना है जिनका जन्म बुन्देलखण्ड मे हुआ था।

श्री प्रभुदास बेचरदास पारख ने अपनी सम्पादित चौबीसी के—जो स० २००६ मे प्रकाशित हुई है—उपोदघात् पृ० २४ मे लिखा है—"श्री-आनन्दघन जी की चौबीसी गुजराती भाषानु भाषा दृष्टि थी पण एक अनमोल रत्न छे" इनके इस कथन से ऐसा लगता है कि श्री पारेख जी ने उस समय तक के प्रकाशित आनन्दघन जी सम्बन्धी साहित्य पर दृष्टि नही डाली। प्रसिद्ध

जैन इतिहासज्ञ श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने महावीर जैन विद्यालय रजत स्मारक अंक मे लिखा है—"आ पदो शुद्ध हिन्दी-वृज भाषा मा रच्या छे पण गुजराती लहिया (लेखक) अने प्रकाशकोए तेमने लखवा, छपाववा थी तेमा गुजराती पणु थइ गयु छे अने हिन्दी नहि समजवाथी घणी अशुद्धिया रही गइ छे। आथी ते पदोनु शुद्ध सस्करण कोई हिन्दी मर्मज्ञ विद्वान पासे करावी ने प्रकट करवानी खास जरूरी छे"।

आचार्य क्षितिमोहन सेन एम ए शास्त्री ने श्री आनन्दघनजी, उनके पदो तथा भाषा पर "वीणा" पत्रिका के नवम्बर, सन् १६३८ के अंक मे लिखा है—"अन्य प्रमाण के अभाव मे भजन की भाषा से किसी व्यक्ति का देश अनुमान करना कठिन है। जो लोग भजनो को वहन करते थे उनके मुख से भी उनमे कुछ विलक्षणता आजाती थी। आनन्दघन की भाषा पर राजस्थानी और गुजराती का बहुत प्रभाव है। उसमे कितना प्रभाव पदकर्त्ता का है और कितना प्रभाव सग्रहकर्त्ता का है, इसका निर्णय करना कठिन है। मोतीचन्द कापडिया महाशय ने श्री गम्भीरविजयजी गणी द्वारा सुना है कि ऐसी भाषा की सम्भावना बुन्देलखण्ड मे ही सकती है। गम्भीरविजयजी का जन्म बुन्देलखण्ड मे हुआ है। वे समझते हैं कि ऐसी विशेषताये केवल उनकी जन्मभूमि मे ही हो सकती है किन्तु पूर्वी राजपूताने के भी बहुत से भक्तो की ऐसी भाषा दिखाई देती है और सब देशो मे ही आनन्दघन के पूर्व और बाद मे भी बहुत से भक्तो का जन्म हुआ था। जैन साधुओ की साक्षी के अनुसार आनन्दघन का अन्तिम जीवन पश्चिमी राजपूताने के मेडता नगर मे बीता था। उनकी रचनाओ मे जो गुजराती और राजस्थानी प्रभाव हैं वह बुन्देलखण्ड मे कैसे सम्भव हो सकता है? राजस्थान की रचना मे ही यह खूबी मिलती है। इसलिए मैं ठीक ठीक नही समझ सका कि राजपूताना ही आनन्दघन का जन्म स्थान क्यो न माना जाय?"

ऊपर के अवतरणों से स्पष्ट हो जाता है कि चौवीसी और पदो के सम्पादको ने श्रीआनन्दघनजी की भाषा और जन्मभूमि के सम्बन्ध मे जो विचार दिये हैं, वे पक्षपातपूर्ण है। वे समझते हैं कि उत्कृष्ठ रचनाकार और

साधक गुजरात की ही भूमि मे अवतीर्ण हो सकते हैं। निष्पक्ष विचार तो इनमे श्री देसाई और श्री आचार्य सेन के ही हैं। यह बात निश्चित सी है कि रचनाकार सदा से ही लोक मे प्रचलित काव्य भाषा मे अपने विचार प्रकट करते आये हैं। जिस समय काव्य भाषा सस्कृत और प्राकृत भाषायें थी उस समय कवियो ने इन दोनो भाषाओ मे ही अपने अपने उद्‌गार प्रकट किये थे। जब लोक भाषा अपभ्र श का जोर बढा तो महाकवि कालीदास जैसे उद्‌भट विद्वान अपभ्र श भाषा मे लिखने से दूर नही रहे। विक्रमोवशी इसका उत्तम उदाहरण है। अपभ्र श भाषा के पश्चात जो भाषा काव्य के लिए उत्तर भारत मे स्वीकृति हुई उस विकसित भाषा का नाम विद्वानो ने—जो अन्तरवेद से लेकर गुजरात तक मे प्रसार पा चुकी थी—"पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी" रखा। पूर्व मे तो फिर काव्य भाषा मैथली, व्रज, अवधी स्वीकृत हो गई और पश्चिम मे वही काव्य भाषा रही जिसका नाम आगे चलकर 'पश्चिमी राजस्थानी गुजराती हिन्दी' प्रसिद्ध हो गया। श्री आनन्दघन जी के समय मे यही भाषा काव्य के लिए स्वीकृत थी। श्री आनन्दघन जी ने इसी भाषा मे अपने उद्‌गार प्रकट किये। तत्कालीन अन्य रचनाकारो की रचनायें देखने से इस बात की पुष्टि हो जाती है। चू कि जैन सतो की विहार स्थली राजस्थान और गुजरात अधिकाश मे रही, इसलिए उनकी रचनाओ मे गुजराती शब्दो का आना अनिवार्य था। इसी कारण श्री आनन्दघन जी की रचनो मे गुजराती के कुछ शब्द प्रवेश पा गये हैं वरना उनकी भाषा तो 'पश्चिमी राजस्थानी गुजराती हिन्दी ही है। इससे उनकी भाषा को गुजराती, बु देली, अथवा काठीयावाडी और उनका जन्म गुजरात, बुन्देलखण्ड, काठीयावाड मे अनुमान करना निष्पक्ष विचार के द्योतक नही हैं। प्रमाणाभाव से उनकी गुरुपरम्परा, जन्मस्थान आदि का अनुमान करना कठिन है। अन्तिम समय मे वह मेडता मे रहे, वही उनका स्वर्गवास हुआ, इससे आभास होता है कि राजस्थान से उनका लगाव था। यही कही उनकी जन्मभूमि हो सकती है।

अब हमारा यहाँ एक नम्र निवेदन है कि स्तवनो और पदो की विस्तृत व्याख्या न करके उनका सक्षिप्त मे ही इस प्रकार अर्थ दिया है कि पाठक उनके हार्द तक पहुँच सके। सभव है, इसमे अनेक त्रुटियाँ रह गई हो, इसका दायित्व

हमारी अल्पज्ञता पर ही है। इसके लिए हम क्षमा के पात्र हैं। हमारा यह प्रयास तो सूय को दीपक दिखाने मात्र ही है। हमारी त्रुटियो की अथवा आगम विरुद्ध आशय की ओर ध्यान आकर्षित करने वाले महानुभावो के विचारो का हम कृतज्ञता पूर्वक सहर्ष स्वागत करेंगे।

अन्त मे हम श्री अगरचन्द जी नाहटा के प्रति आभारी हैं जिनकी समय समय पर हमे बहुमूल्य सलाह मिलती रही है और जिन्होने अपने सग्रह का उपयोग हमे स्वच्छन्दतापूर्वक करने दिया और फिर ग्रन्थावली के लिए प्रारम्भिक वक्तव्य लिख भेजा जिससे कई नई बातो पर प्रकाश पडता है। श्री जवाहर चन्द जी पटनी को हम नही भूल सकते जिन्होने इस पुस्तक के लिए हमारी प्रार्थना स्वीकार कर भूमिका लिख भेजी है। अत हम उनके कृतज्ञ हैं। महामना मुनिवय श्री नथमल जी स्वामी के सम्मुख तो करबद्ध नतमस्तक हैं जिन्होने अपने व्यस्त कार्यक्रमो मे से समय निकालकर इस पुस्तक के लिए "प्राग्वाच्य" लिख दिया। इसके साथ ही हम "आनन्दघन चौबीसी याने अध्यात्म परमामृत" के लेखक मुनिश्री गब्बूलाल जी महाराज और इसके गुजराती लेखक श्री मगल जी उद्धव जी शास्त्री, 'आनन्दघन पद्य रत्नावली' के सम्पादक श्री साराभाई मणिलाल नवाब, आचार्य श्री बुद्धिसागर सूरीश्वर जी तथा इन पुस्तको के प्रकाशको के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करते है जिनकी पुस्तको से हमने श्री आनन्दघन जी के कुछ पद और स्तवन अपनी ग्रथावली मे साभार उद्धृत किये हैं।

जय आनन्दघन

विनीत

स्व० उमरावचन्द जैन जरगड

महताब चन्द्र खारैड

प्रासंगिक वक्तव्य

—श्री अगरचन्द नाहटा—

जैन धर्म मे आत्मा को ही सर्वाधिक प्रधानता दी गई है। अत वह आत्मवादी दर्शन है। मनुष्य अपने पुरुपार्थ से ही परमात्मा वनता है। परमात्मा एक व्यक्ति नही, स्थिति है। इसलिए जैन धर्म मे भगवान महावीर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि आत्मा ही अपना मित्र है और वही अपना शत्रु है। अपने वुरे विचारो और क्रियाओ से दुर्गति और अच्छे विचारो से सद्गति—अर्थात् सुख-दुख—प्राप्त करता है। कर्मो का वन्धन करने वाला वही है। कर्मो का शुभाशुभ परिणाम भी करने वाले को ही भोगना पडता है। अपने प्रयत्न या स्वभाव मे स्थिति होने से आत्मा कर्मों से मुक्त हो जाता है, पर होता है। अपने पुरुपार्थ मे है। जिस तरह अन्य दर्शनो मे ईश्वर को कर्ता-धर्ता माना गया है उसी तरह जैन दर्शन मे आत्मा को ही कर्ता-भोक्ता माना है। आत्म-दर्शन ही सम्यक्-दर्शन है और सम्यक्-दर्शन, ज्ञान, चारित्र का समन्वय ही मोक्ष मार्ग है। इस आध्यात्मिक परपरा मे समय-समय पर अनेक योगीध्यानी पुरुप हो गये हैं जिनमे से १७वी के अन्त और १८वी के प्रारभ मे श्वेताम्वर जैन सम्प्रदाय के खरतर गच्छ मे लाभानन्द नामक एक योगिराज हो गये हैं जिनका आत्मा—नुभव मूलक प्रसिद्ध नाम आनन्दघनजी है। उन्होने अपनी साधना से वहुत ऊ ची स्थिति प्राप्त करली थी। उनकी रचनाओ मे वाईस तीर्थंकरो के वाईस स्तवन और लगभग एक सौ पद तथा पाँच सुमति की सज्झायें ही प्राप्त हैं। उनकी प्राप्त समस्त रचानाऐं ही इस ग्रन्थ मे दी गई है अत इसका नाम ही आनन्दघन-ग्रन्थावली रखा गया है।

वाल्यकाल से ही मैं आनन्दघनजी के स्तवन एव पदो को सुनकर आनन्द प्राप्त करता रहा हूँ। आगे चलकर जव जैन-साहित्य की शोध का काम प्रारम्भ किया तो आनन्दघनजी की रचनाओ की भी खोज की गई। स्तवनो और पदो के अनेक हस्तलिखित प्रतियो का अवलोकन, नकल, पाठान्तर और

सग्रह का कार्य किया गया। गुजराती मे उनके बाईस स्तवनो तथा २ अन्यो की पूर्ति मिला चौवीसी पर कई विवेचन देखने मे आये और पदो पर भी योगनिष्ठ बुद्धिसागरसूरिजी और स्वाध्याय-प्रेमी मोतीचन्द कापडिया के विवेचन पढने को मिले। पर हिन्दी मे स्तवनो और पदो का कोई विवेचन नही मिलने से कई वर्षो से यह प्रयत्न चल रहा था कि इस अभाव की पूर्ति शीघ्र ही की जाय। आनन्दघनजी की रचनाए बडी गूढ और रहस्यपूर्ण है। अत विवेचन के विना साधारण पाठक उनके रहस्य या मर्म को नही प्राप्त कर सकता। उन्हे गाकर भाव विभोर तो हो सकता है पर भावो को हृदयगम नही कर सकता।

कुछ वर्ष पूर्व जयपुर से श्री उमरावचन्द जी जरगड अपने जवाहरात के व्यापार के सिलसिले मे बीकानेर आये। उनसे वातचीत होने पर उनमे कुछ चिंतन और लेखन की प्रतिभा का आभास हुआ। तव मैंने उनको प्रेरणा दी कि आप श्रीमद् आनन्दघनजी और देवचन्दजी की रचनाओ पर हिन्दी मे विवेचन लिखिए। उन पर चिंतन करने से स्वय आध्यात्मिक भावो से ओत-प्रोत होगे और विवेचन लिखने पर दूसरो के लिए भी वहुत उपयोगी सिद्ध होगा। उन्हे वह वात जँच गई और श्री देवचन्दजी की चौवीसी और स्नात्र-पूजा पर हिन्दी विवेचन लिख डाला जो श्रीजिनदत्तसूरि सेवा सघ से प्रकाशित हो चुका है। देवचन्दजी की कुछ प्रेरणादायक रचनाओ का सग्रह भी छोटी पुस्तक के रूप मे उनने प्रकाशित करवा दिया।

योगीराज श्रीमद् आनन्दघनजी की रचनाओ पर विवेचन लिखना साधारण काम नही था, इसलिए उनने काफी समय तक जहा जो कुछ मिला पढा और सग्रह किया। मैंने भी आनन्दघनजी की वाईसी पर जो सर्वोत्तम विवेचन श्रीमद् ज्ञानसारजी का लिखा मिलता है, उसे उन्हे दे दिया और अन्य भी जो जानकारी एव सामग्री उन्हे आवश्यक थी, देता रहा। निरतर प्रेरित करते रहने से उनने आनन्दघनजी की रचनाओ पर विवेचन लिखना प्रारम्भ भी कर दिया पर इस कार्य को वे पूरा करके अन्तिम रूप नही दे पाये। इसी बीच वे अस्वस्थ हो गये और उनकी मानसिक स्थिति गिरती ही गई। अत वह काम अधूरा ही पडा रहा। हर्ष की वात है कि श्री महतावचन्दजी खारेड

ने उस काम को वहुत परिश्रम करके पूरा कर दिया और अव वह पाठको को प्रकाशित रूप मे सुलभ हो रहा है ।

श्री जरगडजी की धर्मपत्नी भी आध्यात्मिक प्रेमी हे । उन्हे भी उनकी विद्यमानता मे ही इसे प्रकाशित रूप मे देखने की वडी इच्छा थी पर खेद है कि जरगडजी की विद्यमानता मे यह काम पूरा नही हो पाया । यद्यपि मैं इसके लिए वहुत प्रेरणा देता रहा पर सयोग नही था । अव जरगडजी की धर्मपत्नी और सुपुत्र विजयचन्दजी इसे प्रकाशित करवा कर श्री जरगडजी की अन्तिम इच्छा को पूर्ण कर रहे है । यह वहुत खुशी की वात है । मुझे भी इससे अपार हर्प हो रहा है ।

आनन्दघनजी का मूलत· गच्छ

श्रीमद् आनन्दघनजी वैसे तो गच्छातीत ही नही, सप्रदायातीत स्थिति को पहुँच चुके थे फिर भी मैंने प्रारम्भ मे जो उन्हे खरतरगच्छ का वतलाया है उसका स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक समझता हूँ ।

[1]वीसवी शताव्दी के खरतरगच्छीय महान गीतार्थ आचार्य श्री जिनकृपा-चन्द्रसूरिजी ने श्री वुद्धिसागर सूरिजी को वतलाया था कि आनन्दघनजी मूलत खरतरगच्छ मे दीक्षित हुए एव उनकी परपरा के यति उनके समय मे थे । उनका उपासरा मेडते मे विद्यमान है जो उस खरतरगच्छ सघ के ही आधीन था ।

[2]आनन्दघनजी का दीक्षावस्था का नाम लाभानन्द था । उसमे जो आनन्द' नामात पद हे उसका प्रयोग खरतरगच्छ की चौरासी नन्दियो (नामात पदो) मे होता रहा है । लाभानन्दजी नाम के एक और भी मुनि खरतरगच्छ मे १९वी शताव्दी मे हुए है । अर्थात् लाभानन्द ऐसे नाम रखने की परम्परा खरतरगच्छ मे ही रही है ।

१ मोतीचन्द कापडिया लिखित आनन्दघनजी ना पदो की प्रस्तावना पृष्ट २१ की टिप्पणी ।

२ 'लाभानन्द की जगह कईयो ने लाभविजय जी लिख दिया है, वह गलत है । लाभानन्दजी लेख वाला हमे १ पद भी मिल गया है ।

तीसरा एक समकालीन महत्त्वपूर्ण लिखित उल्लेख मुझे और प्राप्त हो गया है। १८वी शताब्दी की खरतरगच्छीय बीकानेर भट्टारकीय गद्दी के श्री पूज्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को मेडता से एक पत्र उपाध्याय पुण्यकलश, मुनि जयरग चारित्रचन्द्र आदि ने सूरत भेजा था। वह पत्र आगम प्रभाकर स्वर्गीय मुनि श्री पुण्यविजयजी के सग्रह मे हमे देखने को मिला। उस पत्र मे लिखा है—"पं० सुगुणचन्द अष्टसहस्री+ लाभाणद आगइ भणई छइ। अर्द्ध रइ टाणइ भणी। घणु खुसी हुई **भणावई छइ**।"—इन पक्तियो से यह स्पष्ट है कि लाभानन्द, उपाध्याय पुण्यकलश आदि से दीक्षा मे छोटे थे। इसलिए उनके नाम के आगे कोई विशेषण नही लगाया गया। पं० सुगुणचन्द्र उस समय लाभानदजी के पास अष्टसहस्री ग्रथ पढ रहे थे। आधा करीब लाभानदजी उन्हे पढा चुके थे। बहुत प्रसन्न होकर वे पढा रहे थे, इसका उल्लेख जिनचन्द्रसूरिजी को सूचना देने के लिए इस पत्र मे किया गया है। उस समय मुनिगण प्राय अपने ही गच्छ के विद्वान् से पढते थे और जिस रूप मे लाभानदजी का इस पत्र मे उल्लेख किया है उससे वे मूलत खरतरगच्छ के ही सिद्ध होते हैं। यद्यपि उनको गच्छ का कोई राग या आग्रह नही था पर केवल उनकी परपरा बतलाने के लिए ही मैंने उपर्युक्त विवरण दिया है क्योकि तपागच्छ वाले* उपाध्याय यशोविजयजी से आनदघनजी का मिलना हुआ था, इस बात को लेकर उन्हे तपागच्छीय बतलाते रहे है। अतएव वास्तविक स्थिति जो ऐतिहासिक तथ्यो के आधार से मुझे विदित हुई है, वही पाठको के सामने यहा उपस्थित की गई है।

आनन्दघन-यशोविजय मिलन

उपाध्याय यशोविजयजी महान् विद्वान् थे। उनने आनदघन से मिलकर अष्टपदी मे जो प्रसन्नता प्रकट व्यक्त की है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अष्ट-

---

× इसमे आनदघन केवल योगी व साधक ही नही, बडे विद्वान् सिद्ध होते है।

* जैनतत्वादर्श के उल्लेखानुसार पं० सत्यविजय आनदघनजी के साथ कई वर्ष वनादि मे विचरे थे कहा जाता है पर पं० सत्यविजय रासादि मे उल्लेख नही होने से वह कथन प्रामाणिक नही लगता।

पदो के अतिरिक्त एक अन्यपद से भी उन दोनो महापुरुषो का मिलन सिद्ध होता है। विवेचन मे यह पद उद्धृत किया है—

मेरो निरजन यार कैसे मिले।
दूर देखू तो दरिया डूगर, ऊचे अवर धरणि तलै ।।मे०।।
धरणि गडू तो सूझै नही, अगन तपू तो देही जलै ।।
'आनन्दघन' 'जसा' सुन वातै, सोई मिल्या मेरो फेरो टलै ।।मे०।।

इसमे 'जसा' शब्द का प्रयोग उपाध्याय यशोविजयजी के लिए ही किया गया प्रतीत होता है।

(यह प्रस्तुत ग्रन्थ का पद न० ११६ है।)

यशोविजय रचित वावीसी वालाववोध

स० १७६७ कार्तिक सुदि २ को पाटन मे उपाध्याय यशोविजय की रचनाओ की सूची का एक पत्र लिखा गया था। उसमे न० ११ पर 'आनन्द-घनजी वावीसी वालाववोध' का भी नाम है। अर्थात् यशोविजयजी ने आनन्दघनजी के वाईस स्तवनो पर विवेचन लिखा था, पर खेद है उपाध्याय यशोविजयजी जैसे महान् विद्वान् की रची हुई जैसे और भी अन्य वहुत सी रचनाए अप्राप्य हो चुकी है, वैसे ही यह आनन्दघन वावीसी वालाववोव भी अव कही प्राप्त नही होता। यदि यह कही मिल जाता तो आनन्दघनजी के विषय मे अवश्य ही कुछ महत्त्वपूर्ण वातें जानने को मिलती। एव स्तवनो का सही पाठ व भाव अधिक स्पष्ट होता। जैन गुर्जर कवियो, भाग २ पृष्ठ २५ मे पाटण भण्डार के उस पत्र का उल्लेख है जिसमे यशोविजयजी की रचनाओ मे वावीसी वालाववोध का भी नाम है।

वावीसी या चौवीसी ?

आनन्दघनजी की वावीसी के स्तवनो पर अभी जो सवसे पहला विवेचन प्राप्त है वह ज्ञानविमलसूरि रचित है। पर उन्हे भी यशोविजयजी का वह विवेचन प्राप्त नही हुआ था। इसीलिए उनका विवेचन वहुत साधारण और कही-कही गलत भी हो गया है, इसका उल्लेख ज्ञानसारजी ने अपने विवेचन मे अनेक जगह किया है। यशोविजयजी, ज्ञानविमलसूरि और ज्ञानसारजी सभी

को आनन्दघन जी के बाईस स्तवन ही प्राप्त थे, इसलिए अन्य जो दो प्रकार के दो-दो स्तवन पार्श्वनाथ और महावीर के स्तवन आनन्दघनजी के नाम से प्राप्त होते है, उनमे दो तो श्रीमद् देवचन्द्रजी रचित है+। यह ज्ञानसारजी के विवेचन मे स्पष्ट लिखा है। अत बाकी जो दो स्तवन और रह जाते हैं, मेरी राय मे वे यशोविजयजी के रचित हो सकते है। क्योकि जिस तरह ज्ञानविमलसूरि और ज्ञानसारजी ने बाईस स्तवनो का विवेचन लिखने के बाद पूर्ति के रूप मे अन्तिम दो स्तवन अपनी ओर से बनाकर चौवीसी की पूर्ति की थी उसी तरह यशोविजयजी ने भी बावीसी पर विवेचन लिखने के बाद अन्तिम दो स्तवनो को स्वय बनाकर पूर्ति की होगी। श्रीमद् देवचन्दजी को भी आनन्दघनजी के बाईस स्तवन ही मिले। इसलिए उन्होने अन्तिम दो स्तवन स्वय बनाकर चौवीसी की पूर्ति की। हमारे सग्रह के एक गुटके मे आनन्दघनजी की चौवीसी लिखी हुई है उसमे अन्तिम दोनो स्तवनो के रचयिता स्पष्ट रूप मे देवचन्द्रजी को बतलाया है। सौभाग्य से हमे आनन्दघनजी के बावीस स्तवनो की एक प्राचीनतम प्रति भी मिल गई है जिसमे बावीस स्तवन ही लिखे हुये है। कारण कुछ भी रहा हो पर इन सब बातो से स्पष्ट है कि आनन्दघनजी ने बाईस स्तवन ही बनाये थे। पीछे के पार्श्वनाथ और महावीर के स्तवन अन्य जैन कवियो ने बनाकर चौवीसी की पूर्ति की है।

पू० सहजानन्दजी की पूर्ति चैत्यवदन एव स्तुति

यहाँ एक नई सूचना भी देना आवश्यक समझता हूँ कि आनदघनजी ने बाईस स्तवन ही बनाये थे पर मन्दिरो मे स्तवन से पहिले चैत्यवन्दन और स्तवन के बाद स्तुति भी (अन्य नमोत्थुरण जय वीयराय आदि के साथ) बोली जाती ह। अत चैत्यवन्दन और स्तुति की पूर्ति के रूप मे पूज्य सहजानदजी ने २४ चैत्यवन्दन और २४ स्तुतिया भी आनदघनजी के भावो के साथ ताल-

---

+ प्रस्तुत ग्रन्थ मे २२ स्तवनो के बाद जो पार्श्वनाथ और महावीर स्तवनो को जो ज्ञानविमल सूरि के कहे जाते है लिखा है वे वास्तव मे श्रीमद् देवचन्दजी के हैं। ज्ञानविमलजी ने पूर्ति रूप जो दो स्तवन बनाये है उनको मैंने तो ज्ञानविमल नाम दिया है।

मेल बनाने वाली बनादी है, जो 'सहजानद पदावली' आदि मे प्रकाशित भी हो चुकी है ।

पद बहुतरी

आनदघनजी की दूसरी प्रमुख रचना है—गीत द्रुपद या आध्यात्मिक पदावली । योगीराज ने समय-समय पर अपने हृदयोद्‌गार और अनुभूति के व्यक्तिकरण रूप जो पद-भजन बनाये है, वास्तव मे वे एक ही समय पर नही बने थे इसलिए पद-सग्रह का नाम 'बहोत्तरी' आदि उनकी ओर से नही रखा गया था । प्राचीन प्रतियो मे बहोत्तर (७२) पद मिलते भी नही है, किसी मे चालीम-पेनालीस के करीब है, किमी मे साठ-सत्तर । अत उन्नीसवी शताब्दी मे किसी सग्रहकर्त्ता ने आनदघनजी के प्राप्त पदो का सग्रह किया और उनकी सख्या चौहत्तर-पचहत्तर के लगभग हो गई तब शायद पद सग्रह का नाम बहोत्तरी रख दिया गया । सवत् १८५७ की लिखी हुई प्रति हमे प्राप्त हुई है जिसमे ७४–७६ पद है पर उसमे पद सग्रह का नाम बहोतरी नही दिया है परन्तु आनदघनजी के सर्वाधिक मर्मज्ञ श्रीमद् ज्ञानसागरजी ने आनदघनजी के अनुकरण मे जो चौहत्तर पद बनाये है उनका नाम उन्होने 'बहोतरी' रखा है । अत उन्नीसवी शताब्दी मे आनदघनजी का पद सग्रह बहोतरी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया मालूम देता है ।[1+] इसके बाद चिदानन्दजी ने भी समय-समय पर जो पद स्तवन बनाये उनकी सख्या भी बहत्तर (७२) तक पहुँच गई । अत चिदानदजी की बहोतरी प्रसिद्ध हो गई । बहत्तर (७२) सख्या का आकर्पण अठारहवी शताब्दी मे रहा है । जिनरगमूरिजी ने बहत्तर पद्यो वाली एक रचना को जिनरग बहोतरी नाम दिया जो अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना है ।

स्तवनो एव पदो के समर्थ विवेचक ज्ञानसारजी

श्रीमद् ज्ञानसारजी ने आनदघनजी के स्तवनो और पदो पर वर्षों तक गभीर चिंतन किया था । चौवीसी बालावबोध मे ज्ञानसारजी ने स्पष्ट लिखा

---

१ + हमे प्रवर्त्तक कातिविजय के सग्रह की स० १८६० की प्रति मे बहुतरी नाम लिखा मिला है । इससे पहले की स० १८७१ की बनारस की प्रति के अन्त मे बहुतरी' लिखा है । दे जै गु क भाग ३